PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2348:5639

SHODH SAMALOCHAN July-Sep. 2026

Dr. Versha Rani,
Dr. Naresh Sihag, Adv.

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा भारत-नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Vol. : 13, Issue : 3 July-Sep. : 2026





संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-3 **जुलाई-सितम्बर / 2026 (भाग-4)** **आईएसएसएन : 2348-5639**

संरक्षक
• डॉ. इस्पाक अली, बैंगलुरु

संपादक
• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
• डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक
• डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक
• डॉ. लता एस. पाटिल,
• डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अक्षर संयोजन
• मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक मंडल

• आशीष कुमार, गाजियाबाद
• डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल
• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर
• श्री शियोन छन श्यू, चीन
• डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. सुनीता शर्मा, ऑस्ट्रेलिया
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2500/- रु.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **PRINCE KUMAR**
  UGC NET-JRF, History, Senior Researcher, University History Department, B.R.A.Bihar University Muzaffarpur, Bihar
- **Dr Kanta Verma**
  Assistant professor, Political science, Govt College Lanji Balaghat, District Balaghat, M.P.
- **Dr. Sainath Kabade**
  Assistant Professor, Department of Educational Social Sciences, NIE, NCERT, New Delhi.
- **Mr. Sagar Gopal Rathod**
  Assistant professor, School of Social Science, Punyashlok Ahilyadevi Holkar Solapur University, Maharashtra.
- **Dr (Smt.) Manjulata Kashyap**
  Professor (Economics),Govt.T.C.L.P.G. College Janjgir, Chhattisgarh
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi, Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **Dr. Tikaram Sarthi**
  Hasmukh, Lecturer, Govt H.S.S.Churteli, Dist. Sakti (Chhattisgarh)-495688
- **Dr. Atul Chand**
  Hod Defence & Strategic Studies/ ex Principal in-charge "Government Degree college Baluwakote Pithoragarh "Uttarakhand
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **Sneha Deepak Wankhede**
  Assistant professor Hindi Department, Rajkumar Kewalramani College Jaripatka Nagpur, Maharashtra
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वा.सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड

- **डॉ. मीरा चौरसिया,** चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ., आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. श्रीकांत राठोड**
  सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, श्री शांतेश्वर शिक्षा संस्थान, श्री जी.आर. गांधी कला, श्री वाय ए पाटील वाणिज्य एवं श्री एम पी दोशी विज्ञान महाविद्यालय, इंडी, जिला विजयपुर, कर्नाटक
- **डॉ. मंजू देवी**
  सहायक आचार्य श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. सुनीता सारस्वत**
  सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी झुंझनू, राजस्थान
- **प्रा. डॉ. बोईनवाड कृष्णा बाबुराव**
  सहा. प्रा. दिगंबरराव बिंदू कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, भोकर. जिला नांदेड, महाराष्ट्र
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **डॉ. श्रीराम**
  एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, बीकानेर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :
सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094
मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय

प्रिय पाठको,

वर्तमान समय ज्ञान-विस्तार, विचार-विमर्श और बौद्धिक संवाद का युग है, जहाँ शोध केवल शैक्षणिक अनिवार्यता नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व का भी एक महत्वपूर्ण साधन बन चुका है। शोध समालोचन के इस अप्रैल-मई-जून 2026 अंक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें यह अनुभव हो रहा है कि ज्ञान की यह यात्रा निरंतर गहराई और व्यापकता की ओर अग्रसर है। यह अंक न केवल विविध विषयों की शोधपरक सामग्री को समाहित करता है, बल्कि समकालीन संदर्भों में उनके प्रासंगिक विश्लेषण का भी सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आज का युग बहुआयामी चुनौतियों और संभावनाओं का युग है। एक ओर तकनीकी प्रगति ने मानव जीवन को सुविधाजनक बनाया है, तो दूसरी ओर सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रश्नों को भी जटिल बना दिया है। ऐसे समय में शोध का कार्य केवल तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि उन तथ्यों के पीछे छिपे यथार्थ को उजागर करना भी है। इस अंक में सम्मिलित लेख इसी दृष्टि को केंद्र में रखते हुए लिखे गए हैं, जिनमें भारतीय ज्ञान परंपरा, साहित्यिक विमर्श, सामाजिक सरोकार और शैक्षिक नवाचारों पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव से ही विश्व को दिशा देने वाली रही है। आज जब वैश्वीकरण के प्रभाव में सांस्कृतिक अस्मिता पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं, तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी जड़ों की ओर लौटें और अपने परंपरागत ज्ञान को समकालीन संदर्भों में पुनः परिभाषित करें। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेख इस दिशा में सार्थक प्रयास हैं, जो भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा के मूल तत्वों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं।

साहित्य, समाज का दर्पण होने के साथ-साथ उसकी संवेदनाओं का भी सशक्त माध्यम है। वर्तमान अंक में साहित्यिक आलोचना और समीक्षा के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार साहित्य समाज के बदलते स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। समकालीन कविताओं, कहानियों और गद्य साहित्य में उभरते विषय जैसे स्त्री-विमर्श, दलित चेतना, पर्यावरणीय संकट और नैतिक मूल्यों का ह्रास—इन सभी पर गहन विचार प्रस्तुत किया गया है। यह अंक साहित्य को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के औजार के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं। नई शिक्षा नीति और डिजिटल तकनीकों के प्रभाव ने शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया को पूरी तरह से बदल दिया है। इस अंक में शिक्षा से संबंधित शोधपत्र इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि किस प्रकार नवाचार और परंपरा का संतुलन बनाकर एक समावेशी और प्रभावी शिक्षा प्रणाली विकसित की जा सकती है। शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक चेतना के विकास का आधार भी है—इस विचार को यहाँ विशेष महत्व दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, इस अंक में विभिन्न शोधार्थियों और विद्वानों द्वारा प्रस्तुत लेखों में सामाजिक यथार्थ की गहन पड़ताल की गई है। ग्रामीण जीवन, शहरीकरण, आर्थिक असमानता, और सांस्कृतिक बदलाव जैसे विषयों पर किए गए अध्ययन यह दर्शाते हैं कि शोध का उद्देश्य केवल निष्कर्ष निकालना नहीं, बल्कि समाज के समक्ष प्रश्न खड़े करना और उनके समाधान की दिशा में विचार उत्पन्न करना भी है।

शोध समालोचन का उद्देश्य सदैव से ही शोध की गुणवत्ता और प्रामाणिकता को बनाए रखना रहा है। इस अंक में प्रकाशित सभी लेख कठोर समीक्षा प्रक्रिया से गुजरकर चयनित किए गए हैं, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि पाठकों

को विश्वसनीय और उच्चस्तरीय सामग्री प्राप्त हो। हम यह मानते हैं कि एक सशक्त शोध परंपरा का निर्माण तभी संभव है जब उसमें नवीनता, निष्पक्षता और आलोचनात्मक दृष्टि का समावेश हो।

अंततः, हम सभी लेखकों, शोधार्थियों और समीक्षकों का आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो पाया है। साथ ही, हम अपने पाठकों से भी अपेक्षा करते हैं कि वे इस अंक में प्रस्तुत विचारों पर गंभीरता से विचार करें और ज्ञान-विमर्श की इस परंपरा को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दें।

ज्ञान की यह यात्रा अनवरत है, और शोध समालोचन इस यात्रा में एक सशक्त मंच के रूप में अपनी भूमिका निभाता रहेगा—इसी विश्वास के साथ हम इस अंक को आपके समक्ष समर्पित करते हैं।

संपादक

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय 6

कुँडुख़ खोड़हा नु कंड़सा 11
दीपक उराँव

हो जनजाति के पर्व त्योहार 14
पाण्डु राम हाईबुरू

झारखण्ड में विस्थापन एक समस्या एवं संवैधानिक प्रावधान 18
प्रेम रोशन एक्का

Desire to Dispassion : Vairāgyaśataka and the Bhagvad Gītā 23
Deepthi Chandran

कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन के विविध संदर्भ : एक अध्ययन 27
निरंजन कुजूर

प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागिता का अध्ययन 30
डॉ. सुषमा पांडे
रूपानंद बारिक

BEHAVIOURAL PROBLEMS OF ADOLESCENTS 37
Monika Sahai

Poetic Ornaments in the Seasonal Descriptions of the Ramayana 44
Manjitha MM

Sphota and Dhvani in the Vakyapadiya: A Linguistic and Philosophical Analysis 47
Jiji Chandran J V

The Scientific Classification of Speech Sounds in Ancient Sanskrit Texts: A Comparative Study with Modern Phonetics 52
Sithara B T

The Concept of Varnasrama-Dharma in the Manusmrti: A Study of Social Order and Individual Duties 59
Vishnupriya G

भारती संस्कृति गी डोगरी भाषा ते डोगरा लोक-संस्कृति दा योगदान 65
डॉ. विजय कुमारी

'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर' कविता संग्रैह : इक अध्ययन 70
डॉ. कमलेश कुमारी

आस्था 77
डॉ. दीप्ति सुधीरकुमार देशपांडे
भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री विमर्श 79
डॉ. नरेन्द्र कुमार सिंह
रितेश कुमार
Evolution of Women's Monastic Tradition In Ramakrishna Mission 86
Prof. Dheeraj Kumar Choudhary
Samiksha Rai
उच्च शिक्षा में शैक्षिक असमानता और सामाजिक पुनरुत्पादन: पियरे बोरदियो के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन 95
राम उग्र गोस्वामी
Building Emotionally Intelligent Teachers for Holistic Education: Insights from NEP 2020 105
Dimpi Singh
जनजातियों की समस्याएँ एवं संवैधानिक प्रावधान 109
डॉ॰ प्रीति कुमारी
डॉ. कुँअर बेचैन एवं दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में राजनीतिक संवेदना : तुलनात्मक दृष्टि 114
प्रशांत चौरसे
निपुण भारत मिशन के अंतर्गत संचालित मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम द्वारा पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर पर अध्यनरत बालकों के भाषा एवं संख्यात्मक उपलब्धि का अध्ययन 118
डॉ.(प्रो.) अंकुश शर्मा
नम्रता भारद्वाज
भारतीय सिनेमा के महाकाव्यात्मक कैनवास पर इतिहास, दंतकथा और कल्पना का अंतर मिटाने वाली महागाथा 'मुग़ल-ए-आज़म' 124
पीयूष पुष्पम
गिग अर्थव्यवस्था : भारतीय श्रम बाजार में अवसर, चुनौतियाँ और नीतिगत संदर्भ 130
गीतांजलि वर्मा
Cultural Echoes of the Past: A Historical and Cultural Study of Indian Folk Arts 140
Anjali Sachan
जनता के सिंहासन के कवि : दिनकर 146
मुलायम यादव
मानवीय मूल्यों की संजीवनी कबीर भक्ति 150
डॉ. सावित्री देवी
Personality Traits and Managerial Effectiveness among Bank Managers in Jharkhand: A Big Five Perspective 154
Shivesh
पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता 168
डॉ. रीना मेवाड़ा

अमरकांत के कथा साहित्य की प्रासंगिकता 172
निरुपमा हाँसदा
परंपरा और आधुनिकता के बीच लैंगिक समानता की बदलती भूमिका 175
डॉ. पूनम भूषण
भारतीय राजनीति में अपराधीकरण : प्रवृत्तियाँ, निर्धारक एवं लोकतांत्रिक शासन पर प्रभाव का विश्लेषण 179
डॉ. देशराज यादव
'बसंत' काव्य संग्रह में मुकेश कुमार 'ऋषिवर्मा' का भाषा-सौष्ठव 186
डॉ. राजपाल
भारत में ग्रामीण विकास (2005-2026) : मनरेगा से वीबीजी रैम जी अधिनियम तक नीतिगत संक्रमण, उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ 193
सिंपल शर्मा
बिलासपुर जिले के नवतेज प्रकाश पुंज और उनका अप्रतिम योगदान (द्वारिका प्रसाद तिवारी एवं लोचन प्रसाद पांडे के संदर्भ में) 198
डॉ. अतुल कुमार मिश्र

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

कुँड़ुख़ खोड़हा नु कंड़सा

दीपक उराँव
शोधार्थी, विश्वविद्यालय कुँड़ुख़ विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
मो.नं.-7643927938

कुँड़ुख़ खोड़हा नु कंड़सा गहि अकय कोहा महबा र'ई, इद ओन्टा खोड़हा मझही नेग-दस्तुर आलो तली। इदिन नेग-दस्तुर संगे समुरअर, सपड़अर ठऊंका नेड्डा, बेड़ा नु चोद'अना गहि चालो अरा रीत र'ई। कंड़सा गहि झकमकरना अरा कंड़सा मईता बिल्ली गहि जिरिप-जिरिप लद्यरना, कंड़सा ख़ेस्स गहि दलय-दलय नुकरना, पूंप गहि हिलो-डोलो मन्ना। कंड़सा चोअना अड्डन फरिच ननी चिअी।

अक्कु नाम अख़ओत का एका-एका बेड़ा नु कंड़सा चोद'अना गहि रीत र'ई। कतिक चन्दो नु मुड़मा जतरा, सोहराई जतरा, जेठे जतरा बेड़ा नु कड़सा चोद'अना घी रीत र'ई। इदि गहि खोख़ा कुँड़ख़र गहि नेम्हा बेंजा बेड़ा नु कंड़सा चोद'अना घी रीत र'ई। बेंजा अगहन, माघ, फग्गु बइसाख, जेठे चन्दो एन्ने बेड़ा नुम मनी। जोक्क-जोक्क पद्दा, पहटा तरा हुँ कोहा बेंजा, कुण्डी एषना एकदन हड़बोड़ी हुँ बअनर आ दस्तुर बीरी हुँ कंड़सा चोद'अना गहि रीत र'ई।

कतिक चन्दो नु मुड़मा जतरा लगी ई बीरी दिम हुरमी ती मुन्ध जतरा टोंका नु कंड़सा अरगी। कतिक चन्दो नु पद्दा-खेप्पा ता नाल ता ख़ेस्स गूट्ठी पानी काली। पानका खोख़ा पद्दा ता पेल्लर जे का डिण्डा रअनर आर खल्ल तरा कालर ख़ेस्सन खोया कि ओन्दरनर दरा नयगस घी एड़पा नु उयनर। इदि खोख़ा पद्दा ता नयगर, पुजारर कंड़सन कमअर जतरा नु खोड़हा घोल संगे जतरा टोंका नु अरगनर। कुँड़ख़र बअनर का जतरा नु कंड़सा अरगी, ई बीरी कंड़सा जतरा टोंका नु अकय कोड़े सोभ'ई अरा आलर खोड़हा मझही कंड़सा घी अईन-मईन अकय दव इथरी'ई। कुँड़ुख़ खोड़हा नु कंड़सा चोद'अना गहि नेग-चार जतरा ती दिम ओरे मानी काली। कंड़सन मुक्कर कुक्क नु कुम्मर की जतरा टोंका नु खूँटा घी बहरी नव ती डेब्बा मून्द बेर भवंरी किर्रनर। अदि खोख़ा कंड़सन खूँटा हेदे पंशी-पंशी उयनर चिअनर। दरा धर्मोसिन गोहरारनर हे धरमे हुरमी उल्ला खिती-पति खेस्स, तीखिल, गुंडलू, कोदय, मानी, मासी दव लेक्खा माना नेका बअर धरमे सिन ओहरा विनती नन्नर।

बआ ओंगतरी का बेगर कंड़सा अऊर इदि गहि पुजा मुड़मा जतरा नु धरम नलख ओरे मन्ना ती अऊर सांस्कृतिक नेग-चार नु ठउकम अरा पोक्ता मना पोल्ली। अंवगेम जतरा टोंका नु कंड़सा अरगना चाड़ र'ई। कंड़सा कुँड़खर घी मझही नु धरम अड्डा, सांस्कृतिक अड्डा अरा नेग-दस्तुर अड्डा नु कंड़सा गहि अकय चाड़ मनी।

मुड़मा जतरा घी संगे-संगे चिरदी जतरा, दसई जतरा, सोहराई जतरा, जेठे जतरा बेड़ा नु हुँ एकअम-एकअम पद्दा पहटा ता जतरा नु कंड़सा चोद'अना गहि रीत र'ई। हुरमी ती मुन्ध मुड़मा जतरा नु कंड़सा अरगी। इद कुँड़खर घी पहचान गहि रूप नु र'ई। अदि खोख़ा पद्दा-खेप्पा, पहटा तरा सन्नी-सन्नी जतरा गूट्ठी नु कंड़सा अरगानर। कंड़सा कमना ती मुन्ध डिण्डा पेल्लर ख़ेस्स खल्ल तरा कंड़सा खेस्स ओन्दरआ गे कानर। ई ख़ेस्सन नयगस गहि एड़पा नु जमा नन्नर। अन्ति जतरा उरख़ना, घोल अरगना गहि मुन्ध कंड़सन तिस्सनर। कंड़सा मून्द गोंट़ग बनई। जतरा अरगना गहि मुन्ध कंड़सन नेग-दस्तुर नन्नर। कंड़सन जतरा टोंका होआ खतरी गे नयगस गहि एड़पा चाली नु चोदनर। कंड़सन अखड़ा होअनर तले बीचनुम-नलनुम जतरा टोंका

काला गे मुढ़ियारनर। खोड़हा घोल जतरा टोंका अंड़सी काली। नन्ना पह्रा, पाड़हा ता घोल हुँ बर'ई, संगेम हुरमी पह्रा ता घोल जतरा टोंका नु मून्द बेर किर्रनर। अदि खोख़ा होरमर तंगआ-तंगआ खोड़हा अड्डा नु खोड़रनर। कंड़सन खोड़हा गहि मजही उयनर। बेचनर-नलनर, रीझ-ढंग नन्नर, अन्ति बेड़ा मंजका ती कंड़सन जतरा टोंका ती किरतअर नयगस ही एड़पा नु उयनर चिअनर। एन्ने लेक्खा कतिक चन्दो नु मुड़मा जतरा, सोहराई जतरा, दसई जतरा, जेठे जतरा ई बेड़ा नु कंड़सा चोदनर।

नेग-जोगे-ओन्टा पुना कंड़सा भण्डा ओन्टा कोहा टट्ठी, सेड़ता, आबदा, तीखिल, मासी, इसुंग, सिन्दरी, धुप-धुवन, थड़ा, तांतर, ओन्टा पुना डऊड़ा, ओन्टा पुना बऊगी, ओन्टा पुना केतेर, खेना बालका, तीखिल गुण्डा, आबदा मेर, गेंदा पूंप, मून्द बरन गहि मेर (पन्डरू, खेंस्सो, हरियर) नयगर, पुजारर ती दाड़े अरगआ खतरी ओन्टा रंगुवा ख़ेर, ओन्टा मूनो झरा, दुब्बा घासी। इबड़ा हुरमी आलो कंड़सा चोद'अना नु लगी।

अक्कु नाम एरोत का कुँड़खर गहि नेम्हा बेंजा बेड़ा नु कंड़सन एकासे कमनर-चोदनर। हुरमी ती मुन्ध कंड़सा खेस्सन बेंजा एड़पा ता आलर तम्हय खल्ल ती ख़ेस्सन खण्डका-नबका खोख़ा एड़पा मंखनर, मुदा कंड़सा कमना ख़ेस्सन मल नबनर, इदिन जुदम खली नु उयनर मलता इदिन बहरीम एड़पा घी उहारी नु उयनर। कंड़सा खेस्सन बेंजा नु एड़पा मल मंखनर। बअना घी इद तली का बेंजा मन्ना ती मुन्ध कंड़सा खेस्सन एड़पा उला मल मंखनर अरा मल उयनर, इदिन बहरी खली तरा बूसऊ मंइया माड़नर चिअनर, मलता एड़पा दूरा घी बहरी मंइया उयनर।

बेंजा उल्ला बारात उरखना ती मुन्ध कंड़सा ख़ेस्सन चाजा खतरी मून्द ठो डिण्डा कुको खह्रारिन कंड़सा ख़ेस्सन चाजा खतरी लगा बअनर चिअनर। हुरमी ती मुन्ध पइरी बरी कंड़सा कमना अड्डा गुसन साफ-सुथरा ननर गोबारी गने एगनर दरा आ अड्डा नु कंड़सा घी हुरमी नेग-जोगे आलोन उयनर चिअनर। कंड़सा चोद'अना गहि रीत कुको-कुकोय एड़ो तरा मनी। कंड़सा ख़ेस्सन चाजु डिण्डा कुकोर बेंजरना कुको मलता कुकोय, इर घी एड़पा हेदे-गेच्छा ता भाइर दिम रओर। कंड़सा गे ख़ेस्स चजना नु दव-दव ख़ेस्स गहि बइलन चाजनर। कंड़सा चाजुर कुको खह्रर गे एरख़ा-उम्बलआ तुक्को अन्नु हुँ मल्ला चोअना, नलख मुंजरका खोख़म चोअना मनी।

कंड़सा ख़ेस्स चाजरका खोख़ा तिस्सु पह्रा ता नयगर, पुजारर रअनर। पुना डऊड़ा नु भण्डन उय्यर तिस्सना गहि नलखन आर नन्नर। चाइजका ख़ेस्सन मुंजा तरा जोक्क खण्डर की भण्डा नु सजनर अऊर आबदा तीखिलन सजअर खेचनर एका नु भण्डा ढिलंग-ढलंग मल मनो। कंड़सा भण्डा ख़ेस्स ती झाबराई काली। कंड़सा घी कुक्क नु टट्ठीन उयनर, आ टट्ठी नु मासी ती निंदनर चिअनर तले चइरो कोंड़ा तरा सेड़ता चिअनर, सेड़ता हेद्दे जोक्क बेकन चिअनर फीन टट्ठी नु इसुंगन तुंदनर। कंड़सन गेंदा पूंप ती झबरआनर अऊर चरी नु कुड्डका मून्द बारन गहि मेर ती कमचका पूंपन हुँ खोसनर। अक्कु कंड़सा तेयार मनी काली। कंड़सन चोद'अना ती मुन्ध दाड़े टिड़आ खतरी मुनो झरा पीसरी'ई अज्जु नयगस, पुजारस रंगुवा ख़ेरन चराबअदस बेंजा दवलेकन मना नेकआ बअर की एड़ो बिंजरूउ कुको-कुकोय गहि जुड़ी-पांति दव मना नेकआ-एन्ने बअर ख़ेरन चराबअनर। इदि खोख़ा कंड़सा चोअदऊ उबुसका मुक्कर पुरूब छमहे ननर कंड़सन मोंजरा नन्नर तले खेक्ख़ा ती हथलअर चोदनर। अन्ति बेंजा एड़पा गहि बलीन मून्द बेर ठेकाबअनर। कंड़सा चोउदऊ मुक्कर बेंजा एड़पा ता हेदे-गेच्छा ता दिम रअनर मुक्कर बेंजरूऊ कुको-कुकोय घी नसगो बगर दिम लगनर अरिम कंड़सा चोद'अना नु रअनर। इर घी ने नसगो लगनर आर गे दिम कंड़सा चोदना गहि रीत र'ई। मसाल हुँ लघ्घरा केरा, मसाल तांतर मंइया चेथरन पोज्जर इय्या इसुंगन तुंदनर अदि खोख़ा इदिन दगनर होले इद लघरआ हेलरी'ई। तांतर संगे र'ई। ई थड़िया नु मनी इसुंग र'ई। कडिरका डण्टा ती दिम इसुंगन ओ ाा-ओ ाा तांतरन चेथरा पुज्जका र'ई इदिन दगनर। कंड़सन नलदआ खतरी मुक्कर गहि झरा र'ई। नेग दस्तुर मंजका खोख़ा तूरियस ढांक-डअमा अस्सना ओरे नन्दस। कंड़सा चोदओ बीरी ता नलना बेचना नन्नम मनी। तूरियस तरकूटीतिम पीरे-पोर गहि खेड्ड-खेक्ख़ा कया एकासे सड्डी अन्नेम मनी। एंवदा दव एथरी'ई कंड़सा चोद'अना गहि बेचना-नलना पउन घण्टा ओन्द घण्टा गुटि कंड़सन नलदअनर।

कड़सा घी पइत नु तंगआ जिया ती घोखचका ती लगी का मानिम कंड़सा एकासे भण्डा नु खेस्स गहि बाइलन हेअनर, अदि खोख़ा भण्डा नु आबदा तीखिल, बालका, खुदरा चेंज ढिबा र'ई। कंड़सा भण्डा घी मुख नु टट्ठीन सजनर अऊर जा टट्ठी

नु मासी अऊर इसुंग डलनर दरा चइरो कोंड़ा नु सेड़ता उयनर। दरा बिल्ली दगनर, बिल्ली लघरना घी कत्था इद र'ई का एड़पा-पल्ली नु हुरमी उल्ला बिल्ली जर-जराय के लघरआ नेका एड़पा-पल्ली ता आलर होरमर दव ती रआ नेका। एकासे भण्डा नु तीखिल गूट्ठी सज्जका र'ई, अनेम एड़पा-पल्ली नु हुरमी-उल्ला सइस-बरकत निंदका रआ नेका। कंड़सा नलदोओ बीरी ओरोत आलर तांतर मंइया चेथरा पोज्जका इसुंग ती लघरतनर अऊर थड़िया नु मनी इसुंग ती ओन्टा कडिरका ती ओ ॥-ओ ॥ बिल्ली लघरतनर। तांतर मंइया बिल्ली दगना घी माने इद र'ई का बेंजा नु बेस-बेकार आलर घी बाई-भाख, नइजर-गुइजर अम्बन लगा नेका। बअर अंवगे बिल्ली दगनर। इबड़ा हुरमी नेग बेंजा नु मनी, मुदा तांतर नु चेथरा पोज्जर बिल्ली दगना नेग जतरा नु मल मनी। खली बेंजा नु भइर मनी।

ईरका पुथी-

1. उराँव धर्म एवं प्रथाएँ, शरत चंद्र रॉय कृत, क्राऊन पब्लिकेषन (हिन्दी अनुवाद)-2025
2. छोटानागपुर के उराँव रीति-रिवाज, डॉ. नारायण भगत, झारखण्ड झरोखा, राँची-2017
3. हड़जोड़ा विभागीय स्मारिका पुस्तक, विश्ववद्यिालय कुँड़ुख़ विभाग राँची- 2026

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

हो जनजाति के पर्व त्योहार

पाण्डु राम हाईबुरू
शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय (हो) भाषा विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

हो जनजाति के पर्व-त्योहार प्रायः अलग-अलग मौसम में अलग-अलग पर्व-त्योहार होते हैं। हर पर्व-त्योहार के साथ कुछ न कुछ आस्था, मान्यता जुड़ी हुई है। प्रत्येक समुदाय में पर्व-त्योहारों का विशेष महत्व होता है। ऐसे ही हो जनजाति के पर्व-त्योहार और खुशियाँ मुख्य हैं। हो जनजाति के पर्व-त्योहारों में समाज के लोगों के साथ-साथ बच्चों को भी कई प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती हैं। हो जनजाति में पर्व-त्योहार केवल उत्सव ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक शिक्षा के भी माध्यम हैं। ये पर्व-त्योहार उनकी लोक-कथाओं और परंपराओं से जुड़े हुए हैं। इन त्योहारों में प्रकृति, पूर्वजों और सामाजिक जीवन का उत्सव मनाया जाता है। ये परंपराएँ आदिकाल से ही चली आ रही हैं। लोग जब जीना सीख रहे थे, रहने के लिए एक स्थायी जगह की तलाश में थे, जीवन जीने के लिए भोजन की तलाश में निकले और खेती की शुरुआत की, खेती की तलाश में उस समय झूम खेती की गई। एक जगह से दूसरी जगह प्रवास के रूप में कई जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों की भी मदद ली गई। इस प्रकार हमारे पूर्वजों को जीवन जीने में कई सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

लोगों को इससे जो अनुभव और ज्ञान मिला, उसे हमारे अपने लोगों के बीच साझा किया गया। इसके बारे में लोगों को जानकारी दी गई। यही कालांतर में आगे चलकर कथात्मक रूप ले लिया। ये कथाएँ धीरे-धीरे व्यापक रूप लेती गईं। इसी कथा के माध्यम से भावी पीढ़ी को ज्ञान देते चले गए। समाज की संरचना, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को सिखाया गया और आज तक समाज में विभिन्न मौसमों में पर्व-त्योहारों के महत्व को दिखाया गया। इसके माध्यम से बताया गया कि प्राकृतिक पर्यावरण और समुदाय के सामंजस्यपूर्ण संयोजन पर आधारित हो समाज का जनजीवन, पर्व-त्योहार व आजीविका, प्रकृति सश्जन, वीरता एवं कृषि कार्यों पर आधारित है। वैसे तो हो जनजाति में मुख्य रूप से पाँच (5) पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं। ये पर्व-त्योहार प्राकृतिक ऋतु चक्र एवं कृषि एवं अन्य आवश्यकताओं पर आधारित होते हैं।

हो समाज में मनाए जाने वाले पर्व-त्योहार निम्नलिखित हैं :-

1. मागे पोरोब (पर्व)

मागे पोरोब (पर्व) : : हो जनजाति में मागे (MGE) पर्व सब प्रमुख पर्वों में से एक महत्वपूर्ण पर्व है। हो जनजाति में सबसे पहले मनाया जाने वाला पर्व मागे (MGE) पर्व है। यह पर्व सश्जन या सृष्टि से संबंधित है, जो सृष्टि की महत्ता को चरणबद्ध तरीके से हो समाज के दैनिक जीवन में उपयोगिता को बताया गया है। वैसे तो हो जनजाति का यह सबसे पहला और सबसे बड़ा पर्व के रूप में मनाया जाता है। यह पर्व पारंपरिक रूप से ''मागे चन्दु;'' मागे पोनई मुसिं अर्थात दिसंबर कृष्ण पक्ष से लेकर जनवरी शुक्ल पक्ष के मध्य पूर्णिमा को मनाया जाता है। मागे (म M ग G E इ) तीन अक्षरों के संयुक्त शब्द हैं, अर्थात म (M) का अर्थ - शरीर, ग (G) का परिवर्तन और इ (E) का अर्थ विकसित रूप से है। इस प्रकार

से मागे का शाब्दिक अर्थ चिंतन (या गर्भधारण) से मानव रूप बना हुआ वह शरीर जिसमें कि जीव और आत्मा अभी तक पूरी तरह से स्थिर नहीं हुए हैं, उस शरीर के बदलने पर दूसरे नए शरीर का जन्म होना ही 'मागे' हम कहते हैं। मागे का शाश्वत अर्थ - सृष्टि, शरीर और धर्म (मासिक धर्म) के नवीनीकरण को ही वे (लोग) मागे कहते हैं।

''मागे पर्व विश्व के प्राचीन पर्वों में से एक है। मागे पर्व मनाए जाने की परंपरा आदिवासी (कोल) की सभ्यता के विकास के प्रारंभिक चरण से है। हो समुदाय के समस्त पर्वों में से सर्वोपरि, सर्वाधिक महत्वपूर्ण पर्व है। मागे पर्व मात्र हो समुदाय का ही नहीं, वरन उनके साथ गौड़, महली, तांती, कुम्हार भी उल्लासपूर्वक मनाते हैं, और मागे पूजा अनुष्ठान में इनकी भी भागीदारी नियत है।'' वस्तुतः मागे पूजा सिंङव्होंगा की उपासना है, भावी संकट निवारण का अनुष्ठान है। मागे मातश्-पितश् ईश्वर की आराधना है, जो नर-नारी या माता-पिता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन है और मागे पूजा यानि महत्व का प्रतिपादन भी है। हो समाज में मागे पोरोब मुख्य रूप से 8 दिनों का एक पारंपरिक और सांस्कृतिक अनुष्ठान के रूप में मनाया जाता है। इन 8 दिनों के प्रमुख अनुष्ठान निम्नलिखित हैं :-

(1) अनादेर - पर्व की शुरुआत और प्रवेश।

(2) गउम्हरा - चूँकि मवेशी हमारे आर्थिक जीवन-आधार का मूल स्तंभ हैं, इसलिए मवेशियों की सुरक्षा करना और पूजना।

(3) आतेइली - इस दिन दियुरी (पुजारी) के घर हँड़िया (इली) लाया जाता है और नाच-गान का आरंभ होता है।

(4) हो सकम - आदिमानव के जीवन में पहली बार लाज-शर्म का ज्ञान और एक-दूसरे से परिचय कराया। प्रतीक रूप में पवित्र पत्तों व सखुआ के सूड़ा विधान के महत्व पर प्रकाश दिया जाता है।

(5) बुरि पोरोब - साफ-सफाई करने का दिन होता है। इस दिन घर और आँगन की सफाई होती है, तत्पश्चात आराधना की जाती है।

(6) मरं मागे - पूरे मागे पोरोब का सबसे मुख्य दिन और बड़ा दिन माना जाता है। इसी दिन ही मागे पीढ़ और देशाउली नामक स्थान पर पूजा की जाती है।

(7) जातरा - आरंभिक समय में इसी दिन से नाच-गान का छोड़ दिया गया था। इसी याद में ही इस ज्ञान को समझने व दूसरे के लिए विशेष रूप से पड़ोसी देवता का आगमन होता है। यह मेल-मिलाप और जीवन संबंध बनाने का संचार करता है।

(8) हर बगोया - हर बगोया शब्द 'हर बगोया' से बना है, जिसका अर्थ होता है :- एक युवक-युवती को यौन संबंध का ज्ञान देने के बाद जब संबंध बनाया गया, तो बागिया बोंगा द्वारा उन्हें ''कुत्ते के समान'' कहकर संबोधित किया गया। युवक से यह अपमान बर्दाश्त नहीं हुआ और उसने उसे भगा दिया, जिसकी याद में ही 'हर बगेया' अनुष्ठान होता है।

2. ब्ह पोरोब (पर्व)

ब्ह पोरोब हो जनजातीय समाज में मनाया जाने वाला एक अन्य प्रमुख पर्व है। यह पर्व मार्च और अप्रैल के मध्य अर्थात 'सेंदरा चान्ड्;' में मनाया जाता है। वैसे तो यह पर्व मुख्य रूप से पुरुष प्रधान पर्व है। इस त्योहार में सभी लोग मिलकर नश्त्य करते हैं। दियुरी (पुजारी) पारंपरिक रूप से पूजा-पाठ करते हैं, इसके बाद सभी लोग अपने-अपने घर चले जाते हैं। घर वापस आने पर घर के मुख्य दरवाजे पर साल (सखुआ) के फूल खोंसे जाते हैं। शाम के समय दियुरी के घर के पास अखाड़े में दमा-दुमं (पारंपरिक वाद्य यंत्र) बजाकर लोग नश्त्य करते हैं। ब्ह पर्व मुख्य रूप से तीन दिनों में मनाया जाता है, जो निम्नलिखित है :-

(1) कटब/गुरिः प्रथम दिन घर आंगन को गोबर लेप कर साफ सफाई करते है। इसी दिन ब्ह पोरोब में पूजे जाने वाले देवी-देवताओं को कल के मुख्य पोरोब मे शरिक होने के लिए न्योता दिया जाता है।

(2) गापातेर/मरं पोरोब - 'मरं पोरोब' इस पर्व का मुख्य दिन होता है। इसी दिन साल/सखुआ (सरजोम ब्ह) के

फूल को मान-सम्मान के साथ जायरा या जंगल से लाया जाता है और आराधना की जाती है। पूजा-आराधना होने के बाद सभी लोग कानों और खोंपा (जूड़े) में साल के फूल को ग्रहण करते हैं।

(3) गिड़ि ब्ह/बासि पोरोब - इस पर्व के अंतिम दिन को ही 'गिड़ि ब्ह' या 'बासि पोरोब' के रूप में मनाया जाता है। इसी दिन जंगल से लाई गई फूलों की डाली को सम्मानपूर्वक एक निश्चित जगह पर विसर्जन रूपी परंपरा के तहत नाच-गान के साथ देषाउलि में पहुँचा दिया जाता है।

बाहा पर्व (व्ह पोरोब) में मुख्य रूप से 10 ताल (राग/चरण) होते हैं :-

- अनादेर
- ब्ह (मुख्य दिन) ताल
- बसि
- जापे
- चांगुड़िया
- गाडुवा
- दांवणेया
- गेना
- जादुर
- केम्टा

3. हेरो पर्व (पोरोब)

हेरो पर्व (पोरोब) :- हेरो पर्व दो शब्दों से मिलकर बना है :- 'हेः' और 'रोः'। यहाँ 'हेः' का मतलब आना और 'रोः' का मतलब किसी यंत्र या साधन के सहारे किसी चीज/वस्तु में छेद करना (धान बोना) है। इसके पीछे एक लोक-कथा यह भी है कि प्राचीन समय में एक जंगली पशु द्वारा एक व्यक्ति को बुरी तरह से मार गिराने पर उस व्यक्ति ने उसका साहसिक सामना किया था। हेरो पोरोब मुख्य रूप से धान की बुआई या संकुचन से मुक्ति का पर्व है, जो कृषि कार्य (धान की बोनी) संपन्न होने के उपरांत मनाया जाता है। इसीलिए इसे पूरी तरह कृषि पर आधारित पर्व भी कहा जाता है। इस पर्व को पारंपरिक रूप से जुलाई-अगस्त के महीने में मनाया जाता है।

कृषि कार्य में उपयोग किए गए वाद्य यंत्रों या औजारों की धुलाई और साफ-सफाई करके पूजा की जाती है। हेरोः पर्व में अरवा (अरवा चावल) का पीठा 'गुंगु' के पत्ते में बनाकर और अच्छे से लपेटकर पकाया जाता है। अगली सुबह, हँड़िया और पीठे को 'गुंगु' पत्ते में लपेटकर देवी-देवताओं व घर के पूर्वजों की आत्माओं के समक्ष चढ़ाया जाता है। तत्पश्चात घर के सभी सदस्यों एवं सगे-संबंधियों के साथ सामूहिक रूप से इसे ग्रहण किया जाता है। शाम से ही देवी-देवताओं के सम्मान में नाच-गान किया जाता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के ताल बजाए जाते हैं।

ताल इस प्रकार है :-

दिनगे दिनेम हुजुः सेता।
जं गे जंडेम जोमा।

गीत इस तरह से है :-

दिन गे डेजं-डेजं
दिन गे डुबुल-डुबुल
हातु कुरी अखाड़ा रे रुमुला कड्।

4. जोमनामा पर्व (पोरोब)

जोमनामा पर्व (पोरोब) :- जोमनामा यानी नया अन्न (अनाज)। नया अन्न खाने को ही 'जोमनामा' कहा जाता है। इसका दूसरा पहलू यह है कि मानव जीवन का दोबारा नया या पुनर्जन्म होने से है। इसका ऐतिहासिक पक्ष यह है कि 'लिटा' के पिता 'सुरि' को सात पहाड़ों के पार के पहाड़-खंड से लाया गया (जिडन् दः) अमश्त जल की मदद से पुनः जीवित करना है। इसी याद में आज जोमनामा पर्व मनाने की प्रथा बड़े ही पवित्रता से हो समाज में मनाई जाती है। यह पर्व मुख्य रूप से सितंबर -अक्टूबर के महीने में मनाया जाता है। इस मौसम में तैयार हुए नए गोड़ा धान का चूड़ा बहुत ही पवित्रता के साथ बनाया जाता है। चूड़ा तैयार कर 'भेलवा' के पत्ते में देवी-देवताओं और घर के पूर्वजों के समक्ष चढ़ाया (अर्पण किया) जाता है। इसके बाद घर के लोग एवं आगंतुकों (मेहमानों) के साथ इसे सामूहिक रूप से ग्रहण करते हैं।

संदर्भ सूची

1. ब्ह बुरू व्होंगा बुरू भाग 1 - लाको बोदरा
2. ब्ह बुरू व्होंगा बुरू भाग 2 - लाको बोदरा
3. हो दिसुम हो होनको भाग 2 - धानुर सिंह पुरती
4. हो जनजाति में ब्ह गीत - डॉ. दमयंति सिंकु
5. सरना साधक हो और उनके पर्व त्योहार - बिरंची गोप
6. कोल हो संस्कृति (दस्तुर) दर्पण - कोल हो डुबलिया बिरूवा
7. हो लोक जीवन और कृशि पर्व - उदय चंद्र बोदरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

झारखण्ड में विस्थापन एक समस्या एवं संवैधानिक प्रावधान

प्रेम रोशन एक्का
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
मधुपुर महाविद्यालय मधुपुर, देवघर।
ईमेलः iampremroshanekka@gmail.com

शोध सारांश :

भारतीय संविधान की धारा 244 के तहत झारखंड क्षेत्र के 112 प्रखंडों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करते हुए उसे पाँचवीं अनुसूची में डाला गया। इसके अन्तर्गत आदिवासी परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया। परन्तु जनजातीय परामर्शदात्री समिति राज्य सरकार को कभी अपना सुझाव नहीं दे सकी। इसके दो कारण थे, एक तो इसकी बैठक अत्यन्त दीर्घकालीन हुआ करती थी, दूसरी, इस समिति के महत्त्व को खुद राज्य सरकार नजरअंदाज करती रही। संविधान प्रदत्त आदिवासी विकास के सशक्त प्रावधानों के बावजूद संविधान का उल्लंघन हुआ और 1964 में पहली बार राज्य सरकार ने छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम में संशोधन करते हुए इसके जमीन सम्बन्धी कानूनी प्रावधानों को बदल दिया जिसके कारण आदिवासियों और मूलवासियों की जमीनों को अवैध तरीके से बाहर से आकर बसने वालों ने बड़े पैमाने पर अपने कब्जे में कर लिया और रातों-रात उन जमीनों पर बहुमंजिली इमारतें खड़ी कर दी गईं। पुनः 1996 में बिहार सरकार ने आदिवासी परामर्शदात्री समिति के अस्तित्व को नकारते हुए उसकी अनुशंसा के बगैर छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम में संशोधन करते हुए आदिवासियों की जमीन को खनिज और औद्योगिकरण के लिए हस्तांतरित करने की छूट दे दी। इस प्रकार से केंद्र और राज्य सरकारों ने योजनाबद्ध तरीके से जनजातियों और मूल वासियो पूरे अपना अधिपत्य दौर की भरपूर कोशिश की तथा उन्हें शोषित करने के नए नए तरीका अपनाए अर्थात् आजादी के बाद राष्ट्र के विकास के नाम पर नीतिगत योजनाएं बनाई गई और पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा उन इलाका में हो। वकास को परियोजनाओं को थोपा गया जहां देश के सबसे पिछड़े उपेक्षित और गरीब जन निवास करते रहे हैं। यह एक खास वर्ग है जो आदिवासियों, दलितों के साथ अन्य गरीबजनों का है। इन बातों को समझने के लिए विभिन्न गोजनाओं के गहरे अन्वेषण की जरूरत है ताकि समाज और देश के सबसे उपेक्षित जनों की गहरी पीडा को उकेरा जा सकेगा। राष्ट्र विकास के लिए पूर्व व निर्धारित योजना के तहत जो विकास के पॉडल लागू किए गए उससे महाविनाश की जो विभीषिका का इतिहास पैदा हुला उसके हल अब तक नहीं ढूंढे जा सक हैं। आदिवासियों के भूमि, प्रक्षेत्र और पाकृतिक संसाधनों पर पारम्पारिक और मालिकाना हक का संघर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ के आदिवासी जनों के स्थायी मंच से उठाया गया। भूमि सुधार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में यह बात उठी। यह आवाज इसलिए भी क्योंकि जबरन बेदखलीकरण की जबरदस्त प्रक्रिया दशकों से चली आ रही है।

विशिष्ट शब्द - राष्ट्र, पीड़ा, महाविनाश, संसाधाधन विभीषिका, उकेरा, अन्वेषण ।

विश्लेषण - झारखंड में अंग्रेजों द्वारा, 1793 में स्थायी बन्दोबस्ती एवं जमींदारी प्रथा को थोपे जाने के बाद आदिवासियों

एवं अन्य गरीब किसानों से लगातार जमीन छीने जाने का इतिहास रहा है। सन् 1793 के पहले जमीन गाँव की सामूहिक सम्पत्ति थी। जमींदारी प्रथा ने उसे व्यक्तिगत सम्पत्ति में परिणत कर दिया, जिससे कि सामूहिकता पर आधारित समाज को गहरा धक्का लगा और इसे आदिवासी समाज ने आसानी से स्वीकार भी नहीं किया। इस व्यवस्था के विरुद्ध एक के बाद एक विद्रोह हुए, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों को बाध्य होकर जमींतारी व्यवस्था के अन्तर्गत ही कुछ हद तक परम्परागत सामूहिकता को विभिन्न कानूनों के जरिए समय-समय पर जोड़ना पड़ा। उदाहरण के लिए छोटानागपुर में भूईहरी एवं खुटकट्टी जोतों की अवधारणा को स्वीकार किया गया तथा संताल परगना में जमींदारों के अधिकारों में कटौती कर प्रधानी व्यवस्था एवं ब्रिटिश कोर्ट को अधिकार दिए गए। इन दोनों ही क्षेत्रों के लिए अलग-अलग काश्तकारी कानून भी बनाए गए। इन सबों के बावजूद झारखंड में आदिवासियों एवं अन्य गरीब किसानों के हाथ से जमीन के निकलते जाने की प्रक्रिया गैर-कानूनी और कानूनी दोनों ही तरीकों से अबाध रूप में जारी रही। यहाँ जमीन छिनने के प्रचलित तरीकों में भूगूत बंधाक, जरपेशगी, इस्तीफानामा, शिक्पो, दान कुर्फानामा, कोलयूशेम टाइटल सुइट आदि का इस्तेमाल महाजनों एवं जमींदारों द्वारा किया जाता रहा है, इसके अतिरिक्त 1932-35 के सेटलमेंट के पहले और बाद में बड़े पैमाने पर मालगुजारी बकाया के चलते रैयतों की बेदखली हुई थी। जमशेदजी टाटाजी ने 1907 में भारत में विस्थापन की पहली नींव डाली।

भारत में विस्थापन की पहली नींव झाड़खंड के जमशेदपुर से प्रारंभहोती है और वहां भी टाटा स्टील कंपनी ने ही स्टील फैक्टरी के नाम पर आदिवासियों को विस्थापित किया और कंपनी की स्थापना की। झाड़खंड की समरगाथा के लेखक शैलेन्द्र महतो ने लिखा है कि जमशेदजी नेशरवान जी टाटा ने टाटा स्टील कारखाना स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम साकची, बेलडीह, जुगसलाई और सुसनीगड़िया गांवों का अधिग्रहण किया। इसके बाद कम्पनी का विस्तारीकरण करने के लिए अनेक गांवों कालामाटी, साकची बिष्टुपर, केसीकुदर महुलवेड़ा, काशीडीह, नीलडीह, गोलमुरी, बारीडीह, रानीकुदर, कदमा, धातकीडीह, भाटिया, सोनारी, खूंटाडीह, उलियान गमरियागोड़ा, सिदगोड़ा, भालूबासा, वाड़ा, भुइंयाडीह, मोहरदा, जोजोबेड़ा का वाद में अधिग्रहण किया गया। डिमनालेक के लिए पटमदा प्रखंड के तीन गांवों मिर्जाडीह, लालम और गेडुआ, की जमीन का अधिग्रहण किया गया। सिहभूम डिस्ट्रिक्ट गजेटियर 1958 के पेज नं. 302 और 303 में टाटा द्वारा टिस्को कम्पनी स्थापित करने का वर्णन है। पिछले सर्वे सेटलमेंट के पहले और बाद में यहाँ बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ है। हरोनीगंज में पहला कोयला खदान 1785 में चालू हुआ। धनबाद के इलाके में 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कोयला खनन शुरू हुआ। 20वीं सदी के शुरू में प्रसिद्ध टिस्को कारखाने की नींव पड़ी। तव ते ही लगातार यहाँ के लोगों के पास से जमीन बड़े पैमाने पर जाती रही और व्यापक तौर पर विस्थापन का यह क्रम आजादी मिलने के बाद भी विकास के नाम पर और तेज हुआ है। जिन क्षेत्रों में कभी आदिवासियों की बड़ी संख्या रहती थी, आज खोजने पर भी वहाँ नहीं मिलेगी। औद्योगिकीकरण के इसी दौर में बड़े पैमाने पर यहाँ के आदिवासियों को असम के चाय बगानों एवं रेलवे निर्माण में काम के लिए ले जाया गया, जो लौटकर वहाँ से नहीं आ पाए। इसके साथ ही 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही बाहर के लोगों का यहाँ आना शुरू हुआ, जिसमें अधिकांश कोयला खदानों तथा अन्य उद्योगों में मजदूरी करने के लिए आए थे। साथ ही कुछ ठेकेदारी करने के लिए भी आए थे। कुछ ठेकेदार व अन्य व्यापारी वर्ग के साथ माफिया किस्म के लोग भी आए। मजदूर तो जमीन के मालिक नहीं बन सके लेकिन दूसरे किस्प के लोगों ने जमीन हासिल कर ली और सर्वे सेटलमेंट में अपना नाम भी दर्ज करवा लिया। अंग्रेजों के जमाने से ही बने कानूनों के माध्यम से खुटकट्टीदारों और अन्य आदिवासियों को जगल की जमीन से ब-दखल कर दिया गया और उन्हें आरक्षित और संरक्षित वनों के अन्दर डाल दिया गया। फिर भी दिलचस्प बात यह है कि आज भी वन क्षेत्रों के अन्दर रिहायशी गाँव आबाद हैं। लेकिन इनका अस्तित्व राजस्व मौजां के रूप में स्वीकार नहीं किया गया और वहाँ रहने वाले लोगों का नाम किसी सर्वे सेटलमेंट में नहीं पाया जा सकता। सिंहभूम जिले में अब भी 1971 के जिला हैंडबुक के अनुसार इस तरह के 27 वन गाँव हैं। 'कमेटी ऑन झारखंड मैटर' के अनुसार झारखंड में हड़पी हुई आदिवासी जमीन से सम्बन्धित 98 हजार मुकदमें विभिन्न अदालतों में लंबित पड़े थे। राँची शहर के नजदीक दलादली और सिमलिया मौजा में 224 एकड़ भुईहरी जमीन को

धोखाधड़ी से हथिया लिए जाने के मामले में दक्षिण छोटानागपुर कमीश्नर का 13 अगस्त, 2001 को दिया गया फैसला इस सच्चाई को उजागर करता है कि ब्रिटिश सर्वे सेटलमेंट के दस्तावेज यहाँ के आदिवासियों के हितों की रक्षा करने में विफल रहे हैं। आदिवासियों की जमीनें उनके द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ विभिन्न विद्रोहों के दौर में तथा राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलन के दौरान कर-बन्दी आन्दोलन के कारण छीनी गईं। कानून बनाए जाने के बावजूद झारखंड में अधिकांश टानाभगतों की जमीन वापस नहीं हुई।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 ने विस्थापन की आधारशिला का शिलान्यास किया। यह अधिनियम केवल भूमि अधिग्रहण के प्रावधान की वकालत करता रहा है। यह अधिनियम ब्रिटिश काल में एक ताय तवर कानूनी हथियार के रूप में दमन शोषण करने और आर्थिक नियंत्रण का यंत्र साबित हुआ। जन हित की व्यापक परिभाषा का हवाला देकर कानूनी और सैद्धान्तिक तौर पर भूमि पर नियंत्रण किया गया। इस अधिनियम की आड़ में देश के आदिवासी इलाकों व राज्यों में काश्तकारी कानूनों की घनघोर अनदेखी की गई। राज्य की सम्प्रभुता का हवाला देकर हमेशा से छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम और संतालपरगना काश्तकारी अधिनियम एवं विलिकिन्सन रूल की अवहेलना की जाती रही है। इससे आदिवासियों के भूमि व वन संबंधी पारम्पारिक अधिकारों की घनघोर उपेक्षा की जाती रही है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 के पूर्व भी बड़े पैमाने पर विस्थापन किया गया है। ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार ने 1864 में वन विभाग की स्थापना की। एक जर्मन विशेषज्ञ डिटरिच ब्रानडिस भारत के वन महानिरीक्षक होकर आए। उन्होंने वन की महत्ता को समझते हुए 1865 में भारतीय वन अधिनियम पारित किया। इसके माध्यम से वन भूमि के अधिग्रहण का कार्य किया गया और बड़े पैमाने पर रेल लाइनें बिछा दी गई। काफी बहसों के बाद एक समग्र कानून भारतीय वन कानून 1878 लाया गया। इस कानून ने पूरा का पूरा भूमि पर नियंत्रण का अधिकार सरकार को दे दिया। एक तरह का सरकार का एकाधिकार स्थापित हो गया। अधिकतर पारम्पारिक सामुदायिक भूमि पर भी सरकार ने अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया। इन सामुदायिक भूमि का कोई निजी पट्टा नहीं था। इसके लिए 1878 के कानून का बखूबी इस्तेमाल किया गया और जब जरूरी हुआ भूमि का अधिग्रहण कर उसे कानूनी जामा पहना दिया गया। इस तरह सरकार ने 1890 के आते तक 84,700 वर्ग किलोमीटर तक के वन भूमि को अपने स्वामित्व में ले लिया। इस तरह भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 के पूर्व सरकार ने एक कार्यपालक आदेश के तहत ग्रामीण भारत के सदियों के काश्तकारी इस्तेमाल की भूमि को ले लिया। वन में रहनवाले सुरक्षित और आरक्षित वन के तहत सभी वन भूमि में रहनेवालों को एक कानून के द्वारा गैरकानूनी करार दिया गया। जबकि वनों के अन्दर गांव अवस्थित थे। ग्रामीणों के तीव्र विरोध के कारण उन्हें वन भूमि में अतिक्रमणकारी घोषित कर दिया गया। इससे भी विस्थापन की समस्या खड़ी हो गई। 1894 में ब्रिटिश सरकार की वन नीति एक ऐतिहासिक कानून के रूप में भारत के अनैच्छिक विस्थापन के इतिहास के रूप में चिन्हित हो गया। 1947 तक वन विभाग ने 99,000 वर्ग मील भूमि का अधिग्रहण कर लिया और 16 मिलियन कुल आबादी को विस्थापित कर दिया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक अधिकार समिति द्वारा 1997 में अपनाई गई सामान्य टिप्पणी 7 में जबरन बेदखली को इस तरह परिभाषित किया गया है-व्यक्तियों, परिवारों व समुदाय को उनकी ख्वाहिश के विरुद्ध उस भूमि या घर जिस पर उनका कब्जा हो और जिसके लिए जायज कानूनी व अन्य सुरक्षा प्रावधान न हों, से स्थाई या अस्थाई तौर पर हटा देना। इसमें कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को आवास का अधिकार एक मानवाधिकार है। उपयुक्त आवास का मानवाधिकार व भूमि का अधिकार एक सम्मानयुक्त जीवनयापन का अहम हिस्सा है। इसलिए भूमि के अधिकार को मानवाधिकार के रूप में स्वीकार करना महत्वपूर्ण हो जाता है। उपयुक्त आवास के मानव अधिकार से जुड़े होने के अलावा भूमि का मानवअधिकार अन्य मानव अधिकारों मसलन भोजन, श्रम, स्वास्थ्य, व्यक्ति व निवास की सुरक्षा के साथ भी जुड़ा है। इसके अलावा जबरन बेदखली उपयुक्त आवास के मानव अधिकार का उल्लंघन है और बेघरबारी को बढ़ाता है। इस विचार को संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग के प्रस्ताव 1993/77/2004/28 में भी पुनः दोहराया गया है।

कहा गया है कि जबरन बेदखली की वजह से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों का भी उल्लंघन होता है, मसलन

व्यक्ति की सुरक्षा और निवास सुरक्षा के मानवाधिकार। कुछ अन्य मामलों में जहां जबरन बेदखली के साथ हिंसा जुड़ी हो और उचित प्रक्रिया का अभाव हो वहां इससे स्वास्थ्य भोजन, जल, आजीविका, शिक्षा क्रूर अमानवीय व अपमानजनक व्यवहार से स्वतन्त्रता व आवाजाही की स्वायत्ता के मानवाधिकारों का भी हनन होता है। विकास आधारित बेदखली एवं विस्थापन पर सयुक्त राष्ट्र के मल सिद्धान्त व दिशानिर्देश 1993/77 के अनुच्छेद 4 से 8 में विस्थापन की परिभाषा देने की कोशिश की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार मानकों के संदर्भ में जबरन बेदखली के वर्णन व अन्य प्रस्तावों के आधार पर कहा गया है कि दिशानिर्देश उन प्रक्रियाओं व त्रुटियों पर लागू किए जा सकते है जिनमें व्यक्तियों, जगह कम कर दें समूहों व समुदायों का जबरर्दस्ती अथवा अनचाहा विस्थापन किया गया हो। ऐसी स्थिति में जहां लोगों को उन आवासों, जमीनों या साझे संसाधनों से विस्थापित किया गया हो जिन पर वे आश्रित थे। जब इस बेदखली ने इन व्यक्तियों, समूहों व समुदायों को उस विशेष जगह पर बसने/घर बनाने या आजीविका कमाने से महरूम कर दिया हो तथा यह विस्थापन उन्हें कोई कानूनी व अन्य या सुरक्षा या प्रावधान मुहैया करवाए बगैर किया गया हो। इसके अनुच्छेद 5 में कहा गया है कि अर्नृतराष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत जबरन बेदखली एक विशेष मसला है जिसे कानूनी रूप से काश्तकारी की अवधि सुरक्षा के अभाव के साथ जोड़ा जाता है और जो उपयुक्त आवास के अधिकार का एक महत्वूपर्ण एवं अभिन्न अंग है। जबरन बेदखली के साथ लगभग उसी तरह के दुष्प्रभाव जुड़े हैं जैसे मनमाने विस्थापन के फलस्वरूप होते हैं।

निष्कर्ष :

विकास के साथ आज के युग में जिन दो शब्दों का अन्योन्याश्रय संबंध बना है वे हैं विस्थापन और विपन्नता। विकास जनित विस्थापन के जो इतिहास और विवरण उपलब्ध है उनमें विकास का मतलब ही विस्थापन कहा जाने लगा है। जो कि विपन्नता लाती है। विकास यानी की अंग्रेजी के शब्द डेवलेपमेंट के साथ भी दो शब्दों का अन्योन्याश्रय संबंध हाल के दशकों में उभरा है। डेवलपमेंट के साथ अंग्रेजी के शब्द डिसप्लेसमेंट और डिप्राइवेशन, डिसएडवान्टेज यानी कि विस्थापन के साथ सभी तरह मानवाधिकारों से वंचित होना है। ऐसे में जब भी विस्थापन पर अध्ययन होता है तो डेवलपमेंट डिसएग्रीमेंट और डिप्राइवेशन शब्द स्वतः एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। इस आधुनिक युग में विस्थापन का दूसरा पर्याय मानवाधिकार का उल्लंघन होना भी बताया जाता है। विस्थापितों के मानवाधिकार की रक्षा अब तक होने के उदाहरण नहीं मिलते है। विस्थापित होना मतलब ही आवास के अधिकार से वंचित होना, मतलब ही जीवनयापन की सुविधाओं से बेदखल होना,, मतलब पारम्परिक जीवन पद्धति से सदा के लिए अलग थलग हो जाना, मतलब की भोजन और अन्य बुनियादी जरूरतों की चीजों से ही वंचित हो जाना है। यह मानवाधिकार का घनघोर उल्लंघन है। बड़े पैमाने पर लोगों का स्थानान्तरण, निष्कासन, निकमिजान जातीय शुद्धिकरण तथा घरों, जमीनों व समुदायों से लोगों का अनचाहा व जबरन विस्थापन करनेवाली प्रक्रियाएं शामिल हैं। दिशानिर्देश के अनुच्छेद 6 में विस्थापन के संदर्भ में कहा गया है कि जबरन बेदखली से विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों का उल्लघन होता है जिसमें उपयुक्त आवास, भोजन, जल, स्वास्थ्य, शिक्षा, काम, व्यक्ति की सुरक्षा, घर की सुरक्षा, क्रूर अमानवीय व अपमानजनक व्यवहार से सुरक्षा तथा आवाजाही की स्वतंत्रता शामिल है। बेदखली कानूनी प्रक्रिया के तहत केवल अपरिहार्य परिस्थिति में ही की जानी चाहिए तथा इसके चलते अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों व लोकोपकारी कानूनों का पालन किया जाना चाहिए। इसके अनुच्छेद 7 में जबरन बेदखली की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि जबरन बेदखली असमानता, सामाजिक संघर्ष, अलगाव, ''जमघटवादी'' प्रक्रिया को बढ़ावा देती है।

जल, जमीन, जंगल हमारा है। यह पेड़ हमारा है, यह पहाड़ हमारा है, यह धरती हमारी है। आजादी के पहले आदिवासियों द्वारा ब्रिटिश लोगों के खिलाफ इस प्रकार के नारे लगाए गए थे। हालाँकि अब ब्रिटिश शासक जा चुके हैं लेकिन स्थिति अब भी वैसी ही है। अपने दमन के खिलाफ आदिवासियों को आज दूसरी आजादी की लड़ाई लड़ने और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करने की जरूरत आ पड़ी है। आदिवासी लोग जंगलों में युगों से रहते आए है और जंगल के उत्पादों से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इधर पारिस्थितिकी विज्ञान के तहत जंगली जानवरों को बचाने के नाम पर विभिन्न तरह की

योजनाएँ, जैसे राष्ट्रीय पार्क, वन्यजीव अभयारण्व आदि स्थापित किए गए हैं। इन सबके कारण आदिवासियों को अपनी भूमि से विस्थापित होना पड़ा है। आदिवासियों को पैसे व शराब का लालच देकर या कभी-कभी जबरन उनकी भूमि से बेदखल कर दिया जाता है। शिकार करना, मछली पकड़ना और वनोत्पाद इकट्ठा करना, आदिवासियों का परम्परागत व्यवसाय रहा है।

संदर्भ सूची

1. विजय ए. जे.एस. कामल, 2016, भारत में आदिवासियों की स्थिति, जेवियर पब्लिकेशन, राँची कर्बला टैक राड, पी. बी.-8 रांची, 834001, झारखण्ड पृष्ठ संख्या- 163-164
2. वर्मा कमलेश, 2019. आदिवासीयों का विकास एवं विस्थापन, प्रथम संस्करण 2019 बी.के. ऑफ सेर नवीन शाहदरा दिल्ली, पृष्ठ संख्या-211-212
3. शर्मा प्रो. बिमला चरण एवं केशरी विक्रम, 2017 छोटानागपुर का भूगोल, झारखण्ड झरोखा, न्यू मार्केट, रातू रोड, राँची, झारखण्ड, पृष्ठ संख्या- 26-28
4. स्वामी स्टेन एवं जेवियर सोरेंग, 15 फरवरी 2015, भूमि अधिग्रहण अध्यादेश-2014 एवं विस्थापन का आदेश, झारखण्ड एक्सप्रेस सिमडेगा भवन, डंगरा टोली, राँची, पृष्ठ संख्या- 301-303
5. सिंह सुरेश, 2009, उलगुलान (बिरसा मुण्डा और उनका आंदोलन) आदिवासी प्रकाशन, राँची, पृष्ठ संख्या- 11-12
6. सिंह एम. के0, 2007, झारखण्ड विकास एवं राजनीतिक सम्भावना एवं चुनौतियाँ, गगनदीप पब्लिकेशन, पटना, पृष्ठ संख्या- 169-70
7. सिन्हा सच्चिदानन्द, 2001, संस्कृति विमर्श, वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर पॉलिटेक्निक कॉलेज के पास, बीकानेर-334003, पृष्ठ संख्या- 168-169
8. सिंह ए. के और आर. शरण, एम. जायसवाल, स. चौधरी, 199 स्टेटस ऑफ ट्राइबल्स इन झारखण्ड, सोशल चेन्ज भाग-29, पृष्ठ संख्या- 156
9. सिंह सुरेश, 2009, उलगुलान (बिरसा मुण्डा और उनका आंदोल आदिवासी प्रकाशन, राँची, पृष्ठ संख्या- 178-179
10. मिंज सुनील, 2014, अनुचित क्षेत्रों में सवैधानिक प्रावधान, प्रथम संस्करण, देशज प्रकाशन, उमिला इंक्लेव पीस रोड, रांची, पृष्ठ संख्या- 174
11. मेहता भुनेश्वर प्रसाद, 2012, झारखण्ड में विस्थापन एक बडा अभिशाप, प्रकाशक श्री चन्ददेव सिंह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी कार्यालग राँची-काली मंदिर रोड, राँची, पृष्ठ संख्या- 119
12. महता एस आर., 1997. प्रोपर्टी पोपुलेशन एण्ड सस्टेनेबुल डेवलपमेन्ट, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या-199
13. मुर्मू डॉ. प्रेमचन्द, 2014, लैन्ड ऐमिन्यू प्रकाभ प्रकाशन, नई दिल्लो, पृष्ठ संख्या- 134
14. महतो डॉ. पारसनाथ, 2003, आदिवासियों का संघर्ष सनातन पब्लिशिंग हाउस, दरियागज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-169
15. मेहता भुवनेश्वर प्रसाद, 2015. झारखण्ड में विस्थापन एक बडा अभिशाप कार्यालय, भारतीय कम्युनिष्ट पाटों रांची, पृष्ठ संख्या- 256-258
16. रतन, आर.पी. सिंह 2009, झारखण्ड में कृषि विकास की रणनीति और सम्भावनाएँ (झारखण्ड दिसुम मुक्तिगाथा और सूजन के सपने राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 314-315

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Desire to Dispassion: Vairāgyaśataka and the Bhagavad Gītā

Deepthi Chandran
Research Scholar, Govt.sanskrit College
Thiruvananthapuram, Kerala-695013
Email: sijudeepthi10@gmail.com
Phone No: 8075182761

Abstract

Detachment from material desires (*vairāgya*) is a foundational concept in classical Indian philosophy, addressing the perpetual tension between worldly engagement and spiritual liberation.This article explores the concept of vairāgya (dispassion or detachment) through a comparative analysis of Bhartṛhari's Vairāgyaśataka and the Bhagavad Gītā. While both classical Sanskrit texts identify desire (kāma) as the root cause of human suffering and bondage, they prescribe distinct pathways toward achieving dispassion. Bhartṛhari's work reflects the viewpoint of a world-weary ascetic, emphasizing literal renunciation and withdrawal from the material world. Conversely, the Bhagavad Gītā presents a framework of internal detachment, advocating for niṣkāma karma (selfless action) within the matrix of societal duties. By examining these contrasting yet complementary approaches, this paper illuminates the psychological and spiritual dimensions of transitioning from desire to dispassion in Indian philosophy.

Keywords

Vairāgya, Vairāgyaśataka, Bhagavad Gītā, Karmayoga, Detachment, Sannyāsa, Sanskrit Literature, Indian Philosophy.

Introduction

In the landscape of classical Indian philosophy, the transition from pravṛtti (active engagement with the world) to nivṛtti (withdrawal and cessation) represents a foundational spiritual evolution. At the core of this transition lies vairāgya, a term derived from the root rañj (to color), signifying the fading of worldly coloring or the cultivation of dispassion. Human existence is chronically driven by kāma (desire) and tṛṣṇā (thirst for sensory experience), forces that Indian traditions consistently identify as sources of existential binding and suffering.To understand the mechanics of overcoming desire, scholars frequently turn to two seminal texts: the Vairāgyaśataka of Bhartṛhari and the Bhagavad Gītā.

Bhartṛhari's Vairāgyaśataka: A century of poetic epigrams reflecting the acute existential fatigue of a courtly poet oscillating between sensory pleasure and monastic asceticism.

The Bhagavad Gītā: A philosophical dialogue set upon a battlefield, offering a synthesis of jnāna (knowledge), bhakti (devotion), and karma (action) to guide a warrior paralyzed by moral conflict.

Written in vastly different contexts the former an episodic, poetic reflection on the vanity of courtly life, and the latter a philosophical dialogue set on a battlefield both texts serve as profound manuals on mastering the mind. This article compares how these works conceptualize the anatomy of desire and the cultivation of dispassion, showcasing a spectrum that ranges from outward asceticism to inward psychological realignment.

The Anatomy of Desire

To appreciate the remedy of dispassion, one must first understand the diagnosis of desire as presented in both texts. In the Vairāgyaśataka, Bhartṛhari describes desire not merely as a preference, but as an insidious, consuming disease. He observes that while human physical faculties wither with age, desire remains deceptively youthful: "The enjoyments have not been enjoyed, but we ourselves have been enjoyed… time has not decayed, but we have decayed; desires have not worn out, but we are worn out" . For Bhartṛhari, desire is a psychological trap that feeds on illusion making the transient appear permanent and the miserable appear pleasurable. The Bhagavad Gītā structuralizes this psychology in a highly systematic manner. In Chapter 2, Krishna outlines the "ladder of fall," tracing how casual contemplation of sense objects leads to attachment, which breeds desire. Unfulfilled desire inevitably generates anger, leading to delusion, loss of memory, destruction of discrimination, and ultimate spiritual ruin. The Gītā identifies desire as the "all-devouring, sinful enemy" that clouds wisdom just as smoke obscures fire.

Vairāgyaśataka: The Path of Radical Withdrawal

A century of poetic epigrams reflecting the acute existential fatigue of a courtly poet oscillating between sensory pleasure and monastic asceticism. Bhartṛhari's approach to vairāgya is deeply rooted in the ascetic tradition. Having allegedly oscillated between the pleasures of the royal court and the solitude of monastic life, his verses carry the weight of lived disillusionment.For Bhartṛhari, true dispassion requires physical severance from the objects of temptation. He argues that as long as one remains in environments of wealth, power, and sensory indulgence, the mind remains vulnerable to agitation. The Vairāgyaśataka extols the virtues of the forest, the banks of the Ganges, and the life of a wandering mendicant who sleeps on the bare earth and begs for sustenance.Dispassion in this text is driven by a deep realization of transience (anityatā). Bhartṛhari strips away the glamour of worldly achievements, reminding the reader of the inevitability of old age, disease, and death. Safety from fear, he asserts, exists exclusively in renunciation: "In enjoyment is the fear of disease; in social status, the fear of downfall; in wealth, the fear of kings… everything in this life is fraught with fear; renunciation alone makes a man fearless" (Verse 31). Thus, vairāgya in the Vairāgyaśataka is a protective armor achieved through world-rejection.

The Bhagavad Gītā: detachment in Action

A philosophical dialogue set upon a battlefield, offering a synthesis of jnāna (knowledge), bhakti (devotion), and karma (action) to guide a warrior paralyzed by moral conflict.The Bhagavad Gītā offers a radically different paradigm. Confronted with Arjuna's desire to abandon his duty and flee

to the forest as a mendicant an impulse very similar to the spirit of the Vairāgyaśataka Krishna explicitly discourages external renunciation. Krishna argues that total cessation of action is physically and psychologically impossible for a living being.Instead, the Gītā redefines vairāgya not as the abandonment of action (sannyāsa), but as the abandonment of the fruits of action (karma-phala-tyāga). This is the doctrine of niṣkāma karma. Krishna tells Arjuna: "To action alone hast thou a right and never at all to its fruits" .In this framework, the seeker does not flee the battlefield of life; rather, they alter their internal relationship with their actions. The world is not inherently evil or corrupting; it is the ego-driven desire for specific outcomes that binds the individual. By dedicating all actions to the Divine or performing them out of a sense of cosmic duty (svadharma), an individual can remain entirely detached while fully engaged in the world, much like a lotus leaf remaining dry despite being submerged in water.

Comparative Synthesis: Path of the Forest vs Path of the Battlefield

The divergence between the *Vairāgyaśataka* and the *Bhagavad Gītā* highlights two primary modes of spiritual psychology:

Feature	Vairāgyaśataka	Bhagavad Gītā
Primary Method	External withdrawal and physical renunciation (*nivṛtti*).	Internal renunciation while actively engaged (*pravṛtti*-based detachment).
Ideal Environment	The forest, caves, and sacred riverbanks.	The active world, exemplified by the battlefield.
Nature of Action	Minimized to basic survival needs (begging, meditating).	Maximized as a selfless duty performed without personal stakes.
Target Audience	Individuals seeking a monastic or contemplative lifestyle.	Householders and individuals balancing societal obligations.

Despite these operational differences, the ultimate metaphysical objective remains identical. Both texts aim to free the human consciousness from the tyranny of egoic desire. Bhartṛhari uses visceral, poetic imagery to break the psychological projection of beauty and worth onto transient objects. The *Gītā* provides the philosophical underpinnings to execute this disillusionment without collapsing into social irresponsibility.

Conclusion

The Vairāgyaśataka and the Bhagavad Gītā represent two complementary pillars of dispassion in classical Indian thought. Bhartṛhari gives voice to the poetic and existential reality of human frailty,

demonstrating how worldly pursuits inevitably end in disillusionment and making a compelling case for physical withdrawal. The Bhagavad Gītā, conversely, provides a robust socio-philosophical solution that interiorizes vairāgya, converting daily activity itself into a meditative sacrifice.The journey from desire to dispassion is not a uniform path, but a spectrum of human adaptation. Bhartṛhari's *Vairāgyaśataka* provides a crucial psychological mirror, exposing the exhausting vanity of material pursuits and advocating for the peaceful sanctuary of literal renunciation. The *Bhagavad Gītā* democratizes this very dispassion, translating the peace of the forest into the chaos of daily life through selfless action. Together, they demonstrate that whether achieved by stepping away from the world or stepping selflessly into it, *vairāgya* remains the indispensable key to inner peace and ultimate liberation.

Together, these texts show that whether through physical renunciation or psychological non-attachment, the transition from desire to dispassion remains the vital key to inner tranquility and spiritual autonomy.

Bibliography

- Bhartṛhari. *Vairāgyaśataka (The Hundred Verses on Renunciation)*. Translated by Swami Madhavananda. Advaita Ashrama, 1916.
- Radhakrishnan, Sarvepalli. *The Bhagavadgita*. HarperCollins Publishers, 1993.
- Sargeant, Winthrop. *The Bhagavad Gītā: Twenty-Fifth Anniversary Edition*. State University of New York Press, 2009.
- Kale, M. R. *The Satakas of Bhartrihari: Niti, Sringara and Vairagya*. Motilal Banarsidass, 1971.
- Bhartṛhari. The Satakatrayam of Bhartrhari. Translated by D. D. Kosambi, Bharatiya Vidya Bhavan, 1946.
- Bhartṛhari. Vairāgya Śatakam (The Hundred Verses on Renunciation). Translated by Swami Nikhilananda, Sri Ramakrishna Math, 1976.
- Easwaran, Eknath. The Bhagavad Gita. Nilgiri Press, 2007.
- Radhakrishnan, S. The Bhagavadgītā: With an Introductory Essay, Sanskrit Text, English Translation and Notes. HarperCollins, 1993.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन के विविध संदर्भ : एक अध्ययन

निरंजन कुजूर
सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र, शासकीय कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय धरमजयगढ़, जिला रायगढ़ (छ.ग.)
शोधार्थी - संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय सरगुजा, अम्बिकापुर (छ.ग.)

सारांश : कृषि विकास भारत जैसे कृषि प्रधान देश में तकनीकी परिवर्तन के फलस्वरूप इस क्षेत्र में सतत विकास हुआ है। इससे देश में वैज्ञानिक कृषि प्रणाली का तीव्र विकास हुआ इससे अधिकांश फसलों के लिए पृथक-पृथक अनुसंधान संस्थान कार्य करती है। साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से कृषि उत्पाद का ऑनलाईन मार्केटिंग की सुविधा मिली जिससे कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि के साथ इसके उत्पाद का व्यवस्थित विपणन का विकास हुआ है। वैज्ञानिक कृषि पद्धति का विकास किसानों और देश के लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुआ है, इससे बड़े किसानों को अधिक लाभ और छोटे किसानों को अपेक्षाकृत लाभ में कमी हुई है।

कुँजी के शब्द : आधुनिक तकनीक, कृषि क्राँति, सूचना प्रौद्योगिकी, तकनीकी, परिवर्तन, नवीन आविष्कार, संचार, आधुनिकीकरण, कृषि अनुसंधान, समझौता कृषि आदि।

1. प्रस्तावना : प्रस्तुत शोध अध्ययन में भारतीय कृषि विकास में नवीन तकनीकी के योगदान विषय के अध्ययन हेतु देश के विभिन्न राज्यों में वहाँ की भौगोलिक विशेशताओं के आधार पर विकसित किया गया नवीन फसलों के उत्पादन तकनीक पर आधारित प्रकाशित शोध पत्रों के आधार पर उन्नत कृषि विकास में नवीन तकनीकी के योगदान को जानने का प्रयास किया गया है जिससे देश में हुई समग्र कृषि विकास पर पड़ने वाले प्रभाव के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

2. अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत शोध अध्ययन में देश भर में उन्नत कृषि विकास हेतु अपनायी जाने वाली तकनीकी और उत्पादन पर प्रभाव से देश के किसानों के आर्थिक आत्मनिर्भरता को ज्ञात करना है।

3. अध्ययन का महत्व : प्रस्तुत शोध अध्ययन में कृषि क्षेत्र में तीव्र विकास हेतु अपनायी जाने वाली नवीन तकनीकी से देश के विभिन्न राज्यों में हुए आधुनिक कृषि विकास एवं उत्पादन पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। इस नवीनतम ज्ञान का कृषि क्षेत्र में वृहद प्रचार-प्रसार कर कैसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है, इस हेतु एक शोधपरक अध्ययन है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन देश में विभिन्न राज्यों के विभिन्न फसलों पर आधारित है जिसके उत्पादन हेतु अलग अलग कृषि प्रणाली अपनायी जाती है। डॉ. पारीक सोलंकी, डॉ. ओ.पी. एवं डॉ. महेन्द्र शर्मा (2014) ने "बारानी खेती में अधिक पैदावार लेने की तकनीकी" में सिंचाई किए बिना किसान अधिक उपज कैसे प्राप्त कर सकता है? इस संबंध में नवीन तकनीकी के उपयोग से कम वर्शा वाले उन क्षेत्रों में अपनाया गया जहाँ पानी की कमी के कारण भूमि में नमी कम समय तक रहती है। अध्ययन के अनुसार खेत में नमी को बनाए रखने के लिए समय समय पर खेत की जुताई का तरीका, बीज का चयन,

निर्धारित समय पर बुआई, खाद व उर्वरक का सही मात्रा व उचित समय पर उपयोग, खरपतवार से बचाव, कीट से बचाव जैसे सावधानी कृषि उत्पादन बढ़ाने में मदद करती। डॉ. उमा गोले (2015) में "छत्तीसगढ़ के जशपुर जिले में कृषि का स्थानिक वितरण प्रतिरूप" में बताया कि यहाँ जनजाति बाहुल्य होने के साथ यहाँ की कृषि जीवन निर्वाह का प्रमुख साधन है। यह क्षेत्र पाट प्रदेश होने के कारण अधिकांश धरातलीय बनावट ऊँच-नीच व वनाच्छादित, अकृश्य भूमि और पड़ती भूमि का बड़ा भाग है।

कृषि में तकनीकी परिवर्तन कर कृषि योग्य भूमि के रूप में उन्नयन किये जाने से कृषि विकास को बढ़ावा मिलेगा। जिले में कृषि विकास को बढ़ावा देने के लिए उच्च शिक्षा के प्रति जागरूकता, कृषि में नवाचार, सिचाई हेतु जलाशय का निर्माण, आधुनिक कृषि उपकरणों के उपयोग से किसानों को प्रेरित करके उत्पादन में सुधार किया जा सकता। एस.आर ठाकुर एवं सत्य प्रकाश मिश्र (2015) ने "छत्तीसगढ़ राज्य के कृषि विकास एक अध्ययन" में कृषि अनुसंधान द्वारा योजनाबद्ध कृषि विकास हेतु राज्य सरकार की किसान कल्याण योजनाओं द्वारा उच्च गुणवत्तायुक्त बीज का उत्पादन, उन्नत बीज प्रक्रिया केन्द्रों की स्थापना, बीज गोदाम, सिंचाई के व्यापक विस्तार के लिए अनुदान, फसल चक्र द्वारा मृदा स्वास्थ्य की जाँच, तकनीकी कृषि जिसमें उन्नत प्रणाली और मशीनों के उपयोग को बढ़ावा एवं सब्सिडी का प्रावधान करके सफल किसानों को स्थापित करने पर जोर दिया। छत्तीसगढ़ में वित्तीय संस्थाओं को मजबूत करना, राज्य में कृषि प्रशिक्षण और प्रयोगशाला केन्द्र की स्थापना एवं आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में अच्छे परिणाम आये है। इसके अलावा कुछ मूलभूत समस्या है जिसे दूर करना किसान हित में होगा। प्रो. अलका जैन (2015) ने "मध्यप्रदेश में कृषि विविधिकरण की प्रवृति-परिवर्तन और चुनौतियाँ "मध्यप्रदेश कृषि विविधिकरण के संबंध में प्रदेश में लगातार बढ़ती लागत और घटती कृशि जोत के आकार के साथ-साथ कृषि एक लाभकारी व्यवसाय बनाये रखने के लिए नवीन तकनीकी जैसे उन्नत बीज, उर्वरक, सिंचाई सुविधा का विस्तार, कृषि साख, यांत्रिकीकरण, कृषि विपणन, वेयर हॉउस सिस्ट्म, कृषि में अनुसंधान को बढ़ावा देने से कृषि व्यवसाय में एक महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। एक ओर प्रदेश के कृषि में तकनीक परिवर्तन के कारण कृषि अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हुआ है जिससे वर्ष 2012 से 2014 तक लगातार तीन साल कृषि उत्पादन के लिए कृषि कर्मण पुरस्कार भी मिला वहीं, दूसरी ओर राज्य के कृषि चुनौतियाँ भी कम नहीं है जहाँ आय में कमी, कृषि पर आश्रित ग्रामीणों में व्यापक गरीबी, निम्न आय, रोजगार के लिए कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, जनसंख्या का दबाव, सकल राज्य घरेलू उत्पादन एवं उत्पादकता का राश्ट्रीय औसत से कम है राज्य के लिए चिंता का विषय है इसके लिए सार्थक प्रयास की आवश्यकता है। हरीश केशरवानी (2015) ने "खेती में नये आयाम-समझौता कृषि" के अध्ययन में बताया कृषि बाजार में समझौता बाजार अथवा बायदा बाजार के रूप में कृषि उत्पाद के लिए नई प्रणाली का उदय होना कृषि उत्पाद के क्रय-विक्रय हेतु किसान और व्यापारी के बीच फसल बोने के पूर्व समझौता लाभदायक होने के साथ-साथ वैज्ञानिक तकनीकी को बढ़ावा मिलेगा, कालाबाजारी पर नियंत्रण, फसल की अच्छी उत्पादन के लिए किसानों में जागरूकता आएगी है। मौसम पूर्वानुमान एवं कृषि विकास केन्द्र और कृषि आधारभूत सुविधाओं के विकास होने से उन्नत कृषि के विकास किसानों को अधिक लाभदायक होगी। डॉ. विजय प्रकाश उपाध्याय (2016) "कृषि विकास और सूचना संचार प्रौद्योगिकी विकास" में कृषि में समावेशी विकास हेतु प्रधानमंत्री फसल बीमा, किसान कॉल सेंटर और अन्य डिजिटल तकनीकी के अनुप्रयोग के संबंध में कृषि की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना, कृशकों को कृषि उत्पादों का सही बाजार भाव मोबाइल ऐप पर उपलब्ध होना सूचना प्रौद्योगिकी की अमूल्य देन है। वर्तमान में डिजिटल तकनीकी के दौर में कृषि विकास की चाभी भी सूचना संचार तकनीकी में ही निहित है। कृषि के अतिरिक्त अन्य योजनाओं में डिजिटल प्रणाली अपनाएँ जाने से कृषि गवर्नेंस का मुख्य मार्ग सफल साबित हो सकता है।

ब्रजेश सिंह एवं वर्षा रानी (2016) "भारत में ग्रीन हाऊस कृषि : उत्पादन एवं उपयोगिता" में अध्ययन कर बताया कि 'ग्रीन हाउस कृषि' एक नवीन पद्धति है। ग्रीन हाउस कृषि की उत्पाद में गुणवत्तापूर्ण सब्जी, फल, पुश्प और अन्य कृषि उत्पादन के लिए एक सर्वोत्तम प्रणाली है। कृषि विकास में यह प्रणाली औद्योगीकरण के साथ तेजी से प्रचलन में आया है। ग्रीन हाऊस खेती हेतु पढ़े लिखे किसान तो आसानी से संचालन करने में सक्षम हैं लेकिन अन्य किसानों के लिए कठिनाइयों

भरा होता है। भारत में ग्रीन हाउस कृषि के सफल संचालन के लिए कृषि विशेशज्ञों की सलाह लेनी पड़ती है। इस प्रणाली में अन्य फसलों की तुलना में खीरा का औसत वार्शिक उत्पादन लगभग 700 टन प्रति हेक्टेयर और टमाटर का संभावित उत्पादन 350 टन तक हो सकता है। ग्रीन हाउस कृषि उच्च गुणवत्ता वाली आधुनिक कृषि प्रणाली है जिसमें अधिक लाभ की संभावना है। संजीव कुमार खटिक (2016) में "मध्यप्रदेश में कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता का स्वरूप : एक अध्ययन" मध्यप्रदेश में कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने हेतु नवीन तकनीकी का उपयोग करने से अध्ययन अवधि में औसत उत्पादन में वृद्धि होना पाया गया। यहाँ के छोटे किसान, काश्तकार, पटट्ेदार और भूमिहीन श्रमिक को नुकसान हुआ है। वर्तमान आधुनिक तकनीकी से होने वाले खेती में बड़े किसानों को अधिक लाभ हुआ है। इन्होंने बताया कि अर्थव्यवस्था का विकास जिस प्रकार कृषि का अनुकरण करता है ठीक वैसा ही कृषि अनुकूल व प्रतिकूल वर्षा का अनुकरण करती है।

4. निष्कर्ष : उक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषि विकास हेतु वर्तमान में अनेक आधुनिक तकनीकी उपलब्ध हैं, इसके लिए अनेक राज्यों में आवश्यक आधारभूत संरचना के विकास के फलस्वरूप देश के विभिन्न राज्यों में भौगोलिक विशेशताओं के आधार पर नवीन कृषि तकनीकी विकसित होने से विभिन्न सफलों के आधुनिक कृषि में सफलता मिलने से किसान नवीन पद्धति की ओर आकृष्ट हुआ है। इससे अनेक फसलों के उत्पादन में कृषि क्राँति तक का सफर सफल रहा जबकि बेकार पड़ी भूमि को कृषि योग्य बनाने में सफलता भी मिली। अध्ययन से ज्ञात होता है कि कृषि क्षेत्र में नवीन कृषि तकनीकी से कृषि क्षेत्र में नव प्रवर्तन का तीव्र विकास व विस्तार हुआ है इससे परंपरागत कृषि के बदले नवीन नगदी फसलों का विकास किसानों के लिए समृद्धि का आधार शाबित हुआ है।

संदर्भ सूची

1. जैन, अंजना एवं मोरे, सुल्तान (2014). ''कपास उत्पादन पर आधुनिक कृषि तकनीकी का प्रभाव-एक अध्ययन'' (बड़वानी जिले के विशेष संदर्भ में) Golden Research Thoughts, Vol-3,April.
2. सोलंकी, डॉ. सोलंकी, पारीक, डॉ. ओ.पी. एवं शर्मा, डॉ. महेन्द्र (2014). बारानी खेती में अधिक पैदावार लेने की तकनीकी, राष्ट्रीय कृषि, खण्ड-9, भाग-1 एवं 2 हिन्दी कृषि अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मुजफ्फरपुर (उ.प्र.), पृ. 25-2 फरवरी-अगस्त, पृ. 25-27.
3. गोले, डॉ. उमा (2015). जशपुर जिले में कृषि का स्थानिक वितरण प्रतिरूप, Journal of Humanities and Social Scienc (RJHSS) International journal of Reviews and research in Social science, Vol 6, July-Sept.2015, p.178-184.
4. ठाकुर, एस.आर. एवं मिश्र, सत्य प्रकाश (2015). छत्तीसगढ़ राज्य के कृषि विकास एक अध्ययन, इण्डियन स्ट्रीम्स रिसर्च जरनल, vol -5 /issue-9/oct.
5. जैन, प्रो. अलका (2015). मध्यप्रदेश में कृषि विविधिकरण की प्रवृति-परिवर्तन और चुनौतियाँ, In International peer Reviewed & Referred scholar Research Journal For Interdisciplinary studys, Vol.-3/19, july- august, p. 329-343.
6. केशरवानी, हरीश (2015). खेती में नये आयाम : समझौता कृषि, International Journal of Research Grant°laya, SocialIssue and Environmental Problems, Vol.3, (I2OR), Sept.
7. उपाध्याय, डॉ. विजय प्रकाश (2016). कृषि विकास और सूचना संचार प्रौद्योगिकी, PARIPEX-INDIAN JOURNAl~ OF RESEARCH VOL-5 March, pp.210-21
8. सिंह, ब्रजेश एवं रानी, वर्षा (2016). "भारत में ग्रीन हाउस कृषि : उत्पादन एवं उपयोगिता-अनुसंधान विज्ञान शोध पत्रिका, खण्ड-4, अंक-1, पृ.133-136.
9. खटिक, संजीव कुमार (2016). मध्यप्रदेश में कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता का स्वरूप : एक अध्ययन, International Jourjnal of Multidicsiplinary Research and development, Vol-1, September, P.1-6.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागिता का अध्ययन

डॉ. सुषमा पांडे
निर्देशक सहा प्राध्यापक (शिक्षा संका;)
आई एस बी एम विश्वविद्यालय
छुरा, गरियाबंद (छत्तीसगढ़)

रूपानंद बारिक
शोधकर्ता, आई एस बी एम विश्वविद्यालय
छुरा, गरियाबंद (छत्तीसगढ़)

शोध सार

प्रस्तुत अध्ययन "प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागिता का अध्ययन" विषय पर आधारित है। अध्ययन का उद्देश्य कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों की अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध तथा विभिन्न समूहों के मध्य अंतर का अध्ययन करना है। अध्ययन में महासमुंद जिले के शहरी क्षेत्र के 20 प्राथमिक विद्यालयों से कुल 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया, जिसमें 10 शासकीय एवं 10 अशासकीय विद्यालय सम्मिलित हैं। अभिभावकीय सहभागिता के मापन हेतु अभिभावकीय सहभागिता मापनी तथा शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु उपलब्धि परीक्षण बैटरी का प्रयोग किया गया। प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, पियर्सन का गुणनफल आघूर्ण सहसंबंध तथा 't' परीक्षण का प्रयोग किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष से अभिभावकीय सहभागिता एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक धनात्मक संबंध पाया गया। साथ ही, छात्रों-छात्राओं तथा उच्च-निम्न अभिभावकीय सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति में अभिभावकीय सहभागिता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मुख्य शब्द : अभिभावकीय सहभागिता, शैक्षिक उपलब्धि, प्राथमिक विद्यालय, कक्षा पाँचवीं, अभिभावकीय सहयोग, विद्यार्थी।

प्रस्तावना

शिक्षा मानव जीवन के विकास की आधारभूत एवं सतत प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मूल्यों एवं व्यवहार के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राथमिक अवस्था में अर्जित ज्ञान एवं अनुभव बालक के भावी शैक्षिक जीवन की आधारभूमि तैयार करते हैं। इस अवस्था में परिवार बालक का प्रथम सामाजिक एवं शैक्षिक परिवेश होता है, जबकि विद्यालय उसे व्यवस्थित शिक्षण-अधिगम के अवसर प्रदान करता है। बालक की पढ़ाई में रुचि लेना, अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना, गृहकार्य पर ध्यान देना, शिक्षक से संपर्क बनाए रखना तथा शैक्षिक प्रगति के लिए प्रोत्साहित करना अभिभावकीय सहभागिता के प्रमुख रूप हैं। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उनके व्यक्तिगत प्रयासों के साथ-साथ पारिवारिक वातावरण एवं अभिभावकीय सहयोग से भी संबंधित होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने बालक के सर्वांगीण विकास में

परिवार एवं समुदाय की सहभागिता के महत्व पर बल दिया है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध-पत्र में "प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागिता का अध्ययन" किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य अभिभावकीय सहभागिता एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध को स्पष्ट करना तथा विद्यार्थी के शैक्षिक विकास में परिवार एवं विद्यालय के समन्वित प्रयास के महत्व को रेखांकित करना है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

प्राथमिक शिक्षा बालक के भावी शैक्षिक विकास की आधारभूमि है। विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि केवल विद्यालयीन शिक्षण पर निर्भर नहीं करती, बल्कि परिवार से प्राप्त सहयोग, प्रोत्साहन एवं अध्ययन के अनुकूल वातावरण भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अभिभावकों की पढ़ाई में रुचि, शैक्षिक गतिविधियों में सहभागिता तथा विद्यालय एवं शिक्षक से संपर्क विद्यार्थी की शैक्षिक प्रगति को सकारात्मक दिशा प्रदान करता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में अभिभावकीय सहभागिता एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष अभिभावकों, शिक्षकों एवं विद्यालयों को विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति हेतु प्रभावी प्रयास करने में उपयोगी आधार प्रदान करेंगे।

परिसीमन

- प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के महासमुंद जिले के शहरी क्षेत्र तक सीमित रखा गया है।
- अध्ययन में महासमुंद के शहरी क्षेत्र के चयनित प्राथमिक विद्यालयों की कक्षा 5 में अध्ययनरत विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों को सम्मिलित किया गया है।
- अध्ययन का केंद्र विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा अभिभावकीय सहभागिता के अध्ययन तक सीमित रखा गया है।
- अभिभावकीय सहभागिता के मापन हेतु डॉ. रीता चोपड़ा एवं डॉ. सुरबाला साहू द्वारा विकसित Parental Involvement Scale (PIS–CS) तथा शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु आर. डी. सिंह द्वारा विकसित Achievement Test Battery (ATB–SR) का प्रयोग किया गया है।
- अध्ययन के लिए चयनित जनसंख्या एवं न्यादर्श से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ों को ही विश्लेषण में सम्मिलित किया गया है। परिकल्पनाओं का परीक्षण उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों द्वारा 0.05 सार्थकता स्तर पर किया जाएगा।
- प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, सहसंबंध गुणांक तथा आवश्यकतानुसार ज-परीक्षण जैसी उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है।
- अध्ययन के निष्कर्ष महासमुंद जिले के शहरी क्षेत्र में चयनित प्राथमिक विद्यालयों की कक्षा पाँचवी के विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों से प्राप्त आँकड़ों तक सीमित रखे गए हैं।

शोधों की संक्षिप्त समीक्षा

जायसवाल एवं चौधरी (2017) जायसवाल एवं चौधरी ने विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि और अभिभावकीय सहभागिता से संबंधित पूर्व अध्ययनों की समीक्षा की। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि अभिभावकीय अपेक्षाएँ, घर पर शैक्षिक सहयोग तथा विद्यालय के साथ अभिभावकों का संपर्क विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से सकारात्मक रूप से संबंधित हैं। पॉल एवं अन्य (2021) भारतीय मानव विकास सर्वेक्षण के आँकड़ों पर आधारित अध्ययन में अभिभावकीय सहभागिता तथा विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति का अध्ययन किया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि गृहकार्य की निगरानी, शिक्षक से शैक्षिक प्रगति पर चर्चा तथा अभिभावक-शिक्षक बैठकों में सहभागिता विद्यार्थियों की विद्यालयीन निरंतरता से संबंधित महत्वपूर्ण कारक हैं। खातून एवं मुखर्जी (2023)

पश्चिम बंगाल के उच्च प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों पर किए गए अध्ययन में अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का परीक्षण किया गया। अध्ययन में अभिभावकीय सहभागिता एवं भूगोल विषय की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक धनात्मक संबंध पाया गया। विद्यार्थियों के लिंग तथा ग्रामीण-शहरी क्षेत्र के आधार पर भी अंतर पाया गया। सिंह एवं रंगनाथन (2026) भारत में किए गए अध्ययन में अभिभावक-शिक्षक बैठकों में सहभागिता, शिक्षकों से बच्चों के विद्यालयीन कार्य पर चर्चा तथा गृहकार्य की निगरानी और विद्यार्थियों के अधिगम परिणामों के संबंध का अध्ययन किया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि अभिभावकीय सहभागिता विद्यार्थियों के अधिगम परिणामों से सकारात्मक रूप से संबंधित है। जेनेस (2005)

शहरी प्राथमिक विद्यालयों से संबंधित 41 अध्ययनों के समेकित विश्लेषण में अभिभावकीय सहभागिता एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सकारात्मक संबंध पाया गया। अध्ययन ने प्राथमिक स्तर पर अभिभावकीय सहभागिता के महत्व को स्पष्ट किया। पूर्ववती भारतीय एवं विदेशी अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अभिभावकीय सहभागिता विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं अधिगम परिणामों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। विशेष रूप से अभिभावकीय मार्गदर्शन, गृहकार्य की निगरानी, विद्यालय से संपर्क तथा शैक्षिक गतिविधियों में सहभागिता महत्वपूर्ण रही है। फिर भी महासमुंद जिले के शहरी क्षेत्र में कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में अभिभावकीय सहभागिता का विशिष्ट अध्ययन सीमित है, इसलिए वर्तमान अध्ययन का विशेष महत्व है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागिता की भूमिका का अध्ययन करना है। इस मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं–

- कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
- कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों के प्रति अभिभावकीय सहभागिता के स्तर का अध्ययन करना।
- अभिभावकीय सहभागिता एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन करना।
- छात्रों एवं छात्राओं की अभिभावकीय सहभागिता में अंतर का अध्ययन करना।
- छात्रों एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर का अध्ययन करना।
- उच्च एवं निम्न अभिभावकीय सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

अध्ययन के निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाएँ निर्धारित की गई हैं–

H_{01} कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों की अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं पाया जाएगा।

H_{02} कक्षा पाँचवीं के छात्रों एवं छात्राओं की अभिभावकीय सहभागिता के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_{03} कक्षा पाँचवीं के छात्रों एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_{04} उच्च एवं निम्न अभिभावकीय सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

शोध अभिकल्प : प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अंतर्गत सहसंबंधात्मक अनुसंधान अभिकल्प पर आधारित है। चरों के मध्य संबंध ज्ञात किया गया है। इसके अतिरिक्त, छात्रों एवं छात्राओं तथा उच्च एवं निम्न अभिभावकीय

सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर का अध्ययन किया गया है।

जनसंख्या : प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या का निर्धारण न्वेप्फ में उपलब्ध विद्यालयीन संरचना एवं नामांकन संबंधी आँकड़ों के आधार पर किया गया है। वर्ष 2024-25 में महासमुंद जिले में शासकीय प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 1,276 तथा प्राथमिक स्तर पर शासकीय एवं निजी विद्यालयों का कुल विद्यार्थी नामांकन 89,418 दर्ज किया गया है।

न्यादर्श : प्रस्तुत अध्ययन के लिए महासमुंद जिले के शहरी क्षेत्र के 20 प्राथमिक विद्यालयों का चयन किया गया है। इनमें 10 शासकीय तथा 10 अशासकीय विद्यालय सम्मिलित हैं। प्रत्येक विद्यालय से कक्षा पाँचवीं के 10 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। इस प्रकार कुल 200 विद्यार्थी न्यादर्श में सम्मिलित किए गए हैं।

सारणी : महासमुंद शहरी क्षेत्र के चयनित विद्यालयों एवं न्यादर्श का वितरण

क्र.	विद्यालय का वास्तविक नाम	विद्यालय का प्रकार	यू-डाइस कोड	चयनित विद्यार्थी
1	शासकीय कन्या अभ्यास प्राथमिक शाला, महासमुंद		22122102404	10
2	शासकीय प्राथमिक शाला श्रीराम, महासमुंद		22122102405	10
3	शासकीय प्राथमिक शाला गुरुघासीदास, महासमुंद		22122102438	10
4	शासकीय प्राथमिक शाला कुमारपारा, महासमुंद	शासकीय	22122102501	10
5	शासकीय प्राथमिक शाला स्टेशनपारा, महासमुंद		22122106501	10
6	शासकीय प्राथमिक शाला कुमीपारा, महासमुंद		22122106901	10
7	शासकीय बालक प्राथमिक शाला गुदरूपारा, महासमुंद		22122107001	10
8	शासकीय प्राथमिक शाला बृजराज, महासमुंद		22122107601	10
9	शासकीय प्राथमिक शाला मोहारीभाठा, बृजराज		22122107605	10
10	शासकीय कन्या प्राथमिक शाला श्रीराम, बृजराज		22122107607	10
योग		**10 शासकीय विद्यालय**		**100**
11	निजी कार्मेल इंग्लिश मीडियम स्कूल, महासमुंद		22122102431	10
12	निजी दिल्ली पब्लिक स्कूल, महासमुंद	अशासकीय	22122102442	10
13	निजी जगन्नाथी शिक्षा विद्या मंदिर, महासमुंद		22122102443	10
14	निजी अजीज पब्लिक स्कूल, महासमुंद		22122102466	10
15	निजी ग्रीन वैली इंग्लिश स्कूल, महासमुंद		22122102468	10
16	पद्मावती टंकसाले इंग्लिश मीडियम स्कूल, महासमुंद		22122102469	10
17	आरोह पब्लिक स्कूल, रामनटोला		22122102470	10
18	निजी विवेकानंद पब्लिक स्कूल, महासमुंद		22122102471	10
19	माँ गायत्री प्राथमिक/उच्च प्राथमिक विद्यालय, महासमुंद		22122102406	10
20	श्याम विद्या मंदिर, महासमुंद		22122102408	10
योग	**10 अशासकीय विद्यालय**			**100**
कुल	**20 विद्यालय**	**10 शासकीय + 10 अशासकीय**		**200**

सांख्यिकी विधि : प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, पियर्सन का गुणनफल आघूर्ण सहसंबंध गुणांक तथा 't' परीक्षण का प्रयोग किया गया।

उपकरणों

क्र.	उपकरण का नाम	निर्माता	वर्ष	वैधता	विश्वसनीयता
1	अभिभावकीय सहभागिता मापनी (PIS–CS)	डॉ. रीता चोपड़ा एवं डॉ. सुरबाला साहू	2007'	विषय-वस्तु एवं विभेदी वैधता विद्यालय स्थापित	पुनःपरीक्षण विश्वसनीयताः सहभागिता 0.87, गृह सहभागिता 0.83, PTA सहभागिता 0.90, कुल मापनी 0.93
2	उपलब्धि परीक्षण बैटरी (ATB–SR)	आर. डी. सिंह	–	मानकीकृत परीक्षण	मानकीकरण के अंतर्गत विश्वसनीयता स्थापित

चर

स्वतंत्र चर- अभिभावकीय सहभागिता

आश्रित चर- विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, लिंग (छात्र एवं छात्राएँ), विद्यालय का प्रकार (शासकीय एवंअशासकीय)

परिकल्पनाओं का परीक्षण

सारणी : परिकल्पनाओं के परीक्षण का सारांश

क्र.	शून्य परिकल्पना	सांख्यिकीय परीक्षण	सांख्यिकीय मान	निर्णय	निष्कर्ष
1	**H_{o1}:** कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों की अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं पाया जाएगा।	पियर्सन का गुणनफल आघूर्ण सहसंबंध	**r = 0.78, p = 0.001**	H_{o1} अस्वीकृत	उच्च एवं सार्थक धनात्मक संबंध पाया गया।
2	**H_{o2}:** छात्रों एवं छात्राओं की अभिभावकीय सहभागिता के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।	स्वतंत्र समूह 't' परीक्षण	**t = 2.67, p = 0.009**	H_{o2} अस्वीकृत	अभिभावकीय सहभागिता में सार्थक अंतर पाया गया।
3	**H_{o3}:** छात्रों एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।	स्वतंत्र समूह 't' परीक्षण	**t = 4.32, p = 0.021**	H_{o3} अस्वीकृत	शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया।
4	**H_{o4}:** उच्च एवं निम्न अभिभावकीय सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।	स्वतंत्र समूह 't' परीक्षण p = 0.05	**t = 3.18, p = 0.002**	H_{o4} अस्वीकृत	दोनों समूहों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणामों की व्याख्या

H_{01} : कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों की अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं पाया जाएगा।

पियर्सन सहसंबंध द्वारा प्राप्त $r = 0.78$ तथा $p = 0.001$ है। चूँकि p-मूल्य 0.05 से कम है, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट है कि अभिभावकीय सहभागिता एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य उच्च एवं सार्थक धनात्मक संबंध पाया गया।

H_{02} : छात्रों एवं छात्राओं की अभिभावकीय सहभागिता के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

स्वतंत्र समूह 'ज' परीक्षण में $t = 2.67$ तथा $p = 0.009$ प्राप्त हुआ। p-मूल्य 0.05 से कम होने के कारण शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अतः छात्रों एवं छात्राओं की अभिभावकीय सहभागिता में सार्थक अंतर पाया गया।

H_{03} : छात्रों एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

स्वतंत्र समूह 'ज' परीक्षण में $t = 4.32$ तथा $p = 0.021$ प्राप्त हुआ। चूँकि p-मूल्य 0.05 से कम है, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट है कि छात्रों एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया।

H_{04} : उच्च एवं निम्न अभिभावकीय सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के औसत अंकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

स्वतंत्र समूह 'ज' परीक्षण में $t = 3.18$ तथा $p = 0.002$ प्राप्त हुआ। p-मूल्य 0.05 से कम होने के कारण शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अतः उच्च एवं निम्न अभिभावकीय सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया। समग्र रूप से, चारों परिकल्पनाओं के परीक्षण से अभिभावकीय सहभागिता का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से सार्थक संबंध तथा विभिन्न समूहों के बीच सार्थक अंतर पाया गया।

उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि अभिभावकीय सहभागिता विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से महत्वपूर्ण रूप से संबंधित है। अभिभावकों द्वारा बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देना, उन्हें उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देना तथा विद्यालय की शैक्षिक गतिविधियों में सहभागिता करना उनकी शैक्षिक प्रगति में सहायक होता है। अध्ययन में अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक संबंध पाया गया। साथ ही, छात्रों एवं छात्राओं तथा उच्च एवं निम्न अभिभावकीय सहभागिता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया। अतः विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागिता को महत्वपूर्ण कारक माना गया है।

शैक्षिक उपादेयता

प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागिता के महत्व को स्पष्ट करता है। इसके निष्कर्ष अभिभावकों, शिक्षकों एवं विद्यालयों को विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति हेतु प्रभावी सहयोग एवं मार्गदर्शन प्रदान करने में उपयोगी होंगे। साथ ही, यह अध्ययन प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भविष्य के शोध एवं शैक्षिक नियोजन के लिए उपयोगी आधार प्रदान करेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- अग्रवाल, जे. सी. (2018). शैक्षिक अनुसंधान. नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस।
- मंगल, एस. के. (2019). उन्नत शैक्षिक मनोविज्ञान. नई दिल्ली : पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
- जेनेस, डब्ल्यू. एच. (2005). शहरी प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं अभिभावकीय सहभागिता के संबंध का समेकित विश्लेषण। अर्बन एजुकेशन, 40(3), 237-269। https://doi.doi.org@10-1177@0042085905274540
- वाइल्डर, एस. (2014). अभिभावकीय सहभागिता का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव : एक समेकित समीक्षा। एजुकेशनल रिव्यू, 66(3), 377-397। https://doi.org@10-1080@00131911-2013-780009
- कास्त्रो, एम., एक्सपोसितो-कासास, ई., लोपेज-मार्टिन, ई., लिजासोएन, एल., नवारो-असेंसियो, ई., एवं गावीरीया, जे. एल. (2015). विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकीय सहभागितारू एक समेकित विश्लेषण। एजुकेशनल रिसर्च रिव्यू, 14, 33-46। https://doi.org@10-1016@j-edurev-2015-01-002
- ओटानी, एम. (2020). प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि। एशिया पैसिफिक एजुकेशन रिव्यू, 21, 1-15। https://doi.org@10-1007@s12564&019&09614&z
- पॉल, पी. एवं अन्य। (2021). भारत में अभिभावकीय सहभागिता एवं विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति का अध्ययन। प्लॉस वन, 16। https://doi.org@10-1371@journal-pone-0251520
- खातून, एस. एवं मुखर्जी, एस. (2023). उच्च प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की अभिभावकीय सहभागिता एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन। जर्नल ऑफ रिसर्च इन इनोवेटिव एजुकेशन।
- वांग, एक्स. एवं वेई, वाई. (2024). विद्यार्थियों के गणितीय प्रदर्शन पर अभिभावकीय सहभागिता का प्रभाव : एक समेकित विश्लेषण। फ्रंटियर्स इन साइकोलॉजी, 15, 1463359। https://doi.org@10-3389@fpsyg-2024-1463359
- भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय। (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली : भारत सरकार।
- चोपड़ा, रीता एवं साहू, सुरबाला। अभिभावकीय सहभागिता मापनी (पी.आई.एस. सी.एस.). राष्ट्रीय मनोवैज्ञानिक निगम, आगरा।
- सिंह, आर. डी. उपलब्धि परीक्षण बैटरी (ए.टी.बी. एस.आर.). राष्ट्रीय मनोवैज्ञानिक निगम, आगरा।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

BEHAVIOURAL PROBLEMS OF ADOLESCENTS

Monika Sahai
Associate Professor and In-charge
Department of Psychology, S.N. Sen B.V.P.G. College, Kanpur

ABSTRACT

The present study examines behavioural problems among adolescents from rural and urban areas of Kanpur, with particular focus on anxiety and stress, emotional adjustment, and aggressive behaviour. A sample of 200 adolescents aged 14–18 years was considered, comprising 100 adolescents from rural areas and 100 from urban areas. In the original study design, the rural group was characterized as adolescents with limited or no regular exposure to media, whereas the urban group consisted primarily of adolescents exposed to television, mobile phones, films, YouTube, and social-media platforms. The Hindi version of Sinha's Comprehensive Anxiety Test (SCAT), Bell's Adjustment Inventory, and Singh's Aggression Scale were administered. The findings indicated significant rural–urban differences in anxiety, emotional adjustment, and aggressive behaviour. Urban adolescents obtained higher mean scores on anxiety, poorer emotional adjustment, and higher aggression than rural adolescents. Recent Indian and international research similarly indicates that problematic digital-media use and adverse online experiences may be associated with anxiety, stress, sleep disturbance, and other emotional difficulties. The evidence, however, does not justify concluding that media exposure alone causes aggression.

Note: In the original manuscript, rural adolescents are described as the group not regularly using media, whereas urban adolescents are described as the group using media. Residence and media use are conceptually different variables and should ideally be measured separately in future research.

INTRODUCTION

Adolescence is a transitional period between childhood and adulthood marked by rapid physical, cognitive, emotional, and social development. During this stage, young people seek greater autonomy, develop stronger peer relationships, construct their identities, and begin to make important educational and occupational decisions. These developmental demands can become sources of psychological strain when adolescents perceive that family, academic, social, and career expectations exceed their available coping resources. Anxiety, emotional maladjustment, irritability, and aggressive responses may consequently become visible expressions of difficulties in adjustment.

Contemporary adolescents are growing up in a highly connected media environment. Television has

been joined by smartphones, YouTube, short-video applications, online gaming, Instagram, Facebook, and other social-media platforms. Digital media can provide educational information, opportunities for creativity, social connection, and access to support. At the same time, excessive or problematic use may interfere with sleep, concentration, face-to-face relationships, and emotional regulation. A systematic review and meta-analysis by Guimond and colleagues (2022), involving 18 studies and 9,269 adolescents and young adults, found significant associations between problematic social-media use and depression, anxiety, and stress.

More recent evidence suggests that the relationship between social-media use and anxiety is complex rather than uniformly negative. A systematic review published in the Journal of Adolescent Health in 2025 included 32 studies and found that more than half reported positive associations between social-media use and anxiety. Positive associations were especially common when problematic use or screen time was examined. The review also emphasized the need to distinguish different forms of social-media engagement rather than treating all use as equivalent.

Digital environments have also created new forms of interpersonal aggression. Cyberbullying, cyberhate, online exclusion, and other forms of cyber-aggression may extend peer conflict beyond the physical school or neighbourhood environment. A systematic review by Fulantelli and colleagues (2022) emphasized cyberbullying and cyberhate as important forms of cyber-aggression during adolescence.

The Indian context deserves particular attention because adolescents are experiencing rapid digital expansion alongside continuing family, educational, and cultural expectations. A 2024 Indian study involving 204 adolescents and young people reported associations between excessive social-media use and stress, anxiety, depression, sleep disturbance, fear of judgement, and cyberbullying-related experiences. The study also recognized positive functions of social media, such as communication and information sharing.

Evidence from the UDAYA cohort in Uttar Pradesh and Bihar further demonstrates that the relationship between social-media use and psychological wellbeing is not simple. An Indian longitudinal study found associations between social-media use and depressive symptoms, but its cross-lagged analysis did not establish a clear temporal relationship in which earlier social-media use predicted later depression or vice versa. This finding is important because it cautions against interpreting a correlation as a direct causal effect.

Recent Indian evidence also suggests that the quality of online experiences may be more important than exposure time alone. A 2025 study of 224 Indian adolescents found that particular forms of cyber-victimization, including written-verbal victimization, impersonation, and online exclusion, significantly predicted anxiety and/or stress. Thus, future research should examine the type of online content, cyberbullying, social comparison, parental monitoring, sleep, and the purpose of media use.

Aggression itself is not exclusively an Indian phenomenon. Psychological theories have explained aggressive behaviour in relation to biological dispositions, frustration, social learning, emotional arousal, social cognition, and environmental influences. Human beings also possess cognitive and moral capacities that allow them to evaluate the appropriateness of their behaviour. Therefore, the expression of aggression is shaped by both individual characteristics and social context.

Earlier work by Shirt and Simpson (1986) suggested that highly aggressive adolescents were less

able to perceive the viewpoints of others than low-aggressive adolescents. Singh's earlier work also reported a positive relationship between anxiety and aggression and a negative relationship between intelligence and aggression. These findings indicate that adolescent aggression should be examined alongside emotional and cognitive variables rather than as an isolated behavioural trait.

The rural–urban dimension provides an additional context. Adolescents in rural and urban environments may differ in educational opportunities, academic competition, family involvement, recreational activities, digital connectivity, peer networks, and exposure to diverse lifestyles. Such differences do not imply that either setting is inherently better; they provide a context for examining variation in adolescent adjustment. The present study therefore focuses on anxiety and stress, emotional adjustment, and aggressive behaviour among rural and urban adolescents and considers the possible relevance of media exposure.

REVIEW OF PRESENT AND RELATED STUDIES

Shirt and Simpson (1986) examined social cognition and aggression among delinquent male adolescents and reported that highly aggressive adolescents were less capable of taking the perspectives of others than less aggressive adolescents. The study highlights the importance of social cognition and perspective-taking in aggressive behaviour.

Singh reported a significant negative relationship between intelligence and aggression and a positive relationship between anxiety and aggression. These findings are relevant to the present study because anxiety and aggression may coexist when adolescents experience difficulty in regulating emotional arousal or managing stressful situations.

Guimond et al. (2022) systematically reviewed 18 studies involving 9,269 adolescents and young adults and found statistically significant associations between problematic social-media use and depression, anxiety, and stress. The findings support the importance of distinguishing problematic use from ordinary social-media participation.

Cao and colleagues (2023) conducted a systematic review and meta-analysis of problematic internet use and social anxiety among adolescents and young adults aged 14–24 years. Their work further indicates that problematic internet use and social anxiety are related, although the mechanisms and direction of the relationship require continued investigation.

Fulantelli, Taibi, Scifo, Schwarze, and Eimler (2022) reviewed research on cyberbullying and cyberhate as forms of cyber-aggression in adolescence. Their work demonstrates that aggression in the digital environment may involve both direct hostile behaviour and harmful peer interactions such as victimization and exclusion.

Malik and colleagues (2024) examined social-media use and mental wellbeing among Indian adolescents and young people. The study reported relationships between excessive social-media use and anxiety, stress, depression, sleep disruption, fear of judgement, and cyberbullying experiences. The findings are particularly relevant to the Indian context.

An Indian cohort study using UDAYA data from Uttar Pradesh and Bihar examined the relationship between social-media use and depressive symptoms. Although associations were observed, cross-lagged analysis did not establish a clear temporal relationship between social-media use and depression, reinforcing the need for caution when making causal interpretations.

Tamarana, Mathur, Madhusudan, and Kiranmai (2025) investigated cyber-victimization among Indian adolescents. Their findings indicated that written-verbal cyber-victimization, impersonation, and online exclusion were significant predictors of anxiety, while written-verbal victimization predicted stress. The study suggests that the nature of online experience matters in understanding adolescent wellbeing.

Choudhary (2025) examined daily social-media use and adolescent mental health in Bihar, India, comparing adolescents with lower and higher daily social-media use. The study adds recent Indian evidence to the growing literature linking patterns of digital engagement with adolescent mental-health outcomes.

Taken together, contemporary studies indicate that adolescent behavioural and emotional difficulties are multifactorial. Problematic digital engagement, cyber-victimization, anxiety, social comparison, sleep disruption, academic pressure, peer relationships, family environment, and individual differences may interact. The present study is therefore best understood as an examination of rural–urban group differences rather than as a test of a single causal effect of media.

OBJECTIVES OF THE STUDY

The study aims to examine differences between rural and urban adolescents in anxiety and stress, emotional adjustment, and aggressive behaviour. It also considers whether the pattern of higher aggression among the urban/media-exposed group is accompanied by higher anxiety and poorer emotional adjustment.

HYPOTHESES

It is hypothesised that there will be a significant difference in aggressive behaviour between rural and urban adolescents.

It is hypothesised that urban adolescents will significantly differ from rural adolescents in emotional adjustment.

It is hypothesised that urban adolescents will significantly differ from rural adolescents in anxiety and stress.

SAMPLE

A total of 200 adolescents between 14 and 18 years of age were included. The sample comprised 100 adolescents from rural areas and 100 from urban areas of Kanpur. The original manuscript indicates that the groups were approximately matched with respect to age and sex, with predominantly male participants. The rural group was described as having little or no regular media exposure, whereas the urban group was described as using television, mobile phones, films, YouTube, and social-media platforms. For methodological clarity, future studies should measure residence and media exposure separately.

TOOLS AND METHOD

Sinha Comprehensive Anxiety Test (SCAT): The Hindi version was used to assess anxiety. Higher scores indicate higher anxiety.

Bell's Adjustment Inventory: The inventory was used to assess emotional adjustment. In the scoring interpretation reported in the original study, higher scores indicate poorer adjustment.

Singh's Aggression Scale: The scale was administered to assess aggressive behaviour. Higher scores

indicate greater aggression.

The instruments were administered to both groups under comparable conditions and within similar time intervals. Group means were compared using the independent-samples t-test.

RESULTS AND DISCUSSION

The results indicate statistically significant differences between rural and urban adolescents on anxiety and stress, emotional adjustment, and aggressive behaviour.

Table 1. Mean Difference between Rural and Urban Adolescents in Anxiety and Stress

Group	N	Mean Score	S.D.	t-value	Significance	df
Rural adolescents	100	21.93	10.64	12.69	0.01	198
Urban adolescents	100	42.11	11.80			

Urban adolescents obtained a substantially higher mean anxiety score (M = 42.11, SD = 11.80) than rural adolescents (M = 21.93, SD = 10.64). The t-value of 12.69 is significant at the 0.01 level with 198 degrees of freedom. The hypothesis concerning rural–urban differences in anxiety and stress is supported.

Table 2. Comparison between Rural and Urban Adolescents on Emotional Adjustment

Group	N	Mean Score	S.D.	t-value	Significance	df
Rural adolescents	100	14.96	3.13	11.43	0.01	198
Urban adolescents	100	20.33	3.56			

Rural adolescents had a mean adjustment score of 14.96 (SD = 3.13), whereas urban adolescents had a mean score of 20.33 (SD = 3.56). The t-value of 11.43 is significant at the 0.01 level. Because higher scores represent poorer adjustment in the scoring interpretation used, the urban group showed poorer emotional adjustment.

Table 3. Aggressive Behaviour Scores of Rural and Urban Adolescents

Group	N	Mean Score	S.D.	t-value	Significance	df
Rural adolescents	100	15.98	3.68	6.94	0.01	198
Urban adolescents	100	19.45	3.32			

Urban adolescents obtained a higher mean aggression score (M = 19.45, SD = 3.32) than rural adolescents (M = 15.98, SD = 3.68). The t-value of 6.94 is significant at the 0.01 level with 198 degrees of freedom. The hypothesis concerning rural–urban differences in aggression is supported.

DISCUSSION

The findings reveal a consistent pattern across the three variables examined. Urban adolescents obtained higher anxiety scores, poorer emotional adjustment scores, and higher aggression scores

than rural adolescents. The differences were statistically significant at the 0.01 level. The overall pattern is compatible with contemporary literature indicating that problematic digital engagement and adverse online experiences can be associated with anxiety, stress, and other emotional difficulties.

The higher anxiety among urban adolescents may reflect a combination of academic competition, career expectations, changing peer relationships, social comparison, and greater digital connectivity. Adolescents may compare their academic performance, appearance, lifestyle, popularity, and future prospects with peers and media figures. Recent systematic evidence indicates that problematic social-media use and higher levels of screen exposure are frequently associated with anxiety, although the direction and magnitude of these relationships vary between studies.

The finding of poorer emotional adjustment among urban adolescents may be understood in relation to the developmental demands of adolescence. Adjustment requires emotional regulation, tolerance of frustration, flexible coping, and effective interpersonal functioning. Excessive online engagement may sometimes compete with sleep, physical activity, direct interpersonal interaction, and uninterrupted academic work. Indian research has reported associations between excessive social-media use and sleep disruption, anxiety, stress, fear of judgement, and cyberbullying experiences.

The higher aggression score of urban adolescents should not be attributed to media exposure alone. Aggressive behaviour may emerge from several interacting influences, including social learning, peer norms, family relationships, frustration, emotional regulation, social cognition, and exposure to aggressive or hostile online interactions. Research on cyber-aggression demonstrates that online environments can provide additional opportunities for bullying, exclusion, hostile communication, and victimization.

The present findings are particularly relevant in light of recent Indian evidence. Research among Indian adolescents has shown that cyber-victimization can predict anxiety and stress, indicating that the psychological impact of digital environments depends not only on the amount of time spent online but also on the quality and nature of online experiences. Thus, future studies should assess cyberbullying, social comparison, type of content, parental monitoring, sleep, and the purpose of media use.

The rural–urban difference may also reflect differences in daily routines and social environments. Rural adolescents may, in some circumstances, have more opportunities for outdoor activities, family participation, and face-to-face community interaction, while urban adolescents may experience greater academic competition and digital connectivity. These explanations remain tentative because the present study did not independently measure physical activity, socioeconomic status, family support, academic pressure, sleep, or exact media-use duration.

Longitudinal Indian evidence further supports caution in causal interpretation. The UDAYA cohort found an association between social-media use and depressive symptoms, but the cross-lagged analysis did not establish a clear temporal relationship. Therefore, the higher aggression and anxiety found in the urban/media-exposed group should be interpreted as an association rather than evidence that media use directly causes these outcomes.

Finally, the media should not be portrayed as inherently harmful. Digital platforms can support education, communication, creativity, and social connection. The important issue is balanced and purposeful use. Adolescents may benefit from digital-literacy education, parental guidance, healthy

sleep routines, emotional-regulation skills, constructive recreational activities, supportive peer relationships, and counselling when anxiety, maladjustment, or aggressive behaviour becomes persistent.

CONCLUSION

The study demonstrates significant differences between rural and urban adolescents in anxiety and stress, emotional adjustment, and aggressive behaviour. Urban adolescents showed higher anxiety and aggression and poorer emotional adjustment than rural adolescents. Contemporary evidence supports the relevance of digital-media experiences to adolescent wellbeing, but also shows that the relationship is complex and cannot be reduced to a simple cause-and-effect explanation. Interventions should therefore focus on balanced media use, emotional regulation, family and peer support, healthy sleep, constructive recreation, and counselling for adolescents experiencing persistent anxiety, adjustment difficulties, or aggressive behaviour.

REFERENCES

Guimond, S., et al. (2022). Problematic social media use in adolescents and young adults: Systematic review and meta-analysis. JMIR Mental Health, 9(4), e33450.

Cao, B. C., Sun, Q., et al. (2023). The association between problematic internet use and social anxiety within adolescents and young adults: A systematic review and meta-analysis. Frontiers in Public Health.

Fulantelli, G., Taibi, D., Scifo, L., Schwarze, V., & Eimler, S. C. (2022). Cyberbullying and cyberhate as two interlinked instances of cyber-aggression in adolescence: A systematic review. Frontiers in Psychology, 13, 909299.

Choudhary, R. (2025). Impact of daily social media usage on adolescent mental health: A prospective study. International Journal of Indian Psychology.

Malik et al. (2024). Perception, use of social media, and its impact on the mental health of Indian adolescents: A qualitative study. World Journal of Clinical Pediatrics, 13(3), 97501.

Tamarana, Mathur, Madhusudan, & Kiranmai. (2025). Cyber-victimization—influence of parental rules and impact on mental health among Indian adolescents. Frontiers in Psychology.

Bidirectional and cross-lag relationship between social media use and psychological wellbeing: Evidence from an Indian adolescent cohort study. (2024). BMC Public Health.

Shirt, R. J., & Simpson, S. (1986). Social cognition and aggression in delinquent male adolescents. [Original bibliographic details should be verified before publication].

Singh, R. C. (1999). A study of some socio-psychological characteristics of drug-dependent college students. Unpublished Ph.D. thesis, Magadh University, Bodh Gaya.

Singh, S. N. (n.d.). Intellect and aggression. Indian International Publications, Allahabad.

Singh, V. B. (1976). Some psychosocial correlates of behaviour problems among school students. Unpublished Ph.D. thesis, Magadh University, Bodh Gaya.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Poetic Ornaments in the Seasonal Descriptions of the Ramayana

Manjitha MM
Research Scholar
Government Sanskrit College Thiruvananthapuram

Abstract

The Ramayana of Valmiki is celebrated not only as the Adikavya (first epic poem) but also for its profound portrayal of nature, particularly the six Indian seasons (rtus). These seasonal descriptions function as essential narrative devices that mirror characters' psychological states rather than mere decorative backdrops. Through figures of speech (alankaras), Valmiki transforms natural scenery into an expressive medium conveying aesthetic delight and philosophical insight. This study examines how ornaments like Upama (simile), Rupaka (metaphor), Utpreksa (poetic imagination), Anuprasa (alliteration), and Svabhavokti (natural description) enrich the depiction of seasons, establishing a vital link between natural imagery, rasa, and character psychology.

Introduction

Nature occupies a central position in the Ramayana, where mountains, forests, rivers, and changing seasons interact sympathetically with human joy and suffering. Indian tradition recognizes six seasons (sadrtavah): Vasanta (Spring), Grisma (Summer), Varsa (Rainy Season), Sarad (Autumn), Hemanta (Pre-Winter), and Sisira (Winter). Valmiki portrays these with minute precision, investing them with emotional and symbolic significance.

For instance, the rainy season on Mount Prasravana intensifies Rama's sorrow during Sita's absence, while spring acts as a double-edged sword bringing joy to united lovers but deepening the pain of separation (vipralambha-srngara). Valmiki's restraint ensures that poetic ornaments (alankaras) emerge naturally from the narrative context, elevating the epic into the foundational source for classical Sanskrit nature poetry.

The Concept of Alankara and Seasonal Framework

In Sanskrit poetics, alankara denotes artistic devices that enhance poetic beauty and emotional communication. Early theoreticians like Bhamaha and Dandin viewed ornaments as essential for intensifying aesthetic delight (kavyasobhakara dharma alankarah). Valmiki instinctively mastered these figures long before formal systematic treatises were codified.

The major alankaras employed in the epic's seasonal passages include:

- Upama (Simile): Establishes vivid visual comparisons (e.g., dark rain clouds as mighty elephants).

- Rupaka (Metaphor): Creates imaginative unity by identifying natural objects directly with their counterparts (e.g., forests as festive assemblies).

- Utpreksa (Poetic Imagination): Animates nature by attributing human intentions to it (e.g., rivers eager to embrace the ocean).
- Anuprasa (Alliteration): Imparts musical cadence mimicking natural sounds like buzzing bees or flowing rivers.
- Atisayokti (Hyperbole): Magnifies grandeur to convey overwhelming natural abundance.
- Svabhavokti (Natural Description): Presents objects with realistic fidelity and artistic elegance.

Key Seasonal Descriptions and Their Poetic Ornaments

Spring (Vasanta)

Regarded as the king of seasons (rtunam kusumakarah), Vasanta symbolizes renewal, love, and fertility. Valmiki describes blossoming mango and asoka trees, humming bees, and fragrant southern breezes.

Ornaments at Work: Upama compares fresh leaves to emeralds; Rupaka transforms the earth into a decorated bride; Utpreksa imagines cuckoos eager to awaken lovers.

Emotional Role: Serving as an uddipana-vibhava (stimulus), spring highlights the contrast between joyful union and the sharp pangs of vipralambha-srngara for separated lovers.

The Rainy Season (Vrsa / Varsa)

Found predominantly in the Kiskindhakanda, the monsoon description is Valmiki's most elaborate masterpiece. Towering clouds, flashing lightning, roaring thunder, and dancing peacocks dominate the landscape.

Ornaments at Work: Massive clouds are likened to elephants (upamā); the sky becomes an ocean (rūpaka); rivers rush eagerly toward the sea (utprekṣā); and repetitive consonants mimic falling rain (anuprāsa).

Emotional Role: While external nature rejoices in renewal, the monsoon mirrors Rama's internal turmoil and tears, fusing external landscape with deep psychological grief and karuna rasa.

Autumn, Pre-Winter, and Winter (Sarad, Hemanta, Sisira)

- Sarad (Autumn): Characterized by cloudless skies, bright moonlight, and blooming lotuses. Upama compares the clear sky to a spotless mirror and swans to ascetics, symbolizing mental clarity, hope, and the transition from waiting to active military preparation.
- Hemanta & Sisira: Depicted through cool mornings, ripening fields, dew-covered vegetation, and quiet forests, utilizing svabhavokti and gentle similes to complete the natural

cycle with maturity and calm. Synthesis of Alankara, Rasa, and Later Influence Valmiki's genius lies in the seamless integration of poetic ornaments with rasa (aesthetic sentiment). Ornaments never exist merely for decorative display; they reinforce emotional states. The external environment consistently acts as an objective correlative for human psychology. This foundational aesthetic blueprint heavily influenced later classical poets. While Kalidasa in works like the Meghaduta and Rtusamhara treated nature with more elaborate imaginative structures and independent scope, his descriptive techniques trace directly back to Valmiki's primal vision.

Conclusion

The seasonal descriptions in the Ramayana transcend simple background decoration, operating as active narrative participants that illuminate character psychology and heighten aesthetic emotional resonance. By deploying alankaras with rigorous artistic restraint, Valmiki achieved a timeless harmony between realism and imagination, cementing the epic's enduring status as the eternal sourcebook of classical Sanskrit literature.

Bibliography

Primary Sources

Valmiki. The Valmiki Ramayana. Critical Edition. Baroda: Oriental Institute.

Valmiki. Srimad Valmiki Ramayanam. Gita Press, Gorakhpur.

Secondary Sources

Bhamaha. Kavyalankara. Edited by P. V. Kane.

Dandin. Kavyadarsa. Edited by S. K. Belvalkar.

Vamana. Kavyalankara Sutravrtti.

Anandavardhana. Dhvanyaloka. Translated by Daniel H. H. Ingalls.

Abhinavagupta. Locana on Dhvanyaloka.

Mammata. Kavyaprakasa.
Jagannatha Panditaraja. Rasagaagadhara.
Kalidasa. Rtusamhara.
Kalidasa. Meghadata.
Kane, P. V. History of Sanskrit Poetics. Motilal Banarsidass.
Keith, A. B. A History of Sanskrit Literature. Oxford University Press.
Krishnamoorthy, K. Studies in Sanskrit Poetics. Motilal Banarsidass.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Sphota and Dhvani in the Vakyapadiya: A Linguistic and Philosophical Analysis

Jiji Chandran J V
Research Scholar
University Of Kerala
Govt. Sanskrit College, Palayam
Thiruvananthapuram
Email - jijichandran1987@gmail.com
Mobile - 9633125030

ABSTRACT

The relationship between *sphota* and *dhvani* constitutes one of the most significant themes in the linguistic philosophy of the Sanskrit grammatical tradition. Although the grammatical tradition is commonly associated with the technical analysis of Sanskrit morphology and syntax, its philosophical development produced sophisticated theories concerning language, meaning, cognition, and reality. Among these, Bhartrhari's theory of *sphota*, articulated most comprehensively in the *Vakyapadiya*, occupies a central position. *Dhvani* denotes the audible manifestation of linguistic expression, whereas *sphota* is understood as the unitary linguistic principle through which meaning becomes manifest. The distinction enables Bhartrhari to explain how transient and sequential sounds can give rise to a unified cognition of meaning. This article examines the concepts of *sphota* and *dhvani*, their historical background, their relationship in the *Vakyapadiya*, the distinction between *prakrta* and *vaikrta dhvani*, and the relevance of the theory to linguistic cognition and the philosophy of language. The study argues that Bhartrhari's analysis cannot be reduced to a simple distinction between physical sound and abstract linguistic form; rather, it forms part of a comprehensive account of language in which sound, linguistic structure, meaning, and cognition are deeply interconnected.

Keywords: Sphota, Dhvani, Bhartrhari, Vakyapadiya, Vyakarana, Sabda, Artha, Pratibha, Linguistic Cognition, Philosophy of Language

INTRODUCTION

The Sanskrit grammatical tradition developed one of the most systematic approaches to language in the history of intellectual thought. Beginning with Panini's *Astadhyayi*, grammatical investigation gradually expanded beyond the formulation of linguistic rules to questions concerning the nature of linguistic units, the relationship between sound and meaning, and the process through which linguistic

expressions are understood. Patanjali's *Mahabhasya* represents an important stage in this development, while Bhartrhari's *Vakyapadiya* gives grammatical reflection an explicitly philosophical character.

Within this tradition, the theory of *sphota* occupies a distinctive position. The central problem addressed by the theory is apparently simple but philosophically profound: if speech consists of sounds that arise and disappear successively, how does the hearer apprehend a stable and unified linguistic meaning? A spoken expression is physically composed of sounds produced one after another. Yet the hearer ordinarily does not experience its meaning as a collection of disconnected acoustic events. Instead, a unified linguistic understanding arises.

Bhartrhari explains this phenomenon through the distinction between *sphota* and *dhvani*. The audible sounds that occur in speech are called *dhvani*, while *sphota* denotes the linguistic entity whose manifestation results in the apprehension of meaning. Scholarly studies describe this distinction as fundamental to Bhartrhari's philosophy of language. The purpose of this article is to examine the relationship between *sphota* and *dhvani* from both linguistic and philosophical perspectives, with particular reference to Bhartrhari's *Vakyapadiya*.

Objectives

1. To examine the concepts of Sphota and Dhvani as presented in Bhartrhari's *Vakyapadiya*, with particular attention to their linguistic characteristics and interrelationship.
2. To analyse the philosophical significance of Sphota and Dhvani in relation to language, meaning, cognition, and the process of linguistic comprehension.

Methodology

This study adopts a textual and analytical methodology, primarily examining Bhartrhari's *Vakyapadiya* and relevant traditional commentaries. A comparative and philosophical approach is employed to examine the relationship between linguistic expression, sound, meaning, and cognition.

Historical Background of Sphota

The concept of *sphota* did not originate exclusively with Bhartrhari. The term is associated with earlier grammatical discussions, and Patanjali's *Mahabhasya* provides an important early context for understanding the distinction between the linguistic entity and its audible manifestation. The *Vakyapadiya*, however, develops these ideas into a comprehensive philosophy of language. Panini's *Astadhyayi* is primarily a grammatical system concerned with the structure and derivation of Sanskrit forms. It does not offer the extensive philosophical treatment of *sphota* found in Bhartrhari. Patanjali, in discussing linguistic usage and the nature of speech, provides conceptual foundations for later grammatical reflections.

Bhartrhari transforms these grammatical concerns into a broader philosophical investigation. For him, grammar is not merely a discipline concerned with correct linguistic forms. It provides a means for investigating the relationship between language, cognition, and reality. His discussion of *sabda*, *vak*, *sphota*, and *pratibha* consequently belongs to the wider Indian philosophy of language.

The Concept of Sphota

The term *sphota* is traditionally connected with the Sanskrit root *sphut*, conveying meanings such as "to become manifest," "to become clear," or "to burst forth." In grammatical philosophy, the term refers to the linguistic principle through which meaning becomes manifest. The essential characteristic of *sphota* is its unity. Individual sounds occur successively, whereas the linguistic unit apprehended through them is not necessarily experienced as a succession. The hearer ultimately grasps the linguistic expression as a whole.

This point is particularly important in relation to sentence comprehension. Suppose a sentence consists of several words. The sounds of the sentence occur in a temporal sequence. Nevertheless, the final comprehension of the sentence is experienced as an integrated cognition. Bhartrhari uses this fact to support his broader conception of the sentence as a fundamental unit of linguistic meaning. Thus, *sphota* should not be understood merely as another physical sound. It represents the linguistic unity that becomes manifest through sound and enables meaningful cognition.

The Concept of Dhvani

Dhvani, in the context of Bhartrhari's linguistic theory, refers to the audible manifestation of linguistic expression. It is produced through the organs of speech and is therefore characterized by temporal succession and variation. Different speakers may pronounce the same linguistic expression with differences in accent, speed, pitch, intensity, or other phonetic characteristics. Nevertheless, the listener can recognize the same linguistic identity. This observation provides one of the important foundations for distinguishing *dhvani* from *sphota*.

The physical sound is variable, whereas the linguistic identity that it manifests is treated as stable. Scholarly analyses of Bhartrhari accordingly describe *dhvani* as the manifesting aspect and *sphota* as the manifested linguistic entity. It is important, however, not to regard *dhvani* as irrelevant or merely accidental. Without an appropriate audible manifestation, the linguistic unit would not become available to the hearer in ordinary speech. Thus, *dhvani* and *sphota* are functionally interconnected.

Prakrta and Vaikrta Dhvani

Bhartrhari's analysis becomes more sophisticated through his distinction between *prakrta dhvani* and *vaikrta dhvani*. This distinction has received considerable attention in modern scholarship because of its importance for understanding the relationship between linguistic structure and actual speech. *Prakrta dhvani* is associated with the sound that initially manifests the *sphota*. *Vaikrta dhvani*, by contrast, is associated with subsequent phonetic characteristics that affect the duration and continuity of the audible manifestation.

In this account, differences such as speed of utterance do not alter the essential linguistic identity. A word may be spoken quickly, moderately, or slowly, but the linguistic unit apprehended by the hearer remains the same. Modern discussions of Bhartrhari have interpreted this distinction in different ways, including comparisons with the distinction between a linguistic type and its individual phonetic realization. Such comparisons can be useful, but they must be approached cautiously. *Prakrta* and *vaikrta dhvani* belong to Bhartrhari's own theoretical framework and should not simply be equated with modern phonological and phonetic categories.

Sphota at Different Linguistic Levels

The later grammatical tradition developed several classifications of *sphota*. Among the most significant are *varna-sphota*, *pada-sphota*, and *vakya-sphota*. *Varna-sphota* concerns the linguistic unit associated with the individual phoneme or letter. *Pada-sphota* concerns the word as a linguistic and meaningful unit. The word is articulated through a sequence of sounds, but the recognition of the word is not necessarily equivalent to the mere accumulation of those sounds. The hearer recognizes a meaningful linguistic unit as a whole.

Vakya-sphota represents the most significant dimension of Bhartrhari's theory. Bhartrhari gives special importance to the sentence as the fundamental unit of linguistic communication and meaning.

Sphota, Dhvani and Linguistic Cognition

One of the most important contributions of the theory is its account of linguistic cognition. Bhartrhari is concerned not only with what speech is but also with how speech becomes meaningful to the hearer. When a sentence is spoken, the sounds are received successively. The hearer does not normally retain every sound as an isolated object and then consciously assemble the entire meaning. Instead, linguistic understanding culminates in an integrated apprehension.

This integrated apprehension is associated with *pratibha*. It is the cognitive manifestation of the intended meaning. In this context, *dhvani* serves as the perceptible stimulus, while *sphota* accounts for the unity of the linguistic expression.

The theory therefore establishes a close relationship between linguistic form and cognition. Language is not simply a physical sequence of sounds; it is a structure through which meaning becomes available to consciousness. This is one reason Bhartrhari's theory has attracted the attention of modern philosophers and linguists. His analysis raises questions concerning linguistic representation, sentence processing, meaning, and the relationship between physical speech and mental apprehension.

Sabda, Artha and the Philosophy of Language

The distinction between *sphota* and *dhvani* is inseparable from the broader grammatical investigation of *sabda* and *artha*. The central question is how linguistic expression is related to meaning. For Bhartrhari, this relationship cannot be adequately explained by treating sounds as independent carriers of meaning. The meaning of a linguistic expression depends upon its status as an integrated linguistic unit. In the case of the sentence, meaning is apprehended through the sentence as a whole.

This position has significant philosophical implications. Language is not merely a neutral instrument that transfers already-formed meanings from one individual to another. Rather, linguistic structure is closely connected with cognition itself. Bhartrhari's philosophy consequently gives language a much deeper status than that of a conventional communicative device. His account of *sabda* eventually connects linguistic analysis with his conception of *Sabdabrahman*, the ultimate linguistic principle.

Philosophical Significance

The philosophical significance of *sphota* and *dhvani* can be considered under several headings. First, the theory addresses the **problem of linguistic unity**. It explains how a unified linguistic expression can be recognized despite the succession and variability of individual sounds.

Second, it provides an account of the **relationship between sound and meaning**. Audible sound is necessary for ordinary linguistic manifestation, but the meaning-bearing linguistic principle cannot

be reduced simply to physical sound.

Third, it establishes a relationship between **language and cognition**. Linguistic meaning is not treated as something entirely external to consciousness; rather, linguistic expression participates in the process through which meaning becomes manifest.

Fourth, the theory has implications for the **philosophy of language**. It raises fundamental questions about whether meaning is located in physical sounds, abstract linguistic units, words, sentences, or the cognitive act through which linguistic expressions are understood.

Finally, Bhartrhari's treatment of language has a **metaphysical dimension**. His conception of *Sabdabrahman* connects the linguistic principle with ultimate reality. Thus, grammatical inquiry becomes a path toward philosophical reflection on consciousness and existence.

CONCLUSION

The theory of *sphota* and *dhvani* in Bhartrhari's *Vakyapadiya* represents a remarkable achievement of Sanskrit linguistic philosophy. The theory begins with a linguistic observation—the transient and sequential nature of audible speech—and develops it into a sophisticated account of linguistic unity, meaning, and cognition. *Dhvani* represents the audible manifestation of speech, while *sphota* represents the unitary linguistic principle apprehended through that manifestation. Their relationship is therefore neither one of simple identity nor complete separation. *Dhvani* provides the perceptible basis through which *sphota* becomes manifest, while *sphota* accounts for the meaningful unity of linguistic expression.

Bhartrhari's analysis becomes especially significant at the level of *vakya-sphota*, where the sentence is understood as an integrated unit of meaning. The associated concept of *pratibha* explains the immediate manifestation of meaning in linguistic cognition. Through these concepts, Bhartrhari moves beyond descriptive grammar toward a comprehensive philosophy of language. The distinction between *prakrta* and *vaikrta dhvani* further demonstrates the sophistication of his analysis of speech and linguistic variation. His broader conception of *sabda* and *Sabdabrahman* finally gives language a philosophical and metaphysical significance. Bhartrhari's analysis deserves to be studied not merely as a historical doctrine of Sanskrit grammar but as a major contribution to the philosophy of language. The *Vakyapadiya* demonstrates that grammatical investigation can become an inquiry into the deepest structures of linguistic experience, cognition, and meaning.

Bibliography

- Bhartrhari. *The Vakyapadiya of Bhartrhari: Critical Edition and Translation*. Translated and edited by K. A. Subramania Iyer, Deccan College Postgraduate and Research Institute.
- Coward, Harold G. *The Sphota Theory of Language: A Philosophical Analysis*. Motilal Banarsidass, 1980.
- Iyer, K. A. Subramania. *Bhartrhari: A Study of the Vakyapadiya in the Light of Ancient Commentaries*. Deccan College Postgraduate and Research Institute, 1969.
- Kunjunni Raja, K. *Indian Theories of Meaning*. Adyar Library and Research Centre, 1963.
- Patanjali. *The Vyakarana-Mahabhasya of Patanjali*. Edited by F. Kielhorn, Bhandarkar Oriental Research Institute.
- Sharma, Rama Nath. *The Astadhyayi of Panini*. Vols. 1–2, Munshiram Manoharlal Publishers, 1987–1990.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

The Scientific Classification of Speech Sounds in Ancient Sanskrit Texts: A Comparative Study with Modern Phonetics

Sithara B T
Research Scholar Govt.sanskrit College
University Of Kerala, Palayam, Thiruvananthapuram
Email Id : sitharavyakarana@gmail.com
Ph No : 9645200898

Abstract : The ancient Indian linguistic tradition developed a remarkably systematic approach to the classification and description of speech sounds. Long before the emergence of modern phonetics as an independent scientific discipline, Sanskrit grammarians and phonetic scholars developed detailed observations concerning the production, articulation, classification, and combination of speech sounds. Texts such as the *Ṛgveda Prātiśākhya*, *Taittirīya Prātiśākhya*, *Pāṇinīya Śikṣā*, *Nāradīya Śikṣā*, and the grammatical tradition of Pāṇini provide valuable evidence of this scientific approach. The classification of Sanskrit sounds according to their places of articulation (*sthāna*), articulatory efforts (*prayatna*), voicing, aspiration, and manner of production demonstrates a sophisticated understanding of phonetic structure.

Modern phonetics, particularly articulatory phonetics, classifies speech sounds on the basis of the organs of speech, place of articulation, manner of articulation, voicing, and other acoustic and physiological characteristics. A comparative examination reveals significant correspondences between the ancient Sanskrit classification system and modern phonetic principles. The Sanskrit classification of consonants into *kaṇṭhya*, *tālavya*, *mūrdhanya*, *dantya*, and *oṣṭhya* sounds, for example, closely corresponds to modern descriptions of velar, palatal, retroflex, dental, and bilabial articulation. Similarly, the distinction between *alpaprāṇa* and *mahāprāṇa*, and between *aghoṣa* and *ghoṣa*, may be compared with modern concepts of aspiration and voicing. This article examines the scientific character of the ancient Sanskrit classification of speech sounds and compares it with modern phonetic terminology. It argues that the Sanskrit phonetic tradition represents an important and systematic stage in the history of linguistic thought and deserves greater recognition within the study of the history of phonetics and linguistics.

Keywords : Sanskrit linguistics, Śikṣā, Prātiśākhya, Pāṇini, phonetics, phonology, speech sounds, articulation, place of articulation, manner of articulation.

Introduction : Language is fundamentally a system of human communication, and speech sounds constitute one of its most important structural components. The scientific study of speech sounds is generally known today as phonetics, while phonology examines the functional organization of sounds within a language. Modern linguistic science developed its systematic approaches to phonetics mainly through the advancement of anatomical, physiological, acoustic, and experimental studies. However, the systematic investigation of speech sounds has a much longer history.

The ancient Indian linguistic tradition occupies a significant position in this history. Sanskrit scholars developed sophisticated methods for analysing speech sounds because accurate pronunciation was essential for the preservation and transmission of the Vedic texts. The oral transmission of the Vedas required extraordinary precision in articulation, accent, duration, and intonation. Consequently, the study of pronunciation developed into an independent branch of knowledge known as *Śikṣā*, one of the six Vedāṅgas. The *Śikṣā* texts deal primarily with phonetics and pronunciation. They discuss *varṇa* (sound or phoneme), *svara* (accent), *mātrā* (duration), *bala* (articulatory force), *sāman* (intonational quality), and *santāna* (continuity or combination of sounds). The *Prātiśākhya* texts similarly provide detailed descriptions of the phonetic features of Vedic Sanskrit.

The grammatical system of Pāṇini further demonstrates the analytical sophistication of ancient Indian linguistics. Although the *Aṣṭādhyāyī* is primarily a grammatical work, its treatment of sounds, phonological processes, and sound classes reflects a highly organized linguistic methodology. Pāṇinian grammar and the associated phonetic tradition therefore provide important material for comparison with modern linguistic science. This article focuses specifically on the classification of speech sounds in ancient Sanskrit texts and examines its relationship with modern phonetics. The purpose is not to claim that ancient Indian phonetics and modern phonetics are identical, but to identify conceptual correspondences and differences between the two traditions.

Objectives of the Study : The major objectives of the present study are:

To examine the classification of speech sounds in major Sanskrit phonetic and grammatical texts.To analyse the concepts of *sthāna* and *prayatna* in the Sanskrit phonetic tradition.

To compare ancient Sanskrit phonetic terminology with corresponding concepts in modern phonetics.

To identify the scientific and analytical characteristics of the ancient Indian phonetic tradition.

Ancient Sanskrit Tradition of Phonetic Classification

The Concept of Varṇa : The Sanskrit linguistic tradition gives considerable importance to the classification of *varṇas*. The term *varṇa* is generally used for a speech sound or sound unit. Sanskrit phonetic texts describe the sounds of the language systematically rather than treating them as an arbitrary sequence. The traditional Sanskrit arrangement of sounds is especially significant because it is based on phonetic principles. The consonants are arranged according to their places of articulation and other articulatory properties. The well-known five-fold classification consists of:

- *Kaṇṭhya* — guttural sounds
- *Tālavya* — palatal sounds
- *Mūrdhanya* — retroflex or cerebral sounds
- *Dantya* — dental sounds
- *Oṣṭhya* — labial sounds

This organization is not merely orthographic. It reflects the physical location of articulation in the vocal tract.

Place of Articulation: Sthāna : One of the most important concepts in ancient Sanskrit phonetics is *sthāna*, meaning the place or location involved in the production of a sound. The five principal articulatory locations correspond approximately to the following modern categories:

Sanskrit Category	**Traditional Description**	**Approximate Modern Description**
Kaṇṭhya	Throat	Velar / dorsal
Tālavya	Palate	Palatal
Mūrdhanya	Roof of the mouth	Retroflex
Dantya	Teeth	Dental
Oṣṭhya	Lips	Bilabial

For example, *k, kh, g, gh,* and *ṅ* are traditionally classified as *kaṇṭhya*. These sounds are produced with the back part of the tongue approaching or contacting the region corresponding approximately to the modern velar area. The *tālavya* sounds include *c, ch, j, jh,* and *ñ*, which are associated with the palate and are conventionally described as palatal sounds. Similarly, *ṭ, ṭh, ḍ, ḍh,* and *ṇ* are classified as *mūrdhanya*, corresponding broadly to retroflex articulation. The *dantya* series includes *t, th, d, dh,* and *n*, while *p, ph, b, bh,* and *m* belong to the *oṣṭhya* group.This systematic organization demonstrates that ancient Indian scholars recognized significant differences in the physical locations of articulation.

The Concept of Prayatna : The second major principle of Sanskrit phonetic classification is *prayatna*, or articulatory effort. The tradition distinguishes between internal effort (*ābhyantara prayatna*) and external effort (*bāhya prayatna*). *Ābhyantara prayatna* refers broadly to the manner in which the articulatory organs interact during the production of a sound. Categories such as complete closure, partial contact, friction, and openness can be related to modern distinctions concerning manner of articulation. *Bāhya prayatna* includes features such as voicing, aspiration, and related phonatory characteristics. The Sanskrit tradition therefore considers both the location and the nature of articulation. This two-dimensional approach is particularly significant from a linguistic perspective. Modern articulatory phonetics similarly describes consonants using at least two central parameters: place of articulation and manner of articulation, with voicing treated as an additional important feature.

Classification of Consonants : The traditional Sanskrit consonant system is arranged in five groups, each containing five sounds:

Ka-varga:	ka	kha	ga	gha	ṅa
Ca-varga:	ca	cha	ja	jha	ña
Ṭa-varga:	ṭa	ṭha	ḍa	ḍha	ṇa
Ta-varga:	ta	tha	da	dha	na
Pa-varga:	pa	pha	ba	bha	ma

The internal structure of each group is highly systematic. The first two sounds are voiceless, the next two are voiced, and the fifth is a nasal. The second and fourth members are traditionally distinguished by aspiration. This can be represented approximately as follows:

Sanskrit Series	**Voiceless Unaspirated**	**Voiceless Aspirated**	**Voiceless Aspirated**	**Voiced Aspirated**	**Nasal**
Ka-varga	k	kh	g	gh	ṅ
Ca-varga	c	ch	j	jh	ñ
Ṭa-varga	ṭ	ṭh	ḍ	ḍh	ṇ
Ta-varga	t	th	d	dh	n
Pa-varga	p	ph	b	bh	m

This organization is one of the most striking features of Sanskrit phonetic analysis.

Comparison with Modern Phonetics : Modern phonetics classifies consonants according to several major parameters: place of articulation, manner of articulation, voicing, and, in appropriate cases, aspiration and other phonetic properties. The Sanskrit classification demonstrates strong parallels with these principles. The distinction between *ghoṣa* and *aghoṣa* may be compared broadly with the modern distinction between voiced and voiceless sounds. In the production of voiced sounds, the vocal folds participate in vibration, whereas voiceless sounds are produced without regular vocal-fold vibration. Similarly, the traditional distinction between *alpaprāṇa* and *mahāprāṇa* can be compared, with certain qualifications, to the modern distinction between unaspirated and aspirated consonants. Sanskrit *kh, gh, ch, jh,* and other aspirated consonants involve a greater release of breath than their corresponding unaspirated counterparts. The Sanskrit system therefore combines several phonetic parameters within a single classification framework.

Retroflex Sounds : The *mūrdhanya* category is particularly important from the perspective of comparative phonetics. Retroflex sounds are produced with the tongue tip or blade curled or raised toward the postalveolar or palatal region. Sanskrit contains a systematic series of retroflex stops: *ṭ, ṭh, ḍ, ḍh,* and *ṇ*.

Modern phonetics recognizes retroflexion as a distinctive articulatory feature in many languages, particularly in South Asian languages. The systematic recognition of retroflex sounds in the Sanskrit tradition demonstrates an advanced awareness of articulatory differences.

Nasal Sounds : The fifth consonant in each traditional *varga* is a nasal: *ṅ, ñ, ṇ, n,* and *m*. These sounds differ in their places of articulation and correspond respectively to velar, palatal, retroflex, dental, and bilabial nasal articulations. This classification closely resembles modern phonetic descriptions of nasal consonants, where the place of articulation is determined by the location at which the oral airflow is blocked while air escapes through the nasal cavity.

Vowels and the Concept of Svara : Ancient Sanskrit phonetic texts also provide detailed descriptions of vowels. Vowels are associated with different articulatory positions and are further classified according to duration and accent. The distinction between *hrasva* (short), *dīrgha* (long), and *pluta* (prolonged) is particularly significant. These categories correspond broadly to differences in vowel duration.

The Sanskrit tradition also distinguishes *udātta*, *anudātta*, and *svarita*. These categories belong to the ancient system of Vedic accent and cannot be equated mechanically with modern stress or tone. Nevertheless, they demonstrate that ancient Indian scholars paid close attention to variations in pitch, duration, and phonatory characteristics. Thus, the analysis of vowels in Sanskrit phonetic texts extends beyond simple vowel inventories and includes prosodic dimensions.

Scientific Character of the Ancient Sanskrit System : The scientific character of the Sanskrit phonetic tradition can be understood through its systematic organization, descriptive precision, and consistency.

First, the classification is based substantially on observable articulatory characteristics. Sounds are organized according to where and how they are produced. Second, the arrangement of

consonants follows a logical pattern. Within each articulatory group, distinctions of voicing, aspiration, and nasality are systematically represented.

Third, the tradition pays attention to temporal characteristics through the concepts of *mātrā*, *hrasva*, *dīrgha*, and *pluta*. Fourth, the phonetic tradition was closely connected with practical pronunciation. Its primary purpose was not merely theoretical classification but also the accurate preservation and transmission of sacred texts. These characteristics indicate that ancient Sanskrit phonetics represents a highly developed descriptive tradition.

Contemporary Relevance : The study of ancient Sanskrit phonetics has considerable relevance for contemporary linguistics. It contributes to the history of linguistic thought and demonstrates that systematic phonetic investigation was not exclusively a modern Western development. The Sanskrit tradition can also contribute to interdisciplinary studies involving linguistics, Sanskrit, Vedic studies, speech science, language pedagogy, and computational linguistics. The highly structured classification of sounds may provide useful perspectives for comparative studies of Indian languages. Furthermore, the study of Sanskrit phonetics can help students understand the relationship between articulatory mechanisms and phonological categories. It also provides an important example of how oral traditions can stimulate sophisticated linguistic analysis.

Conclusion : The scientific classification of speech sounds in ancient Sanskrit texts represents one of the most significant achievements of the Indian linguistic tradition. Texts such as the *Pāṇinīya Śikṣā*, *Ṛgveda Prātiśākhya*, *Taittirīya Prātiśākhya*, and other phonetic works demonstrate a systematic understanding of articulation, sound classification, duration, accent, and phonological combination. The concepts of *sthāna* and *prayatna* provide a particularly important basis for understanding the articulatory organization of Sanskrit sounds. The classification into *kaṇṭhya, tālavya, mūrdhanya, dantya,* and *oṣṭhya* shows a clear awareness of different places of articulation. Similarly, the distinctions between *ghoṣa* and *aghoṣa*, and between *alpaprāṇa* and *mahāprāṇa*, demonstrate an analytical concern with voicing and aspiration.

A comparison with modern phonetics reveals significant conceptual correspondences, particularly in the areas of place of articulation, manner of articulation, voicing, aspiration, nasality, and vowel duration. At the same time, the differences between the two traditions should be respected, since each developed within a distinct intellectual and historical framework. The ancient Sanskrit phonetic tradition should therefore be regarded not merely as a historical curiosity but as an important component of the global history of linguistic science. Its systematic classification of speech sounds provides valuable material for contemporary comparative linguistics and encourages a broader understanding of the intellectual foundations of phonetic science.

Works Cited

- Cardona, George. *Pāṇini: His Work and Its Traditions*. Vol. 1, Motilal Banarsidass, 1997.

- Deshpande, Madhav M. *Sanskrit and Prakrit: Sociolinguistic Issues*. Motilal Banarsidass, 1993.
- Katre, S. M. *The Śikṣā of Pāṇini*. University of Poona, 1938.
- Macdonell, Arthur Anthony. *A Vedic Grammar for Students*. Oxford University Press, 1916.
- Sharma, Rama Nath. *The Aṣṭādhyāyī of Pāṇini*. Vols. 1–5, Munshiram Manoharlal Publishers.
- Shastri, Gopinath. *A History of Sanskrit Grammatical Literature*. Bharatiya Vidya Prakashan, 1973.
- Acharya, Shivraj, editor. *Pāṇinīya Śikṣā*. Chaukhambha Surbharati Prakashan, 2015.
- Acharya, Shivraj, editor. *Nāradīya Śikṣā*. Chaukhambha Sanskrit Pratishthan, 2004.
- *Ṛgveda Prātiśākhya*. Edited by Max Müller, Oxford University Press.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

THE CONCEPT OF VARṆĀŚRAMA-DHARMA IN THE MANUSMṚTI: A STUDY OF SOCIAL ORDER AND INDIVIDUAL DUTIES

Vishnupriya G
Research Scholar, Govt Sanskrit College,
Thiruvananthapuram, Kerala.
9188594204
gvishnupriya.skt@gmail.com

INTRODUCTION

The Manusmṛti, traditionally attributed to Manu, occupies an important place in the Dharmaśāstra tradition. It deals with various aspects of dharma, including individual conduct, social duties, rites, family relations, kingship, judicial principles, and penances. Its prescriptions aim to regulate individual and social life within a framework of religious, moral, and social obligations. Among its important concepts is Varṇāśrama-dharma, which connects social duties with the different stages of human life.

Varṇāśrama-dharma is based on the interrelation of varṇa and āśrama. The four varṇas—Brāhmaṇa, Kṣatriya, Vaiśya, and Śūdra—are associated with specific social duties, while Brahmacarya, Gṛhastha, Vānaprastha, and Saṃnyāsa regulate conduct according to the stages of life. Thus, the Manusmṛti relates an individual's duties to both social position and stage of life. Alongside these specific duties, it also recognizes certain ethical principles as common to all. The term dharma forms the basis of this system. Derived from the root √dhṛ, "to sustain" or "to uphold," dharma denotes the principles that sustain individual and social order. In the Manusmṛti, it encompasses religious, moral, and social obligations. Varṇāśrama-dharma may therefore be understood as a system through which individual conduct is regulated in relation to both social responsibilities and the stages of life. The present study, entitled "The Concept of Varṇāśrama-dharma in the Manusmṛti: A Study of Social Order and Individual Duties," examines the duties prescribed for the four varṇas and four āśramas and analyses their role in maintaining social order and regulating individual conduct. It also considers the common ethical duties mentioned in the text to understand the broader conception of dharma within the Manusmṛti. The four varṇas are presented in the Manusmṛti as distinct categories with prescribed duties. Brāhmaṇas are associated with Vedic learning and teaching, sacrifice, and

giving and receiving gifts; Kṣatriyas with protection and governance; Vaiśyas with agriculture, cattle-rearing, and trade; and Śūdras with service to the other three varṇas. These prescriptions reflect the text's conception of a differentiated social order based on prescribed responsibilities.

The āśrama system provides a corresponding framework for individual life. Brahmacarya emphasizes education and discipline, Gṛhastha household and social responsibilities, Vānaprastha withdrawal and austerity, and Saṃnyāsa renunciation. The two systems together connect social duties with the changing responsibilities of an individual throughout life.

The Manusmṛti also identifies ethical qualities that extend beyond particular varṇa and āśrama duties. Patience, forgiveness, self-control, purity, truthfulness, and freedom from anger are included among the characteristics of dharma. Thus, its conception of Varṇāśrama-dharma combines particular social and life-stage duties with broader ethical principles, linking individual conduct with the maintenance of social order.

VARṆA-DHARMA IN THE MANUSMṚTI

The Manusmṛti presents the fourfold division of society into Brāhmaṇa, Kṣatriya, Vaiśya, and Śūdra as an integral component of its normative conception of social order. This classification is introduced in the context of the creation and organization of society, where each varṇa is associated with particular functions and responsibilities. The text does not merely identify these four groups but also prescribes distinct forms of conduct and occupation for them. Thus, varṇa becomes closely connected with the performance of specific duties, through which the individual contributes to the maintenance of the social order.

The duties of the Brāhmaṇa are described first. The Manusmṛti assigns to the Brāhmaṇa the study and teaching of the Veda, performance and officiation of sacrifices, and giving and receiving gifts. The text states:

adhyāpanaṃ adhyayanaṃ yajanaṃ yājanaṃ tathā |

dānaṃ pratigrahaṃ caiva brāhmaṇānām akalpayat ||[1]

These six activities constitute the principal duties prescribed for the Brāhmaṇa. The emphasis placed upon Vedic learning, teaching, sacrifice, and the regulation of religious knowledge reflects the distinctive position accorded to the Brāhmaṇa within the social framework of the

[1] Sidhinathanandaswamy, annot., Manusmṛti (The Mathrubhumi Printing & Publishing Company, 1988)1.88

Manusmṛti. The duties are primarily connected with the preservation and transmission of sacred knowledge and the performance of religious functions.

The Kṣatriya is assigned duties associated principally with protection and governance. The Manusmṛti states:

prajānāṃ rakṣaṇaṃ dānam ijyādhyayanam eva ca |

viṣayeṣv aprasaktiś ca kṣatriyasya samāsataḥ ||[2]

Protection of the people, giving gifts, sacrifice, study, and restraint from excessive attachment to sensual objects are identified as the principal duties of the Kṣatriya. The verse indicates that political authority is accompanied by ethical obligations. Protection of the people is therefore not presented merely as an exercise of power but as a duty grounded in dharma.

The duties of the Vaiśya are predominantly connected with economic activity and the material sustenance of society. The Manusmṛti specifies:

paśūnāṃ rakṣaṇaṃ dānam ijyādhyayanam eva ca |

vaṇikpathaṃ kusīdaṃ ca vaiśyasya kṛṣikarmāṇi ||[3]

Agriculture, cattle-rearing, trade, lending, giving, sacrifice, and study are associated with the Vaiśya. These occupations indicate the economic dimension of the varṇa system and demonstrate how the Manusmṛti connects social responsibility with productive and commercial activities.

The duty prescribed for the Śūdra is expressed more briefly in the text:

ekam eva tu śūdrasya prabhuḥ karma samādiśat |

etad eṣām eva varṇānāṃ śuśrūṣām anasūyayā ||[4]

The Śūdra is assigned service to the other three varṇas. This prescription represents one of the most significant aspects of the Manusmṛti's hierarchical social framework and must be understood within the normative structure of the text rather than treated merely as a description

[2] SidHinathanandaswamy, Manusmṛti 1.89
[3] Sidhinathanandaswamy, Manusmṛti 1.90
[4] I*bid 1.91*

of social reality. The formulation establishes a differentiated distribution of duties in which each varṇa is associated with a particular sphere of activity.

The discussion of varṇa in the Manusmṛti therefore reveals an underlying principle of functional differentiation. The duties prescribed for the four groups encompass intellectual and religious activity, political protection, economic production, and service. From the perspective of the text, the performance of these duties constitutes an essential element of social stability. Varṇadharma consequently operates not only as a system of social classification but also as a mechanism through which individual conduct is integrated into a wider conception of social responsibility.

At the same time, the Manusmṛti does not restrict dharma entirely to duties determined by varṇa. Its later enumeration of the ten characteristics of dharma demonstrates the presence of a broader ethical framework applicable to human conduct. The text states:

dhṛtiḥ kṣamā damo 'steyaṃ śaucam indriyanigrahaḥ |

dhīr vidyā satyam akrodho daśakaṃ dharmalakṣaṇam ||[5]

Firmness, forgiveness, self-control, non-stealing, purity, control of the senses, discernment, knowledge, truthfulness, and absence of anger are identified as the ten characteristics of dharma. This formulation is significant because it introduces an ethical dimension that transcends the differentiated duties of individual varṇas. The concept of Varṇāśrama-dharma in the Manusmṛti may therefore be understood as operating on two interconnected levels: particular duties determined by social and life-stage distinctions, and general ethical principles that provide a common moral foundation for human conduct.

Āśrama-dharma in the Manusmṛti

Āśrama is an important component of Varṇāśrama-dharma in the Manusmṛti. It regulates individual conduct according to the four stages of life: Brahmacarya, Gṛhastha, Vānaprastha, and Saṃnyāsa. Each stage has its own duties and disciplines, beginning with education and self-control and gradually progressing towards household responsibilities, withdrawal, and renunciation.

[5] Sidhinathanandaswamy, Manusmṛti 6.92

Brahmacarya is the first stage, in which the student lives under the guidance of the teacher and receives Vedic education. Along with learning, the Brahmacārin is expected to observe celibacy, discipline, obedience, and self-control. Respect towards the teacher and elders is also an important part of student life. The Manusmṛti states:

abhivādanaśīlasya nityaṃ vṛddhopasevinaḥ |

catvāri tasya vardhante āyur vidyā yaśo balam ||[6]

After completing Brahmacarya, the individual enters Gṛhastha āśrama through marriage. This stage involves responsibilities towards the family as well as towards ancestors, deities, guests, and other living beings. The householder also undertakes economic, ritual, and social responsibilities. The importance of Gṛhastha is expressed through the following comparison:

yathā vāyum samāśritya vartante sarvajantavaḥ |

tathā gṛhastham āśritya vartante sarva āśramāḥ ||[7]

The Gṛhastha is thus presented as an important support for the other āśramas. The pañcamahāyajñas also form an essential part of household duties. These include Brahmayajña, Pitṛyajña, Devayajña, Bhūtayajña, and Nṛyajña:

adhyāpanaṃ brahmayajñaḥ pitṛyajñas tu tarpaṇam |

homo daivo balir bhauto nṛyajño 'tithipūjanam ||[8]

These duties extend the responsibilities of the householder beyond the family and connect household life with religious and social obligations.

Vānaprastha is the third stage, marked by a gradual withdrawal from worldly activities. After fulfilling household responsibilities, the individual turns towards austerity, restraint, and spiritual practices. Saṃnyāsa, the final stage, represents renunciation and detachment from worldly life. The individual gives up household obligations and concentrates on spiritual realization. Thus, the āśrama system in the Manusmṛti regulates individual life through successive stages, each having distinct duties and objectives. Brahmacarya emphasizes education and discipline, Gṛhastha fulfils familial and social responsibilities, Vānaprastha

[6] *Ibid 2.121*
[7] *Ibid 3.77*
[8] *Ibid 3.70*

promotes withdrawal and austerity, and Saṃnyāsa leads towards renunciation. Together, these stages form an important part of the Manusmṛti's conception of individual duty within the wider framework of Varṇāśrama-dharma.

Conclusion

The concept of Varṇāśrama-dharma in the Manusmṛti presents a systematic framework for regulating both social and individual life. The division of society into four varṇas assigns specific responsibilities to individuals, while the four āśramas regulate duties according to the different stages of life. The text thus connects individual conduct with the preservation of social order. At the same time, the emphasis on virtues such as self-control, truthfulness, purity, and absence of anger shows that dharma also has a wider ethical dimension. Varṇāśrama-dharma in the Manusmṛti may therefore be understood as a system in which social responsibilities and individual duties are closely connected.

WORKS CITED

- Aiyangar, K. V. R. Some Aspects of the Hindu View of Life According to Dharmaśāstra. Oriental Institute, 1952.
- Bühler, Georg, translator. The Laws of Manu. Sacred Books of the East, vol. 25, Oxford University Press, 1886.
- Jha, V. N., editor. Dharmaśāstra and Social Awareness. Sri Satguru Publications, n.d.
- Kane, P. V. History of Dharmaśāstra. Vol. 1, Bhandarkar Oriental Research Institute, 1930.
- Olivelle, Patrick, translator and editor. Manu's Code of Law: A Critical Edition and Translation of the Manusmṛti. Oxford University Press, 2005.
- Sidhinathanandaswamy, annotator. Manusmṛti. Mathrubhumi Printing and Publishing Company, 1988.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारती संस्कृति गी डोगरी भाषा ते डोगरा लोक-संस्कृति दा योगदान

डॉ. विजय कुमारी
वार्ड नंबर 21, मकान नंबर 1059
नजदीक राधास्वामी सत्संग घर, बट्टल बलिया मार्ग
तहसील जिला उधमपुर 182101, जम्मू कश्मीर

सार

लोक-संस्कृति कुसै बी समाज दी सिरजना दी ओह् छों होंदी ऐ जिसदे राहें उस समाज दे विश्वास, रीति-रवाज, रैह्न-सैह्न, हर रोज दे कम्मै-काजे ते पारिवारिक परंपराएं दे बारे ज्ञात होंदा ऐ लोक-संस्कृति दा अधार मुंह जबानी परंपरा ते मनुक्खै दियां परिक्रिया होंदियां न जिस च कुसै काल दे कन्नै-कन्नै परिस्थितियें दे अनुरूप बदलाऽ च संतुलन रौंदा ऐ ते व्याख्या च बी अंतर आई जंदा ऐ लेकन फ्ही बी बीऽ रूप च सांस्कृतिक स्थिरता परंपरागत सरूप दे अधार पर लगातार टिकी दी रौंदी ऐ।

भारती समाज इक ऐसा समाज ऐ जिस च नेकें वर्गे, कबीलें, समूहें, जातियें ते संप्रदाएं दा रलाऽ ऐ। इस समाज च दंत कथां, धार्मिक कथां, रूढ़िवादी विश्वासें ते मान्यता दी कमी नेई ऐ लेकन फ्ही बी भारती संस्कृति दी विशेषता इश्यै ऐ जे संप्रदायिक स्तर पर इन्ने वर्ग होने पर बी भारती संस्कृति दी अपनी अनमिट्ट झलक हर परिवेश च लगातार झलका करदी ऐ ते एह झलक मिली ऐ बक्ख बक्ख वर्गे दे लोक अनुश्ठानें, लोक विश्वासें, लोक कलाएं, लोकवार्ता, लोकगाथाएं ते लोकगीतें बगैरा चा।

कुंजी शब्द - छों, पक्खपात, मनुक्ख, अनमिट्ट, बदलाऽ, अनुश्ठान

डोगरी भाषा- डोगरी भाषा दा सरबंध डुग्गर च रौंह्ने आह्ले डोगरें कन्नै ऐ ते इश्ने लोकें दी भाषा डोगरी खुआंदी ऐ।

डोगरी भाषा आर्य परिवार दी भाषा ऐ ते इसदा विकास-क्रम बी उश्ऐ नेहा ऐ जनेहा हिंदी, मराठी, गुजराती, असमिया, बंगाली, उड़िया, राजस्थानी, बगैरा दूइएं जदीद भारती भाषाएं दा रेहा ऐ। इस च वैदिक शा लेइयै मजूदा रूप तकर पुज्जने दे सश्ब्बनी स्तरें पर होए दे क्रमिक विकास दियां खासियतां मजूद न।'[1]

भारती आर्य-भाषा परिवार दी डोगरी भाषा दा जरम ईसा दी शह्मी. सदी च होआ। एह जम्मू-कश्मीर केन्द्र-शासित प्रदेश दी मुक्ख भाषा ऐ। इसदे अलावा पंजाब दे गुरदासपुर, होशियारपुर, हिमाचल प्रदेश दे चम्बा, काँगड़ा, नूरपुर ते पाकिस्तान दे शक्करगढ़ ते स्यालकोट बगैरा बी डोगरी भाषा दे खेत्तर न। इस भाषा दे प्हाड़ै (North) अश्ल्ल रामबनी ते पोगली बोल्लियां न, प्हाड़-चढ़दै (North-East) भद्रवाही बोल्ली जंदी ऐ। इसदे चढ़दे (East) काँगड़ा दी कड़ेआली जां काँगड़ी, चम्बा दी चम्बेआली आदि बोल्लियां न, लैंहदे (West) अश्ल्ल चिब्बाली पोठीहारी आदि उपभाषा न। इस चाल्ली पुंछ थमां लेइयै कांगड़ा तक्कर ते शक्करगढ़, गुरदासपुर थमां लेइयै बनिहाल तक्कर डोगरी दा खेतर ऐ।"[2]

लोक-संस्कृति - संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग कन्नै जुड़ी दी कृ धातु थमां बने दा ऐ। सुट् दा आगम सजौट दे अर्थे च

होए दा ऐ ते वितन् प्रत्यय जोड़ियै एह संज्ञा शब्द बनाई लैता गेदा ऐ। संस्कृत दा अर्थ ऐ सोआरना, संगारना, शैल बनाना।''[3]

पश्चमी विद्वान टी.एस. इलियट हुंदे मताबक श्संस्कृतिश शब्द दा अर्थ कुसै इक थाह्र रौंह्ने आह्ले लोकें दे जीने दा ढंग ऐ। उंदी कला ते समाजक बवस्था च उंश्दियें आदतें ते रीति-रवाजें च, उंश्दे धार्मक ते अध्यात्मक बचारें च संस्कृति दे दर्शन हुदे न। अस अपनी सुबधा लेई इश्ने सब्भने गुणें ते कम्में दे कट्ठ गी संस्कृति आखी दिन्ने आं, पर असल च एह संस्कृति नेई संस्कृति दे अंग न। जिश्यां शरीरक अंगें दा समूह गै मनुक्ख नेई हुन्दा, इंदे सब्भनें शा बद्ध किश होर मनुक्ख खुआंदा ऐ, उस्सै चाल्ली रीति-रवाज, रौह्न-बौह्न, कला धार्मिक विश्वास बगैरा दे समूह थमां बक्ख किश होर बी ऐ, जिसी संस्कृति आखदे न।'[4]

डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स हुदे मताबक श्संस्कृति दी परिभाषा - साढ़ी विशाल संस्कृति दी इक्कै आतमा सारियें प्रादेशिक संस्कृतियें च विराजमान ऐ, पर सारे प्रदेशें दियें संस्कृतियें च विराजमान ऐ, पर सारे प्रदेशें दियें संस्कृतियें दे अपने-अपने नोखे ते बक्खरे रूप बी न। इसदा कारण ऐ, हर प्रदेश दियां भूगोलक, धार्मक, इतिहासक, राजनीतक ते समाजक परिस्थितियां, जिंश्दी वजह कन्नै उंश्दे च रौंहने आह्ले लोकें दे खान-पीन, रैह्न-सहन ते रीति-रवाजें च बी काफी परिवर्तन आई जंदा ऐ। पर, इस सब दे बावजवूद अस सब्भै इक विशाल भारती संस्कृति दे गै अभिन्न अंग आं। साढ़े इस अनेकता च एकता आहूले रूप दी दुनिया-भर दे लोक तरीफ करदे न। असलै च इसदे पिच्छे मूल स्रोत ऐ, साढ़ी वैदक संस्कृति दा अमर रूप।[5]

डॉ. सुमन कुमार सुमन हुदे मताबक कुसै जाति दे अचार-विचार, चिंतन, खान-पीन, रीति-रवाज, रैह्न-सैहह्न, धर्म, बक्खो-बक्ख कलाएँ ते साहित्य दे संशिलश्ट रूप गी संस्कृति आखेआ गेदा ऐ।[6]

इश्ने परिभाषाएँ थमां स्पष्ट होंदा ऐ जे लोक संस्कृति इक नेहा सिलसिला ऐ जेहड़ा कुसै समाज दी विशिष्ट रूपरेखा गी तजरबेकार करने च ते उसगी दिशा दा ज्ञान कराने च महत्त्वपूर्ण बनांदी ऐ, समाज च निहत बक्ख-बक्ख कलाएं, कल्पनाएं ते रूप विधाने कन्नै लगातार अग्गें बधदा रौह्ना ऐ।

डोगरा संस्कृति, भारती संस्कृति दी स्थानी शाखा ऐ, जिसदे इलाके च इंद्रधनखी रंगे आह्ला लेखा रंगता प्रगट होंदियां न। डोगरा लाका बेशक्क अपने गुढी प्रदेशें थमां भाषा दी द्रिश्टी कन्नै बक्ख ऐ, पर इसदी अपनी बक्खरी सांस्कृतिक पंछान बी नज़री आई जंदी ऐ। इश्नें सभने दे बावजूद बी डुग्गर संस्कृति दी मूल जड़ भारती संस्कृति रूपी समुंद्री धारा थमां निकलदी ऐ। भारती संस्कृति दे विशे च डॉ. वेद कुमारी घेई होर लिखदियां न समूचे देसै च व्यापी दी इश्यै भारती संस्कृति देसै दे बक्खरे-बक्खरे हिस्सें च रंग-बरंगे टल्ले लाइयै मंगलगीत गा करदी ऐ। मूहे दे बोल भाएं बक्खरे-बक्खरे न, ब, मनै दी भाषा इक्कै ऐ। उत्तर-पच्छमी प्हाड़े दी गोदा बस्से दे डुग्गर देसै दी संस्कृति बी इस्सै बशाल संस्कृति दा इक लौका-नेहा रूप ऐ।[7]

डुग्गर दी लोक-संस्कृति दी सारे थमां खास ते मुक्ख विशेशता एह ऐ जे एह् लोक औक्खी-भारी च कुसै दे कम्म औंदे न, रली-मिलियै कम्म करदे न, लोक-धर्म दा मुंढला सरोकार ऐ।

ग्राईं लोकें दे समाजक जीवन दा मूल अधार सहकारिता दी भावना ऐ। रौंह्ने आस्तै बक्ख-बक्ख घर होंदे होई बी ग्रों बासियें च इक परिवार-जनेहा हिरख-समोध होंदा ऐ। लाद्दी करनी होऐ, शत्हीर ढोने होन, घाऽन कप्पना होऐ, ब्याह होऐ।

डोगरा लोक-संस्कृति दियां किश मुक्ख खासियतें दा ब्यौरा इस चाल्ली ऐ -

देवी-देवतें प्रति शरद्धा - भारती संस्कृति दी सारें थमां बड्डी विशेशता एह ऐ जे इसदी देवत्व प्रति बड़ी शरद्धा ते आस्था ऐ जेहदे च देवी-देवतें प्रति जो धारणा बनी उसने इश्ने देवी-देवताएं गी उस्सै रूप च मन्नी लेआ। भारत देस इक विशाल देस ऐ। उस्सै चाल्ली इस च नेकें धर्मे दे लोक रौंह्दे न ते इसदी संस्कृति च नेकें संस्कृतिएं दा संगम ऐ जिश्यां धर्म, दर्शन ते जीवन बारै केई चाल्ली दिश्यां धारणा प्रचलत न। हर धर्म दी अपने देवतें प्रति अपनी-अपनी संस्कृति ऐ। कुसै धर्म गी बी इत्थें कोई बंदश नेई ऐ। इस्सै चाल्ली डुग्गर च बी हर धर्म कन्नै जुड़े दे लोक रौंह्दे न। उश्ने लोकें दी बी अपने देवी-देवतें दे प्रति बड़ी शरद्धा ऐ। ओह अपने-अपने स्हाबै देवी-देवतें दी मैमा करदे न। डुग्गर दे हिंदू धर्म कन्नै सरबंधत देवी-देवतें दी बंड ओम गोस्वामी होरें इस चाल्ली कीती दी ऐ उदे मूजब डुग्गर च बी केई चाल्ली दे देवतें दी भरमार ऐ। इश्ने देवतें गी चार

मुक्ख वर्गे च रक्खेआ जाई

सकदा ऐ - (क) पौराणिक-ब्रह्मा, विष्णु, महेश, महालक्ष्मी, महाकाली आदि (ख) मिथक - वैष्णो, चौंड, बासक आदि (ग) देवत्व प्राप्त इतिहासक पुरश - राजा मंडलीक, कालीवीर आदि (घ) बलिदानी देव-देवत्व पद पर प्रतिष्ठत मृतातमां -जिश्यां बावा जित्तो, दाता रणु, बूआ कौड़ी आदि।"[8]

लोक-विश्वास - लोक-विश्वास भारती संस्कृति दा अनत्रुट्टा अंग न। इंदा घेरा बड़ा मोकला होंदा ऐ। इश्नेगी सांस्कृतिक रूढ़ियां बी गलाया जंदा ऐ। डुग्गर प्रदेश च बी केई चाल्ली दे लोक-विश्वास प्रचलन न जनम ते मृत्यु कन्नै सरबंधत, रुक्खें-बूटें कन्नै सरबंधत, पशु-पक्खरूएं कन्नै सरबंधत, प्रकृति कन्नै सरबंधत, बच्चे कन्नै सरबंधत, भूतें-प्रेतें कन्नै सरबंधत। एह लोक विश्वास डुग्गर दी लोक-संस्कृति ते लोक परंपराएं च पूरी चाल्ली रज्जे-पुज्जे दे न। जेकर असेंगी कुसै संस्कृति गी जां नुहाड़े परिवेश गी ते जां फ्ही नुहाड़े चेतना दे विकास-क्रम गी समझना होऐ तां उस संस्कृति गी धारण करने आले लोकें दे विश्वासें गी जानना, समझना जरूरी हौंदा ऐ एह लोक विश्वास केइयें द्रिश्टियें कन्नै साढ़े अंदर विराजमान न। कुते दैनिक क्रिया-कलापें दे राहें, कुतै शारीरिक अंगें दी क्रियाएं राहें ते केई बारी सुखने बगैरा च बी इंदा अधान-प्रधान होंदा ऐ।

''डोगरा जन-जीवन दा कोई बी पैह्लू बचे दा नेई लश्बदा जिस बारे लोक-विश्वास मजूद नेई होन। एह लोक-विश्वास मनुक्खी तजर्बे दी उस घासी गी स्पश्ट करदे न, जिस पर टुरियै मनुक्ख सभ्यता दी पैड़ी ते डंडे चढ़दा उप्पर पुज्जा ऐ। इत्थूं तोड़ी जे आधुनिक दौर इच बी किश बैह्म सिरजे गे न। कुसै लोक-संस्कृत च लोक-मर्यादाएं दा निर्धारण बी उस च प्रचलत ठाके राहें होंदा ऐ। असल च, सांस्कृतिक परंपरा दे निरवाह च लोक-विश्वासें दी खासी म्हत्तवपूर्ण भूमका हौंदी ऐ। रीतें ते विश्वासें कन्नै लोकें दे समाजक चलन दा बी पता चलदा ऐ। ग्रैह्ण दे दूए दिन अपनी गली दे सफाई कर्मचारी गी बब्बरू, मठैइयां, भत्त बगैरा दित्ते जंदे न। लोकश-विश्वास ऐ जे एह जाति राहू दे नांड पर दित्ते जाने आह्ले दान दी अधिकारी ऐ। इस रवाज दा प्रचलन सदिएं थमां ऐ। इस थमां एह अंदाजा शैल चाल्ली लाई सकने आं जे लोक-विश्वास रीतें-रवाजें दे रूपा च फली-फल्लरियै लोक-मानस दे अंदर डूंगिएं जश्ड़ें आंगर फैली जंदे न।"[9]

प्रकृति दी पूजा - आमतौरा पर ध्याड़ा चढ़दे गै भारत च सूरज नमस्कार कीता जंदा ऐ। इस च लोक सूरज गी पानी चढ़ाने दे कन्नै मैंत्तरें दा उच्चारण करियै प्रार्थना करदे न। भारती लोक प्रकृति दी पूजा-अर्चना करदे न ते डुग्गर च बी प्रकृति दी एह परंपरा विराजमान ऐ।

''वैदिक काल च वी प्रकृति गी देवी-देवता दे रूपै च पूजेआ जन्दा रेहा ऐ ते वनस्पतियां प्रकृति दा इक अटूट अंग न। इयां सेही होंदा ऐ जियां पैहले ते लोक च छड़ी श्रद्धा ते देनदारी दी भावना रेही होग ते फ्ही इयै भावना लोक विश्वास दे रूप च प्रचलत होई ते फ्ही लोक विश्वासें रूढ़ियें दा धारण करी लेता ते बक्खरे-बक्खरे बूटें आस्तै बक्खरे-बक्खरे दिन निश्चित करी ले ते ओद्दे कन्नै होने आली फल प्राप्ति बारै बी किश धारणा बनाई लेइयाँ।"[10]

"डुग्गर इच प्रकृति दे बक्ख-बक्ख अंगें दी पूजा दा रवाज ऐ। बनिएं, पत्थरें, चट्टाने च देवी-देवतें दा बास मन्नेआ जंदा ऐ। भारत दे दूए हिस्सें साई डुग्गर इच बी रूक्खें-बूटें, पशु-पैंछिएं दी पूजा दा रवाज मजूद ऐ। मती हारी बनस्पतिएं, जीवें ते खाने-पीने सरबंधी चीजें गी जां ते धार्मक तौरा पर पवित्तर मन्नेआ जंदा ऐ जां उश्नेगी धार्मक जां लौकक अनुश्ठाने च पूजने, लाने जां बरतनेजोग मन्नेआ जंदा ऐ।"[11]

चन्नै ते सूरजै गी बी प्रकृति दा हिस्सा मिथेआ जंदा ऐ। इस मूजब जनानिएं दे किश बर्ते उप्पर चन्न गी अर्घ देने दा रवाज ऐ ते मुस्लिम बी चन्न गी दिक्खियै ईद मनांदे न। इश्ने विश्वासें दे माध्यम कन्नै लोक-मानस प्रकृति कन्नै जुड़े दा ऐ ते अपने आप गी बी प्रकृति दा अंग मिथदा ऐ।

बेआ दी रीत - डुग्गर धरत दे जनजीवनै च धर्म दे प्रति मती शरद्धा रेही ऐ। इस इलाके च मते सारे रीति-रवाजें थमां एह आखेआ जाई सकदा ऐ डुग्गर दे बसनीकें दा ईश्वर-चिंतन, बर्त-नर्त्त, दया-दान बगैरा च मता विश्वास रेआ ऐ। 'बेआ' बी डुग्गर दी इक रीत ऐ ते एह दान देने पिच्छे जेड़ी भावना मिथी जंदी ऐ ओह ऐ घरै-परोआरै च समोध बनाई रक्खना। एह दान किश मनुक्खें ते किश मौकें कन्नै जुड़े दा होंदा ऐ। इसदा सरबंध डुग्गर दी नारी जाति कन्नै ऐ एह परंपरा खास मोकै

पर नभाई जंदी ऐ। बेआ लैने आलें च मर्द जाति बी होई सकदी ऐ। श्बेआश ते डुग्गर दा नारी जीवन निबंध च डॉ. चम्पा शर्मा होर लिखदियां न ष्बेआ देने दी गल्ल घरा थमां गै रंभ कीती जा तां मनासब रोग। घरा च बेआ देने आली नूंह होंदी ऐ ते बेआ लैने दे अधिकारी सस्स, सौह्र, जठानी, देर, ननान बगैरा होंदे न। इक होर खास गल्ल ए ऐ जे घरा दियां नूंह श्बेश दियां चीजां प्यौकेआ आनियै दिन्दी ऐ। इक होर विशेष तत्थ एह ऐ जे बेआ सरगांदी आले दिन गै दित्ता जन्दा ऐ।"[12]

बलि प्रथा डुग्गर प्रदेश च बलि-प्रथा दा बी रवाज ऐ। इंदे च पौराणक देवी-देवतें ते सती-शहीदें गी छोड़ियै ज्यादातर देवतें गी बलियां दितियां जंदियां न। एहू बलियां भिड्डू जां बक्करी दियां होंदियां न। पराने समें च लोकमत दी एह धारणा बी रेई ऐ जे देवी श्चौंडाश गी कटूटें (भैसे) दी बलि लगदी ही। एह बलियां कुलै च जागतै दे जमने, बधाइयां देने मौकै, घरै दी रक्खेआ लेई, फसलें गी जनौरें जां ऐहलू थमां बचाने लेई, दुद्ध तंदाला घरै च बनेआ रश्बै, डंगरे दी रक्खेआ बगैरा लेई एहू बलियां दित्तियां जंदियां न।

मेले ते तेहार - ''डुग्गर रंग-बरंगे मेलें ते तेहारें दी धरती ऐ रितुएं, देवी-देवतें ते इतिहासक महापुरखें कन्नै जुड़े दे मेले-तेहार ते जात्तरां डुग्गर संस्कृति गी इक रंग-बरंगा गुहाड़ दिंदे न। लोहड़ी ते बसाखी दा सरबंध मौसम बदलने कन्नै ऐ तां सुद्धी ते ऐरमां दे मेले देवी-देवतें कन्नै सरबंधत मन्ने जंदे न। सौनी फसलें दे बाद डुग्गर च देवी-देवतें दिए जात्तरें ते मेलें दी रौनक शुरू होई जंदी ऐ। इश्ने तेहारें दी दौलत अपनी संस्कृति ते जद्दी परंपरा कन्नै सरबंध जुड़ेआ रौंदा ऐ।"[13]

डुग्गर दे मेले दे तेहारें च - बसोआ, निर्जला कादशी ते धमर्देह, नाग-पंचमी, बच्छ-दुआ, मिंजरें दा तेहार, देआली दा तेहार, दसैहे दा तेहार बगैरा शामल न। एह रंगले-रौंसले मेले ते तेहार साढ़ी संस्कृति दी बक्खरी गै पंछान करांदे न। ते डुग्गरवासियें दे जीवन च खुशी ते आनंद दा सर्जन करदे न।

नत्त-बरत ते मोख - डुग्गर च मनाए जाने आले नत्त-बरत ते मोख विशाल भारती संस्कृति दा गै इक हिस्सा न। एह तेहार लोकें दे कुसै-न-कुसै विश्वास कन्नै जुड़े दे न। इश्ने तेहारें गी करदे मौकै जनानिएं दे मुहें उप्पर बक्खरी गै आस्था ते रौंस दिक्खने गी लश्ब्दी ऐ ष्डुग्गर च जनानियां आए दिन कोई ना कोई बरत-नत्त अपने बच्चे, पति, घरै दे लोकें ते माल-बच्छे दी सुख-शांति आस्तै रखदियां न। हरदालका, होई, भुग्गा, बच्छदुआ, विद्धी दा बरत, इयै जनेह बरत न, जिन्दे च जनानियां अपने बाल-बच्चें दी मंगल कामना करदियां न। करेआचौथ पति दी लम्मी उमरी आस्तै रखदियां न। ब्यास पुन्नेआ च गुरु जां परोत दी पूजा कीती जंदी ऐ। जन्माश्टमी ते रामनौमी दे बरत कृश्ण जी ते रामचंद्र जी दे जन्मदिन मनाने गितै रक्खे जन्दे न। दुब्भड़ी दा बरत घरै दे मर्दे-जागतें आस्तै रक्खेआ जन्दा ऐ। नागपंचमी दा बरत नागें दी पूजा च हुन्दा ऐ। इंदे इलावा केई लोक हर संगार जां मंगलवार नत्त रखदे न। पुन्नेआ जां कास्ती गी बी बरत रक्खदे न। इश्ने बरतें-नत्तें कन्नै मोख ते दान-पुन्न बी डुग्गर दियां जनानियां मर्द करदे न। इश्यै जनेह बरत-नत्त ते मोख, नेकां धर्म-ध्याड़े साढ़ी डुग्गर संस्कृति दी विशेषतां न।''[14]

खीर च आखेआ जाई सकदा ऐ जे डोगरी भाषा इक समृद्ध भाषा ऐ। इसदी अपनी लिपि ऐ ते इस च उच्चकोटि दा साहित्य रचेआ जा करदा ऐ ते भारत दी दूइएं भाषाएं जिश्यां - गुजराती, बंगाली, उर्दू, हिंदी, तमिल बगैरा च जेह्ड़ा साहित्य लखोआ करदा ऐ उसदा लेखा-जोखा डोगरी भाषा थमां प्रस्तुत होई जंदा ऐ। इस तरीके कन्नै अस दिक्खनेआं जे भाषा दा जेहड़ा इक-दूए कन्नै जुड़ाव ऐ इस कन्नै इक टकोह्दी गल्ल ऐ जे इस कन्नै इक देसकता होंदी ऐ ते इस थमां अनेकता च एकता जां एकता च अनेकता एह दोऐ चीजां सामने आई जंदियां न ते अस इस तरीके कन्नै दिक्खने आं जे भारती साहित्य दे कन्नै गै डोगरी साहित्य बराबर चला करदा ऐ। ऐहुद्दे कन्नै इक टकोह्दा योगदान भारती आस्तै होंदा ऐ ते जित्थूं तगर डोगरा-संस्कृति दी गल्ल ऐ तां एह संस्कृति भारती संस्कृति दा गै इक हिस्सा ऐ ते इसदियां अपनियां स्थानी खूबियां न। जिश्यां इतिहासक, भूगोलक बगैरा स्थितिएं लेई एह् संस्कृति अपनी टकोद्दी पंछान बनाइयै उश्ब्बरा करदी ऐ इस करी इसदा बी भारती संस्कृति गी बड़ा मता योगदान ऐ।

संदर्भ

1. ओम गोस्वामी, डोगरा लोक-संस्कृति ते अनुश्ठान परंपरा, सफा 30
2. यशपाल निर्मल, डोगरी व्याकरण ते संवाद कौशल, सफा 17, 18
3. डुग्गर दा सांस्कृतिक इतिहास, लेख संस्कृति दी परिभाषा ते डुग्गर संस्कृति दियां वशेषतां, डॉ. वेद कुमारी घई, सफा 15
4. ओम गोस्वामी, डोगरा लोक-संस्कृति ते अनुश्ठान परंपरा, सफा 8
5. डुग्गर दा सांस्कृतिक इतिहास, लेख संस्कृति दी परिभाषा ते डुग्गर संस्कृति दियां वशेषतां, डॉ. वेद कुमारी घई, सफा 16
6. साढ़ा साहित्य (2008-2010), लेख सुरगभूमि भद्रवाह ते उसदी संस्कृति, सफा - 196
7. डुग्गर दा सांस्कृतिक इतिहास, लेख संस्कृति दी परिभाषा ते डुग्गर संस्कृति दियां वशेषतां, डॉ. वेद कुमारी घई, सफा 34
8. डुग्गर दा सांस्कृतिक इतिहास, लेख संस्कृति दी परिभाषा ते डुग्गर संस्कृति दियां वशेषतां, डॉ. वेद कुमारी घई, सफा 221
9. ओम गोस्वामी, डोगरा लोक-संस्कृति ते अनुश्ठान परंपरा, सफा 40
10. भारती-फोकलोर, लेख डुग्गर दे लोक-जीवन च बनस्पतियें दार धार्मक महत्त्व, सफा 73, 74
11. ओम गोस्वामी, डोगरा लोक-संस्कृति ते अनुश्ठान परंपरा, सफा 40, 41
12. चम्पा शर्मा, डुग्गर दा जीवन दर्शन, सफा 43
13. ओम गोस्वामी, डोगरा लोक-संस्कृति ते अनुश्ठान परंपरा, सफा - 43
14. डुग्गर दा सांस्कृतिक इतिहास, सफा 30

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर' कविता संग्रैह : इक अध्ययन

डॉ. कमलेश कुमारी
पत्नी श्री धीरज कुमार बाधोरिया
गाँव - रंजरी
तहसील - विजयपुर
जिला - साम्बा-181143, जम्मू-कश्मीर।

वेद राही डोगरी साहित्य च इक मुकम्मल नां ऐ। इ'नें डोगरी भाषा च हर विधा पर लिखेआ ते खूब लिखेआ ते अपना लोहा बी मनोआया। वेद राही होरें अपना लेखन कार्य बशक्क कविता कन्नै गै रम्भ कीता। 'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर' कविता संग्रैह मते स्हाबें अपनी इक खास टकोह्द रखदा ऐ। इंदे इस संग्रैह् च अनथाह्गे शलैपे ते अथाह गैहराइयें दी मर्म पन्छान कठेरने दी पुज्ज-पौंह्च दिखदे गै बनदी ऐ। एह् विलक्ख कविता पोथी हर गल्लें दे कन्नो-कन्नी अपनी दार्शनिक गुरूत्व-गरिमा मूजब बी खास ऐ।

'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर' पोथी च 73 कवितां, 13 गजलां ते 12 नमियां भाखां न। कविताएं च चक्की, अज्ज रात भारी ऐ, कलरात्री, धुप्प, बूह्टे आदि किश बी छोड़ी ज्यादातर गिनतरी छन्द मुक्त रचनाएं दी ऐ।

कवि दी काव्य साधना च जिनें दुर्लभ पगडंडिएं दी नशानदेही बड़ी सैह्ज ऐ, उन्दे च जीवन विश्लेशन, आत्म चेतना, संवेदना, दार्शिनकता आदि गी सिरमौर भालेआ जाई सकदा ऐ।

इक हत्थै दी ताड़ी, खुपटी, सदगति, तीलें आह्ली डब्बी, अस लोक, आदम खोर, कालरात्री, विदूश्क, अपने अंदर, दुविधा, दोस्तोयेवस्की, सुरक्षा, किन्नियां कैदां बगैरा-बगैरा ऐसियां रचनां न, जिंदे च कवि जीवन खुलासे गी पूरी चाल्ली भांपदा ऐ, एह्दा मूल्यांकन करदा ऐ ते इक संतुलित सधेरना गित्तै पाठक गी प्रेरदा ऐ -

इक हत्थै दी ताड़ी/मेरी कविता
नेईं सनोंदी, छड़ी/मैह्सूस गै होंदी
छुपलै पैरें औंदी ते/मेरे बजूद दी
लिखतै पर दसख्त करी जंदी।

अपनी कविता दा अपने बजूद कन्नै एह् स्थापत्य ते इस थमां बधीक दौनें दे अस्तित्व बारै कवि दे नज़रिये दी प्रकाष्ठ जीवन लीला दे संदर्भ च बड़ी अनूप ऐ।

इयां गै इस्सै नज़रिये दा एह् पैह्लू बी चेचे तौर पर अवश्श चतेआ जाई सकदा ऐ -

अपनी खुप्टी इच बड़ेआ ... में
रेशमां दे कीड़े साईं
अंदरा/फर-फर करदियां
तितरियां निकलियां/कवितां बनियै

'सद्गति' नां दी कविता च कवि अपनी सिरजनात्मक प्रतिभा बारै जां ही अपनी सिरजन कठेरने सरबंधी जिस नज़रिये दा प्रतिपादन करदा ऐ ओह् अवश्शमेव पाठक गी इक झुनक बी करांदा ऐ ते लोड़चदा दिशा-निर्देश बी दिंदा ऐ -

अज्ज तोड़ी में/मता किश ओह् लिखेआ
जो/में लिखना नेईं हा चांह्दा
सोचा करना/जे में लिखना चांह्दा हा ते
नेईं लिखी सकेआ/उसी हून
इक थैली च पाइयै/कुसै पिप्पला पर टंगी ओड़ां
अस्थियें साईं।

अपने अन्तर दी आवाज गी इयां सतत् सुनदे रौह्ना, कवि द्वारा आत्म-साक्षात्कार ते सत्-सत्कार दा प्रतक्ख प्रमाण ऐ। 'अपने अंदर' कविता दियां एह् पंक्तियां इस सिलसिले च मतियां स्महालने जोग न -

अपने अन्दर दे धोखेबाज गी दिक्खियै
हास्सा बी औंदा ऐ/ते अन्दर बैठे दे लालची कशा
घबराट होन लगदी ऐ,
पर कदें-कदें अपने अन्दर
इक प्यार करने आह्ला बी लभदा ऐ
जेलै ओह् झमानी लैन लगदा ऐ तां
मिगी उदे पर प्यार आई जंदा ऐ।

'सुरक्षा' नां दी कविता च बी कवि अपने आपै थमां बक्खरा होई किश इ'यां दिखदा जीवन तकाजें दा मुल्यांकन करदा अन्तर दी आवाज गी सुनदा ऐ -

में अपनी सुरक्षा आस्तै/जेह्ड़ा घर बनाया हा
हून उदे'च/में नेई रौंह्दा
ओह् घर मेरे अन्दर रौंह्दा ऐ
उसदी सुरक्षा/मेरी सुरक्षा कशा
मती जरूरी होई गेई ऐ।

मनुक्खी कमजोरियें गी जिकरदे मनुक्खै दी आप-मुहारी दास्ता दी दास्तां दे किश-इक सजीव दक्ख 'किन्नियां कैदां' कविता च बड़ी सफलता कन्नै पेश करदा ऐ - खुश्पा प्रतक्ख एह् कोई स्वच्छन्द-स्वतन्त्र उस मुक्त अवस्था दी पारत-पन्छान होऐ, जिस गित्तै मनुक्खै गी एह् अपना मानस देह् हासल ऐ।

'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर' कविता संग्रैह् च जीवन विश्लेशन दी परिपक्वता आत्म चेतन दे लक्ष्य गी प्राप्त करने च किन्नी प्रखर, किन्नी प्रबुद्ध ऐ; एह्दा लाना जिनें रचनाएं थमा खासा सैह्ज ऐ उं'दे च 'उच्चे किंगरें अड़के दा बदल', चक्की, मेरे चेह्रे दियां झुरड़ियां, थैंक्यू माई पैन, कुप्पड़, इक होर जनम, बढ़ापा, अज्ज रात बड़ी भारी ऐ, अज्ज कल्ल, बदलोखा, नशेई रुक्ख, तुगी प्यार करने के बाद, खीरले साह्, दिन इस चाल्ली गुजरा दे, लद्दाख दी चिट्ठी, मानसून दे नां, ठुमरी, मलका पुखराज, नर्तक, कम्बल, दलील, रस्ते, गुल्ल मोह्रै दा पैह्ला गुच्छा, कश्मीर-2000, मां, ज्हाज च बैठे दे बारी चा दिखदे होई, आदि दे नां चेचे तौर पर गिने जाई सकदे न -

उच्चे किंगरें अड़के दे बद्धल
X X X
साह् रोकियै बैठा दा ऐ
ब्हाऊ दे इक फंडूके दी उआई च

जेह्ड़ा उसी डुआइयै
ख'लकायें केरियें रुलकाई देऐ
एह्दा बजूद पिघलै ते
मस्त होइयै निक्किययां-निक्कियां
कनियां बनियै/डबियें-दबड़ियें गी सेड़दा
छर-छर करदे झलारें च बगी जा

'उच्चे किंगरे अड़के दा बद्दल' कविता च कवि आत्म जागरण दा उद्घोष बिखरी जाने ते स्रिश्टी दी भांत-सभांते कन्नै इक-मिक होई जाने आह्ली कुसै मुक्त प्रवाहिनी दे अस्तित्व थमां प्राप्त करदा ऐ।

'चक्की' रचनां च इयै सुर किश इस चाल्ली बादै होंदे न -

चक्किये! चक्किये, कुसै दी नेईं सक्किये
होर पीह्, होर पीह्, होर पीह्/में नेईं करगा सीऽ
करी दे इन्ना बरीक/र'वै नेईं थवीक
तेरे कशा बक्ख होने दी/इक-मिक होई जाचै
संझै साईं घरोई जाचै
अक्खरें साईं सलेटै'रा/पंझोई जाचै।

इक-मिक होई जाने ते अक्खरें साईं सलेटा'रा पझोंई जाने दा प्रसंग अनन्त दी थाह् संदर्भना दा गै प्रसंग होई सकदा ऐ। इक-इक रच इक दे तत्थ दा परिचय 'थैंक्यू माई पैन' दी इ'नें पंक्तियें राहें किन्नी सरलता कन्नै जुटाया गेदा ऐ, दिखदे गै बनदा ऐ -

कु'न ऐ ओह्?
कोह्दे हत्थै दा पैन आं में?
कुस ने मेरे राहें
अपने मनै दियां बारियां खो'ल्लियां न?
ओह् कोई ऐ बी जां
मेरी सोच गै उसदा बजूद ए

'कुप्पड़' नां दी कविता च बी एह् प्रयोग दिक्खपे जोग ऐ -

कदें-कदें विश्वास जागदा
मिी इक दिन हटग ते
मे बादै साह् लैना
एह् मूरत अनघड़ी निं रौह्नी
शैल सनक्खी दिब्ब जोता साईं
लट-लट इसदे रूप ने बलना
जेलै इसी ओह् रूप ऐ थ्होना
तां में इसदे अन्दर होना
अज्ज जियां एह् मेरे अन्दर।

संयोग-वियोग दा चक्कर गै सृष्टि चक्र ऐ, - एहदे च कोई दो राय नेईं। लोड़ ऐ, मात्र जानने-बखानने दी। जानने-बखानने गित्तै कवि प्रयासें दी एह् चर्म सीमा बड़ी दुर्लभ ऐ।

सृश्टि चक्र च संयोग-वियोग दा चमत्कार 'ज्हाजा च बैठे दे बारी चा दिखदे होई' रचना च बरबस गै मूर्तिमान होन

लगदा ऐ -

इसलै बदलें दे बिच्चा
ज्हाज लंघै दा ऐ ते
उनें गी धरती दे प्यारा दा
सनेहा थ्होआ दा ऐ,
में हेठ जाइयै
धरती गी बदलें दे प्यारा दा
सनेहा देङ।

ही संयोग दी हीखी वियोग दे दुख कसालें झल्लना जरूरी होई जंदा ऐ, मजबूरी बनी जंदी ऐ। कदें-कदें सूरज, न्हेरा, गुआची दियां सोचां, तवी कुसा सुरंगा चा होइयै नेईं लंघदी, खजियारा दा टापू, गुनाह्, तेरा मिलना, खड्ड, 'शब्द गौतम ऐ, अर्थ बुद्ध', धुप्प, बूह्टे, सलाखें दे पार, सरकस, लहू दा मोती आदि रचनाएं च इस प्रकरण गी बी बड़ी अनूप समर्था कन्नै यथावत भालेआ-बुज्झेआ गेदा ऐ -

कदें-कदें सूरज
इयां चढ़दा ऐ बदलें दे पिच्छुआं
जियां मुटमरजी कन्नै जागा गरदा जागत
x x x
कदें कदें सूरज/बंसरी च कुरजदे
पंचम सुरा आंगर/निकलदा ऐ
बरिन्दावन दी रचना करदा
गोपियें गी आले दिंदा,
.....

'खड्ड', कविता च इस पैहलू गी दिक्खो -

एह् खड्ड भीष्म पतामां दी
तीरें आली सेज ऐ
जेह्दे उप्पर समें दी सोच
बसुर्त पेई दी ऐ
नेईं हून इसी जगाने दी लोड़ ऐ
लोड़ ऐ इक भुचाल दी

इ'नें सबनें पचीदगियें ते समस्याऐं दे मद्दे-नज़र कवि दी दार्शनिक समर्थ-सम्पन्नता दा कमाल बी अपने थाह्र पेश-पेश ऐ, - 'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर', 'न्हेरे जंगलै च पगडंडी', 'ओ कृष्ण ओ मेरे मन', सार, मोख, भुचाल औने आह्ला ऐ, शब्द, तरसांद, ईश्वर, कार्डलैस, सिलसिला, औंकर, दुई कोई अग्ग, सच्च, दुख आदि रचनाऐं दी भाल-प्रतीत इस संदर्भ च चतेना-संदर्भना बड़ा जरूरी ऐ–

अपने आपै गी में
खलारेआ नेईं, बंडेआ ऐ
शीशे दे भाएं किन्ने टुकड़े होई जान
उन्दे च लब्भने आला अक्स नेईं भजदा
ओह् हर टुकड़े'च

साबत गै रौंह्दा ऐ;

'मोख' कविता च कवि दा एह् द्रिश्टीकोण जीवन दे प्रति बड़ा साफ-सफाफ ऐ। 'शब्द' कविता च इ'नें भाव-बचारें गी बी दिक्खो–

शब्दें च समुन्दरा जिन्ना
असमाना जिन्ना अर्थ भरी ओड़ो
उन्दा आकार/उन्ने दा उन्ना गै रौह्ग
ओह् फुलदे नेईं;
x x x
शब्दें च रंग हुन्दे न/स्पर्श हुन्दे न
खुश्बो हुन्दी ऐ/रंगे च तस्वीरां हुन्दियां न
स्पर्शें च परिचे हुन्दे न
खुश्बोए च साद्दे हुन्दे न

जीवन दी तलखियें दे तकाज़ें प्रति कवि दी एह् स्हाड़-सम्हाल (अ)नेकें शबीलें ते हीले-बसीलें दे राह् रस्ते प्रशस्त करदी ऐ, - इक नमीं चेतना दा मूजब बनदी ऐ।

'दुख' नां दी कविता च एह् मर्म बी खासा जानने बखानने जोग ऐ -

दुख नराश होइयै/जा करदे हे मिगी छोड़ियै
की जे में/खाह्शें दा पीछा करना
छोड़ी ओड़ेआ हा,
चानक उनें पिच्छें मुड़ियै दिक्खेआ
मेरी अक्खीं च अत्थरूं हे
ओह् हरान होए/उनें गी पता नेईं हा जे
माह्नूं दूएं दे दुखा कन्ने बी
दुखी होई सकदा ऐ।

'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर' संग्रैह् च शामल 'गज़लां' जो किश ऐसे गै भाव-छुआलें दी तरजमानी करदियां जो बड़े सैह्ज, सरल अपनेपन कन्नै जीवन दी अथाह् गैह्राइयें थमां उस्सरदे-मठोंदे न -

उड़दी खुश्बू ऐ भाख फुल्लै दी
उसदा मूंह् खोह्लना ऐ चुप्प रौह्ना। (सफा-147)

कुसै अभिव्यक्ति गी खामोशी राहें सम्पन्न करना बड़ा चमत्कारक ऐ, - खूबसूरत बी ते संतोशदायक बी। इस चुनाऽ-सुझाऽ पिच्छें कवि दी साधना बारै किश गलाना, भाएं, नामुमकन नेईं ब कठन जरूर ऐ -

आखर थोड़ी लो ते होई
अपना भाएं फकोआ घर। (सफा-149)

इयां गै इस गज़ल दा बी एह् शेयर नमूने दे तौर पर भाली दिक्खो -

स्वातमै च न पेदे भन्न किन्ने
स्हाड़ी ही बी मजाज बाकी ऐ। (सफा-151)

चुप्प साधना थमां परमानन्द दी प्राप्ति च सराबोर अव्यक्त दी अभिव्यक्ति किन्नी शैल सशक्त होई सकदी ऐ, एह्दा अंदाजा लांदे-होंदे गै बनदा ऐ -

जेह्ड़ियां गल्लां नेईं बलोइयां
ऊयै शैल उनेंगी समझोइयां। (सफा-160)

सच्चाई गी कथना-गलाना मता कठन भाएं नेईं गै होऐ ब मता सैह्ज बी नेईं। इस कथन गी जरा ध्यान देई दिक्खो, एह् बी इक गज़ल दा इक शेयर ऐ -

असेंई खढांदा रेहा सदा ओह्
स्हाड़े हत्थ हा जेह्ड़ा खडौना। (सफा-161)

इ'नें रचनाएं च बिशे-वस्तु दा वैविध्य मजूद ऐ, एह्दे च कोई दो राय नेईं; हर गज़ल च हर शेयर दा अपना सुआत्म ऐ, अपना ख्याल ऐ, - एह्दे च बी कोई दूई राय नेईं; ब इस तत्थ थमां बी इन्कार नेईं कीता जाई सकदा जे हर रचना च कवि दी दार्शनिक पुज्ज पौंह्च सक्षम सूझ-बूझ ते अपार अनुभव मूजब हर बिशे-वस्तु हर ख्याल इक अजीब अनूप प्रस्तुति गी लेइयै सामनै औंदा ऐ। इस प्रस्तुति च परम रहस्य दी थाह् बड़ी स्पश्ट ऐ।

संग्रैह् च शामल नमियां भाखां बी इस गल्लै दा अपवाद नेईं गलाइयां जाई सकदियां -

गुपचुप गुपचुप पुज्जा दे सनेह्
जियां रातीं पौंदी ऐ तरेल
जियां चाननी बड्दी बेह्ड़ै
जियां जंगलें पौंदियां धूरां
जियां फुल्लें चा आयै खुश्बो
कुसै गी नेई लग्गै कनसो
होर निं किश बी इच्छेआ
बस औंदे रौह्न सनेह्
गुपचुप गुपचुप (सफा-166)

संसार दी मिथ्याचारी दा एह् संकेत अवश्यमेव मानस गी अपनी बत्त सधेरने गितै प्रेरदा ऐ। इयै जनेहा इक प्रयोग होर—

दुख बर्हूपियें सुख बनी आए
करी गे स्हाड़े कन्नै छल (सफा-175)

कवि संसारिक व्यवहार दे सतहीपुने गी रज्जियै नकारदा ऐ। अपनी हर रचना च व्यवहारक परिपक्वता पर जोर दिंदा ऐ ते असलियत दी पन्छान-कठेरन गी अपना ध्येऽ बनाई लैंदा ऐ। बिशे, भाषा, कला आदि गित्तै बी अपने प्रयोग -शिल्प दा खासा कमाल प्रस्तुत करदा ऐ। कवि दा काव्य-कौशल बड़ा चबात ऐ ते चतन्न करी देने आह्ला ऐ। भाव-विचार ते कल्पना प्रसार गित्तै बरते गेदे बिम्ब-प्रतिबिम्ब बड़े सशक्त ते रज्जियै प्रभावकारी न। किश इक प्रयोग नमूने दे तौर पर—

मुंडी दा लुआर लक्कै दी लैह्रें ने
भ्याली पान लगा,
अक्खीं दा अशारा हुमकेआ तां
तारे ने चन्नै गी सुआई दित्ती

नर्तक' कविता च नर्तक दे अंग संचालन दी एह् चमत्कारी ब्योरा-प्रस्तुति रोचक बी ऐ ते बेमिसाल बी। काव्य-कौशल दी परकाष्ठा दे किश दरिश्श 'नेहरा' नां दी रचना थमां—

गलियां मोए दे सप्पे आंगर
घर बंद कबरां
हवा भरा करदे बमारा दा साह्,
इस ग्रां दे उप्पर लंघे हे

भावें दी गैह्राई, कल्पना दी कोमलता, प्रतीकें दा सूक्षमपन ते शब्द प्रयोग च संयम-सावधानी दा जो यथार्थ पेश्चा कीता गेदा ऐ, काफी सार्थक ऐ, सफल ऐ। शब्द चुनाऽ च कवि दी परिपक्वता दा लाना 'शब्द' नां दी कविता थमां बख्ऊबी लाया जाई सकदा ऐ–

किन्नें शब्द अर्थें दा भार नेईं होंदे
मतियें बोलियें च इक्कै जनेह् होंदे
उसलै बोलदे जदूं - मां दुद्ध पलेआ दी होंदी ऐ
कोई प्रेमिका प्यार करै दी हुन्दी ऐ
जां कोई माह्नू डुब्बा दा होंदा ऐ
जां जेलै कोई खढारी
गोल करी लैंदा ऐ
जां कोई गायक कोई ऐसा सुर
लांदा ऐ जेह्दे च
उस दी आत्मा होंदी ऐ

कवि चेचे तौर पर उस शब्द दी बी गल्ल करदा ऐ जो मात्र शाशवत अर्थ दा गै परिचायक ऐ, अव्यक्त गी बी व्यक्त करी टकाने दी समर्थ रखदा ऐ। अर्थवान शब्दें सरबंधी कवि दी राऽ ऐ–

अर्थवान शब्दें गी तुस
सलेटा पर लिखियै मस्हाई ओड़ो
उन्दे अर्थ ही बी
बाकी रेही जाङन

अर्थ-समर्था दी द्रिश्टी कन्नै शब्द चुनाऽ सरबंधी कवि दी एह् प्रयोग-शैली सटीक बी ऐ ते अचूक बी–

ओभड़ हत्थें च आइयै
शब्द चूहें आंगर मरदे न
कुत्ते दी मौत बी;

शब्द प्रयोग च शब्दें दे प्रति एह् दुर्लभ संवेदनशीलता कवि सुभाऽ च मजूद कुसै खास चेचगी दा गै मूजब होई सकदा। बेफौंदे भाषाई भारें थमां कवि काफी सचेत ऐ, सर्तक ऐ। संग्रैह् दी हर रचना इसदा मूंह् बोलदा व्यवहारक तौर पर सब्भै प्रयोग बरतूनां बड़ियां न्यासंगत ते जचदियां-बनकदियां न। गल्लै-गल्लै च मर्म गी तलबने-तलाशने दी बेजोड़ हुब्ब कुसै पु संजीदगी-सम्पन्नता दा गै संदर्भ होई सकदा ऐ–

मिगी तू इनें नज़रें कन्नै
नेईं दिक्ख मां।
मेरा सफर इन्ना कठन नेईं बनाऽ
में परतियै औङ
बिंद हस्सियै बरधाऽ

'मां' कविता च मां दी ममता दे अनूठे साक्षात्कार दा एह् प्रसंग कवि दे हिरदे पटल पर केह्-केह् अंकित करी जंदा ऐ - शब्द अवाक् रेही जंदे न, बुहासरनां पस्त होई जंदियां न। मार्मिकता दी इस चर्मसीमा गी छूही निकलने च कवि दा एह् दुसाहस अपनै थाह्र आपूं अपनी मसाल ऐ।

'चुप्प रेहियै प्रार्थना कर' कचितस सग्रैह् च खुश्पा थां-थां, कवि दे काव्य-साधना सिदक मूर्तिमान होई गेदे होन। ए इक ओचन ते अनूठी साहित्यिक कृति ऐ।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

आस्था

डॉ. दीप्ति सुधीरकुमार देशपांडे
आसि. प्रोफ़ेसर,
शेठ श्री गिरधरलाल डी.एल.एड. कालेज, दाहोद
मो. नं. 9429292766

धर्म चाहे कोई भी हो सभी व्यक्ति अपने आराध्य के प्रति काफी भावुक होते है। हमारे संस्कार कहते है कि पूजा करते हुए व्यक्ति के आसपास बातचीत या किसी प्रकार की आवाज नहीं होनी चाहिए। हम खुद पूजा-पाठ करते है या नही वह बाद की बात है पर किसी की पूजा में बाधा उत्पन्न करना पाप समान है। कथा, भजन, सुन्दरकांड आदि धार्मिक कार्यक्रम में जाना आम बात है ज्यादातर व्यक्ति बड़ी भावुकता से कार्यक्रम में हिस्सा लेते है और कुछ 'समय तो नही है पर जाना पड़ेगा' यह सोच लेकर जाते है। अपने अपने आराध्य को याद करना पुण्य का कार्य है। उसमें भी किसी विशेष तरीको से याद करना जो मुश्किलो से भरा हो! ऐसे अड़ग मन के मानवी की डगर कठिन नहीं होती पर उस अड़ग मन वाला मनुष्य दुसरो की डगर कमहीर करे तब परिस्थिति कैसी बनती है इस बात का अंदाजा लगाना कठीन है।

मसहुर व्यंग्यकार परसाईजी ने अपनी एक रचना जिसका नाम देव – भक्ति। जहाँ गणेश विसर्जन के मुद्दों पर काफी नोक-झोक देखने मिली। ब्राह्मण और तेलियो के गणेशजी के विसर्जन पर बहश इतनी बढ़ गई की ब्राह्मण कहने लगे "तेलियो के गणेशजी की ऐसी तैसी'' हमारा गणेश आगे जायेगा स यहाँ भी आस्था विस्फोटक रूप से दिख रही है।

कुछ लोग सिर्फ तकलीफ के वक्त भगवान को याद करते है और कुछ लोग हररोज भगवान को याद करने का कुछ वक्त निकालते है। यहाँ भगवान की पूजा-अर्चना को लेकर बात करने का तात्पर्य यह है कि अपने आराध्य को याद जरूर करना चाहिए लेकिन उसमें रतीभर भी दिखावा नही होना चाहिए। सीधे सीधे कहुँ तो मेरी पुजा ऐसी होनी चाहिये, जो मेरे स्वजनो पर बोझ न बने यह बोझ मानसिक, शारीरिक या आर्थिक कई रूप में हो सकता है। मेरी जानकारी के अनुसार कहुँ तो यह असुविधा भारत में ज्यादातर धर्म को लागू होती है। वैसे तो ये बहुत छोटी सी बात लगती है कई बार सामाजिक तौर पर सरदर्द बन जाती है। जैसे एक करे पूजा दूसरे पाए सजा, हमारी पुजा दुसरो की सजा। इन वाक्यांशों के चलते आप समझ सकते हो की व्यक्ति किस व्यवस्था में रहेगा। व्यक्ति अपने घरमें पूजा-पाठ करे न करे उससे किसी तीसरे को कोई फर्क नही पड़ता किन्तु फर्क तब पड़ता है जब वह अपनी पूजा के तरीको को इतना कठीन दर्शाता है की लोग उसकी पूजा श्रद्धा को लेकर कुतूहल महसूस करे। वैसे तो आजके समय में किसी को कुछ भी कूतूहल नहीं लगता।

"यहाँ पर एक बात की ओर ध्यान दिला देना आवश्यक प्रतीत होता है। साधना के जो तीन अवयव- कर्म, ज्ञान और भक्ति - कहे गए हैं, वे सब काल पाकर दोषग्रस्त हो सकते हैं। 'कर्म' अर्थशून्य विधि विधानों से निकम्मा हो सकता है, 'ज्ञान' रहस्य और गुह्य की भावना से पाखंडपूर्ण हो सकता है और 'भक्ति' इंद्रियोपभोग की वासना से कलुषित हो सकती है। भक्ति की निष्पत्ति श्रद्धा और प्रेम के योग से होती है। जहाँ श्रद्धा या पूज्यबुद्धि का अवयव - जिसका लगाव धर्म से होता है - छोड़कर केवल प्रेम-लक्षणा भक्ति ली जायगी वहाँ वह अवश्य विलासिता से ग्रस्त हो जायेगी।"

अब हम मुख्य बात पर आकर देखते है आखिर हुआ क्या? हमारे जीवन में यह आम बात है कि कुछ परिचित से हम आये दिन मिलते-जुलते है उनका रोजबरोज का व्यवहार हम भली-भाती समझते है उनके तौर-तरीकों में कुछ भारी-भरखम बदलाव या अजीबो-गरीब परिवर्तन नजर आये इसे हम अनदेखा नहीं कर सकते। यह परिवर्तन हमारे एक करीबी में हमे दिखने को मिला पर उनमें यह परिवर्तन आने की वजह कुछ विचित्र थी। विचित्र इस लिए की वह कीसी अपनो के कारण तकलिफ मे थे। उनकी हड़बड़ी देखकर सभी को कूतूहल जागा। कुछ बड़बड़ाते हुए वह अपने कार्य में व्यस्त होने का दिखावा कर रहे थे, पर एक भी काम में उनका मन लग नहीं रहा। वैसे तो सभी जानते थे की ये हड़बड़ी किस बात को लेकर है वह जल्द ही जाहिर हो जायगी और हमारा अंदाजा सही साबित हुआ। प्राथमिक जानकारी प्राप्त हुई की उनके किसी करीबी ने कठीन उपवास रखे। अपने आराध्य को रीसाने हेतु अपने शरीर को कष्ट पहुँचा रहे है यानी कुछ दिनों से अन्न का त्याग किया है। यह उनकी अपने आराध्य प्रति कुछ विशेष प्रकार की आस्था होगी। उनके यह कार्य की सराहना करने दोस्त, रिश्तेदार, समाज आधी पहुँच गये। कुछ व्यक्ति सच्चे मन से उन्हें प्रोत्साहित करने लगे तो कुछ उनके कक्ष से बाहर आते ही धीमे स्वर में कहने लगे श्अपनी आस्था अपने तक ही रखो दूसरो का समय नष्ट क्यो करनाश वैसे बात में दम तो है। कही कही तो आस्था का स्वरूप ही बदल जाता है प्रमचंद कृत कर्मभूमि में ब्रह्मचारीजी कुछ भक्तो को दृष्ट कहते है वे दरवज्जे पर बैठकर भगवान् की कथा सुनते थे। "ब्रह्मचारीजी परशुराम की भाति विकराल रूप दिखाकर बोले– तुम तो बाबूजी, अन्धेर करते हो : सासतर में कहाँ लिखा है कि अन्त्यजो को मंदिर में आने दिया जाय?'' इस बात को नकारते हुए शान्तिकुमार कहते है हमारे शास्त्र में तो यह लिखा है कि भगवान् की द्रष्टि में न कोई छोटा है न बड़ा, न कोई शुद्ध और न कोई अशुद्ध। उसकी गोद सबके लिए खुली है।" यहाँ कुछ लोगो को मंदिर में जाने की अनुमति नहीं है। फिर एक बार अपने उस व्यक्ति के लिए बात कर रहे है कि जो अपने आराध्य को रिझाने का ढिंढोरा पीटे यह सही नहीं है क्योंकि उनको प्रोत्साहित करनेवाले परिचित बड़ी मुश्किल से कई काम छोड़कर उनके उपवास की सराहना करने आये है यह शायद उन्हें ज्ञात ही नहीं है। कहने का हेतु यह है की अपने आराध्य के प्रति अपनी आस्था परिचितो पर बोझ बनती नजर आये तब उपवास पर बैठना बंद करो या ढिंढोरा पिटना बंद करो।

सन्दर्भ सूचि

1. परसाई रचनावली खण्ड – 2 पृ. 333
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 42
3. प्रेमचंद कर्मभूमि भाग – 1 पृ. 167

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री विमर्श

डॉ. नरेन्द्र कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
रितेश कुमार
शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

शोध-सारः- भोजपुरी लोकगीतों में भोजपुरी समाज के साथ-साथ स्त्रियों के विविध रूपों का चित्रण दिखाई देता हैं, चूँकि लोकगीतों की संरक्षक और संवाहक स्त्रियाँ हैं, इसीलिए लोकगीतों में ही उनके अंतःमन की वास्तविक अभिव्यक्ति हैं। लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियों ने अपने सुख-दुःख को सरल शब्दों में गेय रूप में प्रकट किया हैं। भोजपुरी समाज में हमेशा से पर्देदारी रही हैं, जिसके कारण स्त्रियों को हमेशा कष्टों का सामना करना पड़ा हैं, कभी समाज के स्तर पर तो कभी परिवार के स्तर पर, स्त्रियों को कभी भी उनके हिस्से का वो मान-सम्मान नहीं मिला, जिसकी वो हकदार हैं। लोकगीतों में उनकी विभिन्न स्थितियों का विवरण मिलता हैं, जिसमें उन्हें कभी पुत्री को जन्म देने के कारण, कभी दहेज के कारण तो कभी पति के परदेश चले जाने या मर जाने के कारण अपमान एवं निर्वसन का दुःख सहना पड़ता हैं। भले ही भोजपुरी लोकगीतों में स्त्रियों के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया हैं परन्तु उपन्यास तथा नाटकों की भांति, किसी पात्र का सांगोपांग वर्णन हमें लोकगीतों में दिखाई नहीं देता हैं। परन्तु फिर भी भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री-जीवन की सम्पूर्ण कथा विद्यमान हैं। स्त्री द्वारा जीवन में अनुभव किये गये हर दुःख-दर्द, हँसी--उल्लास का उल्लेख लोकगीतों में दिखाई देता हैं। अतः कहा जा सकता हैं कि लोकगीत स्त्री जीवन को समझने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम है, जिसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता दिखाई नहीं देती हैं।

बीज शब्द- लोक, लोकगीत, सऊर, खुखुड़ी, मुंगरी, बाझिन, भसुर, दहेज, विमर्श, स्त्री-स्वर, भोजपुरी, विचार अभिव्यक्ति, लोकाचार।

मूल आलेखः- लोकगीत मानव जीवन के सुख-दुःख की सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है, उनमे वेदना और विवशता के साथ ही लोक जीवन की शक्ति, उल्लास और उसके दुःख की निश्छल और अकृत्रिम अभिव्यक्ति होती है। लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न होकर नगरो व् गावों में फैली उस समूची जनता से है जो परिष्कृत, रूचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है।[1]

लोकगीत मानव जीवन का अभिन्न अंग है। हर्ष, विषाद का कोई भी अवसर हो लोकगीत अनायास मुँह से निकल पड़ता है। किसी अपने करीबी के मृत्यु से जब स्त्री हृदय को आघात लगता है तो उसके मुख से विलाप का जो स्वर फूटता है वह भी गीतमय होता है। लोकगीतों की यह विशेषता होती है कि जीवन के रागद्वेष शादी-विवाह, आमोद-प्रमोद, जीवन-मरण आदि सभी अवसरों पर उसका उपयोग किया जाता है। हमारे जीवन का कोई भी ऐसा सुखद अवसर नहीं है, जिसका आदि तथा अंत गीतों के गायन से न होता हो। मानव का जन्म गीतों के झूलने, पालने में होता है, उसकी जवानी गीतों से बढ़ती

है, उसका बुढ़ापा गीतों की गंभीरता से डूबता है और उसके जीवन की समाप्ति गीतों के करुण रस के साथ होती है।

भोजपुरी लोकगीत के सन्दर्भ में विचार व्यक्त करते हुए भोजपुरी की प्रख्यात लेखिका डॉ. राजेश्वरी शांडिल्य लिखती है कि- "लोकगीत साहित्य क एगो उपयोगी विधा है, साहित्य मतिन एकर रचना 'स्वान्तः सुखाय' ना होले। लोकगीत के रचना के पहिले गीतकार अपना विषय, विम्ब प्रतीक, भाषा आदि पर बहुत माथापच्ची करेला तब जाके एगो गीत बनेले। एह्गीत में एगो लक्ष्य होला, एगो विषय होला, एगो समाज होला, आ एगो सन्देश होला। लोकगीत के प्रयोजनमूलक साहित्य कहल जाला।[2]

श्यामचरण दूबे के अनुसार- "लोकगीत स्वता स्फूर्त प्राकृतिक काव्य के अंग है"।[3]

उपर्युक्त कथनों से हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि लोकगीत आम जनमानस के अंतःमन की आवाज है।

लोकगीतों को सहेजने और संवारने का कार्य तथा उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानांतरित करने का महत्वपूर्ण कार्य महिलाओं ने किया है। लोक साहित्य की रक्षक और संवाहक महिलायें ही है, इसीलिए महिलाओं के अंतःमन की वास्तविक और सहज अभिव्यक्ति हमें लोकगीतों में दिखाई देती है। भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री जीवन की सम्पूर्ण कथा होती है। स्त्री द्वारा अनुभूत जीवन के हर दुःख-दर्द, हँसी-उल्लास का उल्लेख इन लोकगीतों में सहज ही मिल जाता है। स्त्री जो भी खुशी या गम जीवन में महसूस करती है, उसे गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति करती है, लोकगीत उसकी शाश्वत संपत्ति है। इसीलिए जार्ज ग्रियर्सन ने- "महिलाओं को लोकगीतों का महान संरक्षक कहा हैं"।[4]

भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज हैं, जिसके कारण स्त्री को अपने जीवन में अनेक प्रकार के अपमान और पीड़ा को सहन करना पड़ता हैं। एक स्त्री पुरुष का पिता, पति, भाई, ससुर अनेक रूपों में सम्मान करती हैं, परन्तु समाज तथा परिवार ने उसे उसके हक के सम्मान से सदा वंचित रखा। परिवार तथा समाज के हर स्तर पर उसे शोषण तथा बहिष्कार का सामना करना पड़ा। स्त्री ने अपनी जिम्मेदारियों का निष्ठापूर्वक पालन किया परन्तु उसे फिर भी प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा, सामान्य स्त्री तो दूर इस समाज ने माता सीता तक को अपमानित किया है। स्त्रियों से समय-समय पर पुरुषों द्वारा परीक्षाएं ली गई हैं, इस घोर अपमान और निराशा को जो स्त्रियों ने जिया हैं, उसका मार्मिक चित्रण लोकगीतों में दिखाई देता हैं।

भोजपुरी समाज में पुत्री का जन्म लेना ही दोष समझा जाता हैं, जो हर्ष और उल्लास हमें पुत्र के जन्म के समय दिखाई देता हैं वह बेटियों के जन्म के समय दिखाई नहीं देता हैं। जब किसी के घर लड़की का जन्म होता हैं तो तो पूरे परिवार में निराशा छा जाती हैं, लड़की को जन्म देने वाली माँ को अपमान और ताना सुनना पड़ता हैं। जबकि उसी परिवार में लड़के को जन्म देने वाली स्त्री को सास-ससुर, पति सबके द्वारा सम्मान व् प्यार दिया जाता हैं। लड़की को जन्म देते ही एक स्त्री के सारे सुख, दुःख में बदल जाते हैं, इसी पीड़ा से व्यथित होकर एक स्त्री कहती हैं–

किरियां बुरी जामें उपजें धान
कुखियाँ बुरी जामें उपजें बिटियाँ हो रम्मा
घर अँधियारों बाहर अँधियारों
भई बज्जुर की रात हो रम्मा
सासु हमारी झुर-झुर बोलें
जो दुःख सहो न जाय हो रम्मा
घरई के राजा मोसे मुखई न बोलें
जौ दुःख सहो न जाय हो रम्मा।[5]

भोजपुरी समाज में पुत्र तथा पुत्री के जन्म के अवसर पर माँ के साथ खान-पान, वेश-भूषा में भेदभाव किया जाता हैं। पुत्र को जन्म देने पर उसे पहनने के लिए अच्छे कपड़े तथा ओढ़ने के लिए शाल दिया जाता हैं, वही पुत्री को जन्म को जन्म देने पर उसे कुश की घास पर ही सोना पड़ता हैं तथा ओढ़ने के लिए फटें-पुराने कपड़े दिए जाते हैं। सऊर वाले कमरे के समीप चन्दन की जगह उसे पसंगी में जलाने के लिए खुखुड़ी (दाने से रहित सूखा भुट्टा) दी जाती हैं। सऊर भोजपुरी समाज

में, स्त्री जिस कमरे में बच्चे को जन्म देती हैं उसे कहा जाता हैं, शुरुआत के कुछ दिन माँ-बच्चे उसी कमरे में रहतें हैं। इस कष्टकारी दशा की ओर संकेत करते हुए एक स्त्री कहती हैं कि पुत्री के जन्म के अवसर पर मेरा हृदय उसी प्रकार कांपने लगता हैं जिस प्रकार हवा चलने पर तालाब में पुरइन का पत्ता कांपता हैं। इसी दुर्दशा का वर्णन निम्नलिखित गीत में मिलता हैं–

साल ओढ़न साल आसन, मेवा फल भोजन रे।
ए ललना चन्दन के जरेला पसंगियां निनरि भल आवेला।
जइसन दह में के पुरइन दह बीच काँपेले रे।
ए ललना ओइसन काँपेले, हमरा हरी जी धिया का जनम लेले रे।
कुस ओढ़न, कुस आसन, वन फल भोजन रे।
ए ललना खुखुड़ी के जरेला पसंगिया निनरियो ना आवेला रे।[6]

वैसे तो पुत्री के जन्म का स्वागत इस समाज में कभी नहीं किया गया, परन्तु यदि किसी स्त्री के प्रथम संतान के रूप में लड़की पैदा हो जाये तो परिवार जन घोर अवसाद में चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में माँ सोचती है कि या तो लड़की पैदा ही न होती या कोख में ही मर गयी होती तो अच्छा होता। निम्नलिखित गीत में एक माँ कहती हैं कि यदि मैं जानती कि मुझे लड़की पैदा होने वाली है तो मैं काली मिर्च पीसकर पी लेती, जिससे यह लड़की जन्म लेने से पहले मर जाती, जिससे मैं इस प्रकार के कष्ट से मुक्त हो जाती–

जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहें,
पिहिती मैं मरिच झराई रे।
मरिचि के झाकु झुके धिअवा मरि रे जाईति,
छूटि जइते गरुवा संताप रे।[7]

स्त्री को अपने जीवन में हर कदम बड़ी ही सावधानी से रखना पड़ता हैं, छोटी सी गलती भी उसके लिए अपमान व् प्रताड़ना का कारण बन जाती हैं। निम्नलिखित गीत में इस बात का विवरण मिलता है कि एक स्त्री की झुलनी खो जाने पर किस प्रकार उसकी सास उसे गालियाँ देती हैं, ननद उसे छड़ी से मारती हैं तथा उसका पति मुंगरी से मारता हैं। मुंगरी भोजपुरी समाज में मिट्टी समतल करने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला लकड़ी का औजार हैं–

सासु मारे हुदुका, ननद मारे पटुका
सइयां मारे मुंगरी के मारि हो।[8]

इस पुरुष प्रधान समाज ने किसी को नहीं छोड़ा हैं, आज्ञाकारी, पतिव्रता स्त्रियाँ भी अपमान व प्रताड़ना का शिकार हुई हैं। महाभारत में आज्ञाकारी द्रौपदी ने अपनी सास कुंती के कहने पर पांच पुरुषों को अपने पति के रूप में स्वीकार किया, उनके हर आदेश का पालन किया, सबका सम्मान किया तथा सबके प्रति समर्पित रही, बदले में उसे भी अपमान ही मिला, अपने पतियों के द्वारा किसी वस्तु की भाँति जुए में हार दी गई, भरी सभा में उसका अपमान हुआ। हस्तिनापुर राजसिंहासन के सामने जब कुलवधु का चीरहरण किया जा रहा था तो वह उस समय वहां उपस्थित सभी विद्वानों, वृद्धजनो एवं कुल के सारे लोगो से प्रश्न पूछती हैं कि यदि आप में से किसी की बहन या बहू होती तो क्या आप ऐसे ही उसका चीरहरण होते देखते रहते, लेकिन कोई भी उसका उत्तर देने कि हिम्मत नहीं जुटा सका। निम्नलिखित लोकगीत इसी का वर्णन करता हैं–

आपन बहिन होत चाहे बहुआरि होत,
असही उघार होत का तबउ सहतउ।
बेटी महतारी होत, परबस नारी होत,
का तबउ सब जन आस मौन रहतउ।[9]

भारतीय समाज में किसी स्त्री का जीवन तब ही परिपूर्ण माना जाता हैं, जब वह माँ बनती हैं। विवाहिता स्त्री के लिए

तो यह अनिवार्य शर्त है कि वह बच्चे को जन्म दे, ऐसी स्थिति में यदि कोई स्त्री बच्चा पैदा करने में असमर्थ हो तो उसे अत्यधिक तिरस्कार एवं बहिष्कार का सामना करना पड़ता हैं। भोजपुरी समाज में ऐसी स्त्रियों को 'बाझिन' कहकर पुकारा जाता हैं, जो बच्चा पैदा न कर सकने वाली स्त्रियों के लिए गाली कि तरह प्रयोग किया जाता हैं। समाज में उनको हेय दृष्टि से देखा जाता हैं, उनका दर्शन भी अपशकुन माना जाता है। बाझिन स्त्री समाज में कलंक मानी जाती हैं, वह इस अपमान में जलती रहती हैं, एक बाझिन स्त्री के दर्द को निम्नलिखित गीत में देखा जा सकता हैं

जइसन बन में कोइलरी बन ही बन कहुके ले हो,
राम हो ओइसे कुहुके हमार त एकरे बालक बिनु रे।
जईसे बोरसी के अगीया धीरे-धीरे तलफे ले हों,
राम हो ओइसे जियरा तलफे हमार त एकरे बालक बिनुरे।[10]

स्त्री के संतानहीन होने के कारण पति भी पत्नी से दूर होने लगता हैं, उसको अपमानित करने लगता हैं, परिवार के सभी सदस्य उसका तिरस्कार करते हैं। परिवार के प्रत्येक सदस्य के द्वारा अपमानित होने के कारण विवश होकर वह बाहर वन में जाकर बाघिन, साँप, पृथ्वी से अनुरोध करती हैं कि वे उसके जीवन को समाप्त कर दे। संतानहीनता के दुःख को इससे समझा सकता हैं कि बन्ध्या होने के कारण न बाघिन उसका भक्षण करने को, नागिन उसको डसने को तथा पृथ्वी अपने भीतर स्थान देने को स्वीकार करती हैं। वह सभी से निवेदन करती हैं, परन्तु सभी अस्वीकार कर देते हैं। सभी उसे यही उत्तर देते हैं कि तुम्हे खा लेने, डस लेने अथवा अपने भीतर स्थान देने से तुम्हारी छूत हमें भी लग जायेगी और हम सब भी बन्ध्या हो जायेंगी। इस प्रकार के बहिष्कार का सामना एक संतान हीन स्त्री को करना पड़ता हैं, जो निम्नलिखित लोकगीत में प्रस्तुत हैं–

बाघिन हमका जो तू खाई लेतिऊ, तू विपति से हम छूटित हो,
बाँझिन तुमका जो हम खाइलेबि, हमहूँ बाझिन होइब हो।
नागिन हमका जो तुम डँसि लेतिउ, विपति से हम छूटित हो,
बाँझिन तुमका जो हम डँसि लेबि, हमहूँ बाझिन होइब हो।
धरती तुमही सरन अब देहु, बाँझिन नाम छुटइ हो,
बाँझिन तोहका जो हम रखि लेब, हमहूँ होइब उसर हो।[11]

इसी प्रकार परिवार एवं गाँव के लोगों के द्वारा बाझिन कहने तथा लोगों द्वारा लगतार अपमानित होते रहने के कारण एक स्त्री मृत्यु को स्वीकारने के लिए तैयार हो जाती हैं। उसकी पीड़ा को निम्नलिखित गीत में दर्ज किया गया हैं–

अस मन करे मइया, जहरवा खाइ मरितो हों
एक मन करे मइया, अगिनिया में जरि हो जाऊं।[12]

स्त्रियाँ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए व्रत आदि रखती हैं, स्त्रियाँ बाँझ रूपी कलंक को धोने के लिए सूर्य षष्ठी का व्रत रखती हैं जिससे उन्हें पुत्र की प्राप्ति हो, अपने संतान हीनता के दुःख को सुनाते हुए वह भगवान् सूर्य से पुत्र की याचना करती हैं। सूर्यदेव उसकी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं–

नहाई धोई जब ठाढ़ी भई सुरुज मनावई
ए मोरे सुरुज, हम पर होऊ दयाल
सजन बोली बोलई,
सुरुज मनावइ न पाँयऊ हरिल भुँई लोटइ
बाजै लागी आनन्द बधाई गाउँ सखि सोहर हो।[13]

स्त्रियों को पारिवारिक स्तर पर भी शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ता हैं, उसका शोषण परिवार तथा समाज में कई स्तरों पर कई प्रकार से होता हैं। किसी स्त्री के पति का बड़ा भाई जिसे भोजपुरी समाज में 'भसुर' कहा जाता हैं, जिसका

अपने छोटे भाई की पत्नी अर्थात 'भवहि' को छूना तो दूर देखना भी पाप समझा जाता हैं, वह भी उस बुरी नजर डालता हैं। एक भोजपुरी लोकगीत में यह वर्णन मिलता है कि जब एक स्त्री पानी भरने के लिए कुएं पर जाती है तो उसका भसुर उसका रास्ता रोक लेता हैं, जब वह उससे रास्ता मांगती हैं तो भसुर उसे अपना चादर देता हैं, परन्तु वह पतिव्रता 'जिरवा' नामक स्त्री चादर लेने से इनकार कर देती हैं, जिसके विरोध कि अभिव्यक्ति निम्न हैं–

पानी के पियासल जिरवा गइली पनि घटवा रे,
घर के भसुरवा, बटिया रोके ले नु रे जी।
छोडु-छोडु भसुरवा से मोर पनिघटवा रे,
बरसेला पनिया भीजेला मोर चुनरिया नु रे जी।
जऊ तोर जीवा रे भींजेले चुनरिया रे,
हमरो दुपटवा ओढ़ि लेवहु नु रे जी।
तोहरा दुपटवा भसुर आगि लगाइबि,
हमरी चुनरिया सीतल बयरिया नु रेजी।[14]

स्त्री के चरित्र पर हमेशा संदेह किया गया हैं, उसे कदम-कदम पर अपने सतचरित्रता का प्रमाण देना पड़ा हैं। परिवार में सास के द्वारा अक्सर उसे नैतिक दृष्टि से पतित साबित करने का प्रयास किया जाता हैं। सास उसे शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करती रहती हैं। गमी के दिन में एक बहू पंखा झल रही होती हैं, पंखे की ठंडी हवा के कारण उसे नींद आ गयी, इतने में उसकी सास उसे देख ली और इसके कारण उसे इतना क्रोध आया कि वह बहू को बापदृभाई की गालियाँ देने लगी, इस तरह की घटनायें भोजपुरी समाज आये दिन घटित होती रहती हैं–

बेनिया डोलावत अइले सुख निदिया,
आरे परि गइले सासु के नजरिया हो राम।
बाबा खाँऊ, मइया खाँऊ तोहरी बहुअवा,
आरे कवने रसिकवा बेनिया भेजेले हो राम।[15]

दहेज की कुरीति प्राचीन काल से आज तक भारतीय समाज का कोढ़ बनी हुई है, भोजपुरी समाज में यह और अधिक विकराल रूप में व्याप्त है। लड़की के जन्म से ही पिता उसके लिए दहेज इकट्ठा करना शुरू कर देता है। आज हम इक्कीसवीं सदीं में पहुंच गए हैं, मनुष्य ने वैज्ञानिक उन्नति कर ली है, परन्तु दहेज की समस्या देश में जस की तस बनी हुई है। भोजपुरी समाज दहेज की कुरीति से सर्वाधिक पीड़ित हैं, जिसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव लडकियों के जीवन पर पड़ा हैं। दहेज के कारण ही कितनी लड़कियों को जन्म से पूर्व, कोख में ही मार दिया जाता है। विवाह के उपरांत भी लड़कियों को दहेज के लिए प्रताड़ित किया जाता है, दहेज के लिए लड़कियों की हत्या तक हो जाती है। दहेज के कारण बेटियां परिवार पर बोझ की तरह हो जाती हैं, जिसके कारण लोकगीत भी इससे अछूते नहीं हैं–

कवन बेदरदी दहेजवा चलावल, गरद होइ गइले देशवा।
कि हाय सीता राम भजो, एही रे दहेजवा के कारण केतना।
बसल उजरि गइले घरवा, जेकरा ही घरवा मे चुहिया रेंगत बाटे।
ओकर सुनीले मोलाइ, बीस हजार जब नगद में पाइब।
तब करवो बेटा के सगाई, दान दहेज बन्द कर।
बेटिहा केकरा ना उधारी, एही रे दहेजवा के कारन केतना।
घूमेली बिटिया कुँआरी कि हाय।[16]

दहेज के कारण एक बेटी का पिता हमेशा चिंतित रहता है, दहेज के कारण कितने लोगों को अपनी बेटियों का विवाह करने के लिए अपने खेत-खलिहान, जानवर बेचने पड़ जाते हैं, फिर भी लड़के वालों की मांग को वे पूरा नहीं कर पाते हैं।

बेटी को दहेज देने के लिए वह सारा सामान इकट्ठा करते हैं, फिर भी वे चौन से सो नहीं पाते हैं, जब तक कि उनकी बेटी का विवाह कुशलता पूर्वक संपन्न नहीं हो जाता है। आज कल लड़कियां इसके प्रति जागरूक हो रही है तथा वे नौकरी आदि करने के लिए संघर्ष कर रही हैं, जिससे बदलाव की थोड़ी उम्मीद दिखती है–

करजा मे डूबल बाबू के इजतिया
कहाँ से दीहे टी०बी० हे मोर सखिया।
खेतवा बिका गइल अउरो
दहेजवा नाही पूरल हे मोर सखिया।
अगिया लगइबो हम अइसन रिवजवा
चाकरिया करि जीयब हे मोर सखिया।[17]

भोजपुरी लोकगीतों में पति-पत्नी के मधुर संबंधों का वर्णन भी बहुत सलीके से किया गया है। उपर्युक्त तमाम कुरूतियों के बावजूद भोजपुरी लोक साहित्य श्रृंगार रस से भरे पड़े हैं, भोजपुरी समाज में पर्देदारी बहुत है, जो लोकगीतों में भी दिखाई देती हैं। पति सबके सामने पत्नी से बात करने में भी हिचकता हैं। निम्नलिखित सोहर में बहुत ही सलीके से, मर्यादित ढंग से एक स्त्री सास -ननद के सामने सहवास कि इच्छा को व्यक्त कर रही हैं, इस मर्यादित ढंग के कारण सास-ननद भी उसमे सहयोग कर रही हैं। बेटे का जन्म भी हो जा रहा हैं, लेकिन कही भी फूहड़पन नहीं हैं, इतना साफदृसुथरे तरीके से भाव प्रकटन भोजपुरी लोकगीतों में ही मिलता हैं–

ओबरी में बईठल बहुववा, त सासु से अरज करे हो।
ए सासु पटवा में काट ना झरोखवा, जेवत पिया देखब हो।
सासु जे बोलहिं के रहली, ननद जे बोलेली हो।
ए भऊजी दूवरे से ले आव ना पलंगिया, सोवत पिया देख ना हो।
आठ ही मास जब बितल, नउवां मास चढ़े ला हो।
ललना बाजे लागल आनंद बधाव, महलिया उठे "सोहर हो।[18]

भोजपुरी लोकगीतों में पतिव्रता स्त्रियों का जिक्र मिलता है, जिन्होंने अपने पति के साथ पूरी ईमानदारी से अपने रिश्तों को निभाया है, उन्होंने बड़ी-बड़ी कुर्बानियां देकर अपने सतीत्व की रक्षा की है। ऐसा निश्छल और निस्वार्थ प्रेम हमें भोजपुरी समाज में ही देखने को मिलता है। प्रस्तुत गीत में एक राजकुमार, एक 'लचिया' नामक स्त्री के सौंदर्य पर मोहित हो जाता है और वह उसे पाने के लिए अनेक प्रकार का प्रलोभन देता है, परंतु वह स्त्री विचलित नहीं होती हैं, वह उस राजकुमार से कहती है– "हे राजकुमार! तुम मुझे इतना लालच क्यों दे रहे हो, मेरा पति तुमसे ज्यादा सुंदर है, उसका नया जूता चरर-मरर करता है, उसके पैरों की एड़ी दर्पण के समान स्वच्छ हैं"–

जो हम चली राजा तोहरे गोहनवा रे ना,
राजा तोरे ले सुन्दर मोर बिअहुआ रे ना।
जे के चरर-मरर करे जूतवा रे ना,
जे के एड़िया बरन दरपनवां रे ना।[19]

इसी प्रकार पत्नीव्रता पुरुषों की चर्चा भी भोजपुरी लोकगीतों में दिखाई देती है, एक पति जो अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता है उसे, उससे बिछड़ जाने या उसके मायके चले जाने पर वह फूट-फूट कर रोता है, अपनी पत्नी से ऐसे अगाध प्रेम करने वाले पतियों की सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्ति भोजपुरी लोकगीतों में दिखाई देती है, जो पति-पत्नी के मधुर संबंधों का विवरण देती है–

गोरिया चलेले नइहरवा, बलमु अचरा धइ के रोए।
बाग मे रोए, बगइचा मे रोए, गुलरी के पेड़ तर रोए,

बलमु सुसुकी धइ के रोए।
दुअरा प रोए, दलनिया प रोए, चउकी पर मूड़ी धइ के रोए, बलमु सुसुकी धइ के रोए।
सेज प रोए, पलंगिया प रोए, खटिया के पाटी धइ के रोए, बलमु सुसुकी धइ रोए।[20]

निष्कर्ष

अंततः हम कह सकते हैं कि भोजपुरी लोकगीतों में स्त्रियों का मार्मिक चित्रण हुआ हैं, जो अनेक स्तरों पर पीड़ित तथा बहिष्कृत हैं, इसीलिए लोकगीतों में भी वह उसी रूप में प्रकट होती हैं। भोजपुरी लोकगीतों स्त्रियों का चित्रण डरी, सहमी, उपेक्षित स्त्री के रूप में हुआ हैं। भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री प्रतिरोध के स्वर नाम मात्र के दिखाई देते हैं। स्त्रियाँ जन्म से लेकर मृत्यु तक अपने जीवन के लिए, मान, सम्मान के लिए लगातार संघर्ष करती दिखाई देती हैं। भोजपुरी समाज अनेक बुराइयों से ग्रसित हैं, जिसकी सर्वाधिक भुक्तभोगी स्त्रियाँ हैं, परन्तु कुछ जगह पतिदृपत्नी के मधुर संबंधो का विवरण लोकगीतों में दिखाई देता हैं, परन्तु ये ज्यादातर अपवाद स्वरूप हैं, क्योंकि महिलाओं कि स्थिति जस कि तस बनी हुई हैं, जिसमे अनेक स्तरों पर सुधार के लिए निरंतर प्रयास जारी हैं।

सन्दर्भ

1. डॉ. शीला मिश्रा, भोजपुरी लोकगीतों में नारी संवेदना, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज, 2022, पृ०-14
2. डॉ. राजेश्वरी शांडिल्य, एगो भोजपुरी ओकर कई गो नॉव-गाँव, भोजपुरी संस्थान पटना, 2007, पृ०-43
3. श्यामचरण दूबे, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1960, पृ०-166
4. ब्रजरतन जोशी (सं०), मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, वर्ष-62, अंक-4, 2022, पृ०-64
5. डॉ. कपिल तिवारी (सं०), चौमासा, आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, अंक -67, 2005, पृ०-75
6. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत, भाग-1, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, सं० 2000 वि०, पृ०-125
7. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत, भाग-2, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, सं० 2023 वि०, पृ०-13
8. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, मानमन्दिर, वाराणसी, 1960, पृ०-240
9. चंद्रशेखर मिश्र, द्रौपदी, विद्या प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी, 1982, पृ०-59
10. डॉ. राजेश्वरी शांडिल्य, भोजपुरी लोकगीतों के बहुआयाम, राजश्री प्रकाशन, लखनऊ, 2006, पृ०-107
11. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत, भाग-1, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, सं० 2000 वि०, पृ०-350
12. वही, पृ०-354
13. डॉ. शान्ती जैन, चौमासा, आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, अंक-67, 2005, पृ०-35
14. दुर्गाशंकर सिंह, भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, 1964, पृ०-193
15. डॉ. रविशंकर उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, कला प्रकाशन, वाराणसी, 1984, पृ०-87
16. डॉ. शीला मिश्रा, भोजपुरी लोकगीतों में नारी संवेदना, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज, 2022, पृ०-121
17. वही, पृ०-123
18. डॉ. मीरा सिंह, भोजपुरी लोकगीत, 'सोहर' और 'खेलौना' में सामाजिक चेतना, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज, 2022, पृ०-37
19. रामनरेश त्रिपाठी, कविता-कौमुदी (भाग-पांच) ग्रामगीत, हिन्दी मंदिर, प्रयाग, 1986, पृ०-387
20. डॉ. विद्यानिवास मिश्र, वाचिक कविता, भोजपुरी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003, पृ०-44

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Evolution of Women's Monastic Tradition In Ramakrishna Mission

Prof. Dheeraj Kumar Choudhary
Professor, Dept. of Med. & Mod. History, ISDC, University of Allahabad, Prayagraj
Samiksha Rai
Research Scholar, Dept. of Med. & Mod. History, ISDC, University of Allahabad, Prayagraj

Abstract:

The emergence of a women's monastic tradition in the Ramakrishna movement represents an important development in modern Hindu religious history. Inspired by Sri Ramakrishna, Sri Sarada Devi, and Swami Vivekananda, this tradition sought to create opportunities for women to pursue spiritual realization, disciplined renunciation, education, and social service. Its institutional expression took shape in Sri Sarada Math and the Ramakrishna Sarada Mission, which developed as women-led organizations following ideals parallel to those of the Ramakrishna Math and Ramakrishna Mission. This paper examines the historical background, foundations, institutional development, and social significance of this new tradition.

Keywords: Sri Sarada Math, Ramakrishna movement, women's monasticism, Sarada Devi, Swami Vivekananda, Hindu women, renunciation, service.

Introduction:

Religious monasticism in India has a long and complex history. Although women renunciants existed in different periods of Hindu history, organized and autonomous institutions for women remained comparatively uncommon. In nineteenth- and early twentieth-century India, social restrictions often limited women's access to formal education, religious study, public leadership, and independent spiritual careers.

The Ramakrishna movement introduced a modern interpretation of Hindu monasticism based on both personal spiritual realization and service to humanity. Swami Vivekananda envisioned a separate institution where women could receive training in spiritual disciplines and serve society. This vision eventually resulted in Sri Sarada Math, an independent women's monastic organization established at Dakshineswar. The institution follows ideals parallel to those of the Ramakrishna Order while being governed by women themselves.

Swami Vivekananda regarded the neglect of the masses and neglect of women as the two main causes for the downfall of India. He believed that the life and message of Holy Mother Sri Sarada Devi had great significance for the uplift of women. In one of his letters to a brother monk,

Swamiji wrote: *'Mother has been born to revive that wonderful Shakti in India; and making her the nucleus, once more will Gargis and Maitreyis be born into the world.'* On several occasions he expressed the wish to have a separate women's monastic order on the lines of Ramakrishna Math, with the Holy Mother as its ideal and inspiration.

Swamiji's wish came to be fulfilled nearly half a century later. As per the decision taken by the Trustees of Ramakrishna Math, a group of women, who had been leading a life of renunciation and service for several years, were given the vows of Brahmacharya at Belur Math on 27 December 1953, the sacred birthday of Sri Sarada Devi, which was also the day of inauguration of the year-long celebration of the Birth Centenary of Holy Mother. On 2 December 1954 a new monastic order for women, known as Sri Sarada Math, was started at a place on the eastern bank of the Ganga, a little away from Dakshineswar Kali Temple. On 1 January 1959, on the birthday of Holy Mother, eight senior members of Sri Sarada Math were ordained Sannyasinis at Belur Math. [1]

Before understanding the origin and history of Sri Sarda Math and Ramakrishna Sarada Mission, it is essential to remember the founding and development of the Ramakrishna Order, because the above-mentioned organisations are the counterparts of the Ramakrishna Math and the Ramakrishna Mission. The person who played the pivotal role in establishing this Order for both men and women was Swami Vivekananda.

Historical Background:

The Ramakrishna movement developed around the life and teachings of Sri Ramakrishna Paramahamsa, who emphasized the harmony of religions and the direct realization of God. His spiritual companion, Sri Sarada Devi, became a central source of inspiration for the movement. She was regarded by devotees as the Holy Mother and served as a spiritual guide to both men and women.

Swami Vivekananda transformed the spiritual legacy of Sri Ramakrishna into an organized movement. He founded the Ramakrishna Math and the Ramakrishna Mission, combining monastic discipline with educational, medical, cultural, and relief activities. However, Vivekananda's vision was not limited to men. He argued that women's advancement was essential for the progress of society and expressed the desire to establish a women's monastery inspired by Sri Sarada Devi. The official Sri Sarada Math describes this vision as an institution in which women would be trained as brahmacharinis and sadhvis. Vivekananda's approach was significant because it did not treat women merely as beneficiaries of reform. Instead, it imagined women as spiritual teachers, educators, administrators, and social workers. The proposed monastery therefore represented both a religious and social transformation.

After the establishment of this organisation, Swamiji wrote to his own disciples and brother monks from 1894 to 1895, culminating in the foundation of the Ramakrishna Mission Association in 1897. By the time the Ramakrishna Mission Association became known as the Ramakrishna Math, Swamiji had defined rules of conduct which were known as the 'Belur Math Rules' . In the very first rules it was clearly stated thus:

- This Math is established to work out one's own liberation, and to train oneself to do good to the word in every way, along the lines laid down by Bhagawan Sri Ramakrishna. For the women too, there will be started a similar Math.

- The women's Math will be conducted on exactly the same principles as that for the men. There will be this restriction that in Women's Math, there shall be no connection with men, and in that of men, no connection with women.
- Two such Maths will be started in some suitable places in the Himalayas and conducted on similar principles.
- The Women's Math will be managed by the men from a distance, so long as competent women are not available for the task. After that, they will themselves manage their affairs[2].

From these rules it is amply clear that Swamiji gave importance to establishing a woman's Math. However, at that time in India, the social conditions did not allow a woman the freedom to cross the periphery of a householder's life. Knowing this, Swamiji laid the responsibility on the monks to see that something was done for the uplift of 'women and the masses' ,as he liked to put it. The senior monks of the Ramakrishna Math were conscious of this responsibility, and time and again, the matter was discussed by the Trustees. Swamiji keenly felt that there was no chance for the welfare of the world unless the condition of women was improved. While in the United States during the terrible winter of 1894, he lectured from place to place, fighting against all odds to collect funds for Mother's Math. Swamiji's anguished heart cried out for his friends again in 1895, "In this dire winter, I have travelled across mountains and over snows at dead of night and collected a little fund; and I shall have peace of mind when a plot is secured for Mother." [3]

Swamiji knew that Sri Ramakrishna's women disciples like Gauri-Ma, Yogin-Ma, and Golak-Ma had the inner strength to spread the Vedantic ideas. At the same time, for the building of an independent organisation of women who were desirous of renouncing worldly life for spiritual enlightenment, an ideal spiritual leader for the future women's Math was necessary. She would be a centre of divine power from which would radiate rays of spirituality, knowledge, devotion, renunciation, purity, toleration, contentment, compassion and service- all in one. He was aware right from the beginning that Sri Sarda Devi, now known to the world over as Holy Mother, was that nucleus. Even Swamiji's brother monks could not at first gauge the Shakti of the Holy Mother until Swamiji pointed it out to them. In one of his letters he wrote- "You have not yet understood the wonderful significance of Mother's life- none of you… Without Shakti, there is no regeneration for the world." t

Vivekananda, with the support of scriptural authority, desired to demonstrate the Vedantic truth that there is no distinction of sex in the realm of spirituality. One and the same consciousness is present in all beings. Swamiji strongly supported the cause of women desiring to pursue the spiritual path leading to illumination and liberation.

The Origin: The genesis of Sri Sarada Math and the Ramakrishna Sarada Mission can be traced to September 1895 when Swamiji left America for London. He was invited by Miss Henrietta Muller who, in 1893, spoke at the Parliament of Religion in Chicago and met Swamiji there. In London, Swamiji gave lectures and also held informal classes and talks in private homes. Among those who attended his talk was Miss Margaret Elizabeth Noble and, after hearing a few talks and lectures given by Swamiji, Margaret accepted him as her Master. She wrote in her widely known book, The Master as I saw him, ' I had recognised the heroic fibre of the man, and decided to make myself the servant of his love for his own people.'u From this convection, Margaret immediately responded to Swamiji's invitation when, during a conversation, he turned to her and said, 'I have a plan for the women of my own country in which you, I think, could be of great help for me.' For

years Margaret had waited for a call that would change her life. Years later, she wrote to a close friend in America, Miss Josephine Macleod- "Suppose he had not come to London at that time, life would have been like a headless torso - for I always knew that I was waiting for something, I always said that a call would come. And it did." v

Although India borrowed Margaret for this work, Swamiji knew through his study of the Vedantic and Upanishadic texts that even during the Vedic days women had followed the path of renunciation and learning, keeping the highest ideal in life before them. Therefore, if women today were given the freedom to choose the spiritual path they would realise the Vedantity ideal that one reality underlies the entire phenomena.

On the 25th March of the same year, Vivekananda accepted her in the fold of the Ramakrishna Order when he initiated her into Brahmacharya, the vows of a novice nun and gave her the name Nivedita, the Dedicated One. Nivedita conducted an educational institution in Kolkata for training women to become able pilgrims, on the path of worldly excellence and spiritual realization. Once, in a country boat, on the Ganga, near the Belur Math ghat, Swamiji pointed to Nivedita, in the direction of Dakshineswar, and said that he had begun to take steps for a home for Mother and her daughters. Holy Mother Sri Sarada Devi was to be the inspiration for this Math and it was to be on the Eastern bank of the Ganga. It is known that, Swamiji had high hopes that, in time, Nivedita's efforts in the field of education would fulfill his dream of the spiritual awakening of women. Because of Nivedita's change in direction, the cause of women's suffered. Yet, Swamiji's dream continued to unfold under the care of Sister Christine Greenshidel , an American disciple of Swamiji. In 1904, both sister Nivedita and Sister Christine decided to start a project for a women's section. For the first time, women were allowed to attend the school and learn sewing, needle work, Bengali, history, arithmetic, English and Sanskrit whenever they were free from household duties. The women's section became known as the 'Pure- Stree - vibhag' . Sisters Christian and Nivedita worked together in harmony. w

Another significant contribution was made by Sudhira Bose, who joined the school as a teacher in 1906. She worked primarily with sister Christian, and due to her love, energy and resourcefulness, the school's enrollment and recognition in society increased greatly.

Sudhira expanded her responsibilities when she started an ashrama for dedicated women workers and a boarding house for students. It also accommodated poor women workers earning their livelihood through needlework and other crafts. The ashram was called 'Mantri Mandir' and was first housed at 68/2 Ramkanta Bose Street, and then at 53/1 and 2 Bosepsra Lane. The Holy mother was very happy to learn about the ashram and women, and said, "At last my daughters will have a place to lay their heads". In 1990, Holy Mother stayed for a month in the Mantri Mandir and performed Pooja there. After the mahasamadhi of Sri Sarda Devi, the Mantri Mandir was renamed 'Sarda Mandir'. This was the first time a woman spiritual aspirant lived and worked together, a prelude to Swamiji's dream for a Math for women.

Sudhira Devi was entrusted with the administration of the Home of widows in Varanasi started by Ramakrishna Mission in 1917. A branch of the Nivedita school was also opened in Comilla in 1919. Although Sudhira was the administrator of the Nivedita School and ashram, Belur Math managed a permanent fund for the maintenance of the school, in accordance with Nivedita's last will and testaments. The legal affiliation of the school of the Ramakrishna Mission was finalized

in 1918, and the school came to be known as the Ramakrishna Mission Sister Nivedita School. Until then, it was known simply as 'Nivedita School'. Foreign devotees referred to it as the 'Vivekananda school' and Nivedita herself had renamed it the 'Ramakrishna School for girls'. x

After sister Sudhira's passing, the management of the school was transferred to some elderly women devotees including Meera Devi, Bani Devi, and others.

After the second world war, the school suffered many financial difficulties. Sister Nivedita had written in her will that her school would not accept any help from the British government. The new Management Committee for the Ramakrishna Mission formed in 1946 decided to apply for financial aid from the Government of India's independence in 1947 became an established fact. There were some differences of opinion between the women workers staying in the Nivedita School and the Mission authorities on the issue. So except for one person Bijoli Sen, the entire group left the institution. y

The Turning Point: Soon after, there came a turning point in the history of the school. Educated women are inspired by Swami Vivekanand's teaching and some of them even initiated by the direct disciples of Sri Ramakrishna- Swami Shivanand, Subodhanand and Vijnanananda- and other senior monks of the order, joined the school. The first to join was Renuka Basu in 1946. She was appointed both as the Head Mistress of the school and as Superintendent of Sarda Mandir.

Gauri Dasgupta joined as a teacher. Bijoli Sen was one of the dedicated women workers already staying in the Sarda Mandir, Lakshmi Sinha joined in 1948 and took charge of the Sarda Mandir. Several other dedicated women workers joined during this period and later became sannyasinis of Sri Sarda Math. After independence, the school obtained affiliation and recognition from Calcutta University in 1949. A government grant was sanctioned from 1948-49.

In the fourth Monks Conference of the Ramakrishna Math held in 1946, Swami Viranjananda, in the presidential address, said- "The problem of women- workers has not received our due attention so for long. They have not been given any appreciable scope for leading the monastic life in the sangha as yet…. It is high time that the case of women - workers who earnestly desire to dedicate their lives to the Sangh should receive careful and sympathetic consideration. In this connection, it is well to remember that Swamiji wanted to establish Math for women, and gave it precedence over even that for men." [10]

In the fifth monk's Conference held in 1949 Swami Vireswarananda, then General Secretary, expressed the same views and stressed the idea of creating a nucleus under Belur Math and then making it independent.

Swami Vivekanand's prophecy regarding a monastic Order for women seemed to come true in the course of those years. It seemed as if the Holy Mother was gently ushering in the spiritual regeneration of women in the country. The efforts of dedicated women workers gathered momentum as another group of women in Calcutta living at the Sarda Ashrama joined the Ramakrishna Mission in 1950. Their leader was Asha Devi, who later became the General Secretary of Sri Sarda Math and the Ramakrishna Sarda Mission and worked for forty years directing the activities of all the Centres. She had a dynamic personality and made repeated requests to the authorities of Belur Math to give sannyasa to women. In addition, Asha was the driving force behind the realisation of Swamiji's dream for a women's Math under the aegis of the Ramakrishna Math, in which they

would achieve the twin goals of 'spiritual realisation and service unto others'.

There was also a small group of women in Thrissur, who were working as teachers in the local Ramakrishna Ashrama and desired to join to form a monastic sisterhood under the Ramakrishna Math. Since many young women had come forward to join, the authorities of Belur Math started giving serious thought to the Swamiji's idea of establishing a Math for women.

In the Monk's Conference of May 1952, a recommendation of far - reaching consequences was accepted, and that was related to the establishment of women's Math. In their meeting on the 29th May 1952, the Trustees of Belur Math accepted the recommendation of the Monk's Conference:

As this conference is of the opinion that it is high time to go forward to realise Swamiji's ideas that women should be put in a position to work out their destinies independence of men, it recommends-

1. That women in aspirants in the highest spiritual life, who have renounced their homes and joined our Math and Mission, work with the approval of the Headquarters and, who were designated as dedicated women workers, be helped through reasonable stages to form as early as possible an independent organisation of their own ;
2. That as a first step in this process, a central body of such dedicated women workers be formed, and that the existing women's institutions and sections of our Math and Mission be placed one after another under this management ;
3. That at the end of ten years or earlier, if this central body of dedicated women workers is found competent by the Math and Mission authorities as the case may be, it should be legally registered and the relevant Math or Mission institution for women be legally transferred to it ;
4. That the interim arrangements should be inaugurated on the occasion of the Holy Mother's Birth Centenary by providing this central body of dedicated women workers with a suitable Home ,so that when this body will be finally separated and registered, this Home may develop by the time of Swamiji's Birth Centenary into an independent Math for women as laid down by Swamiji in the Belur Math Rules .

Since women aspirants have been initiated into formal brahmacharya by Swamiji, Swami Brahmananda and Swami Shivananda ,this Conference recommends that this initiation be given, during the interim period but not afterwards, by the President of our Order to the dedicated women aspirants who were found fit by the President and Trustees for the time being .

Having regard to the fact that Swamiji, in his writings and utterances, and specially in his Math Rules , has strongly advocated sannyasa for women, this Conference recommends that, at the time of complete separation of this body of dedicated women workers as an independent organisation, if any of them already formally initiated into brahmacharya should make a request for sannyasa and be found fit by the President and Trustees for the time being, the President will ordain them as sannyasinis, but thereafter there will be no such ordination by the president. [11]

Founding of Sri Sarada Math :

On the 27th of December 1953, the Centenary Celebration of Holy Mother's birth was inaugurated at Belur Math. On that sacred day, some dedicated women workers of the Order were

initiated into brahmcharya by Swami Shankarananda, the President, at Belur Math. Initiation into brahmacharya continued until 1958 at Belur Math .

The opening of Sri Sarada Math added a new and very significant chapter to the socio-religious history of India. On the 2nd of December 1954, Swami Shankarananda the seventh President of the Ramakrishna Math and Mission, performed the opening ceremony of the Women's Math and Mission in the presence of a large number of senior monks and Trustees of the Ramakrishna Order. He installed the pictures of Sri Ramakrishna, Sri Sarda Devi, and Sri Vivekananda in a small shrine in the main building, while the brahmcharini's were chanting Vedic Mantras. Swami Vishuddhananda, who was then the Vice- President, Swami Madhavananda, who was the General Secretary, and Swami Vireswarananda ,one of the Assistant Secretaries ,the brahmacharinis, and a large number of devotees from far and near, participated in the function. Pravrajika Bharatiprana , then known as Sri Bharati, a direct disciple of Holy Mother, was given charge of the Math by Swami Shankarananda , the President of the Math.

The Math was run by the brahmacharinis for some years successfully under the guidance of the Trustees of Belur Math. Then it was decided to hand it over to the brahmacharinis so that their work could be carried on independently.

On the 1st of January 1959, the birthday of Holy Mother, eight senior members of the Sarada Math were invested with sannyasa by Swami Shankarananda . This was a preliminary step to the formation of an independent women's organization . On the 26th of August 1959, Sri Sarda Math was given independent status and the sannyasinis became its Trustees by virtue of a Deed of Trust executed by the President of the Ramakrishna Math . Sri Sarada Math and the Ramakrishna Sarada Mission, though legally separated, are basically one with the Ramakrishna Math and the Ramakrishna Mission, being their counterparts.

On the 13th of May 1960 The Trustees of Sri Sarada Math, acting on the advice of the authorities of Belur Math, founded the Ramakrishna Sarada Mission Association which was registered under Act XXI of 1860 with the object of carrying on educational, cultural, charitable, and similar activities among women and children, looking upon them as variable manifestation of the Divine. From the 3rd of September 1961 onwards, selected lay devotees were accepted as members and were invited to attend the annual meeting of the Association.

Sri Sarada Math and the Ramakrishna Sarada Mission with their branches are distinct institutions. However, they are closely linked together because the Trustees of the Math are members of the Governing body of the Mission. The main workers of the Mission are sannyasinis of Sri Sarada Math, and both the Math and the Mission Headquarters are at Sri Sarada Math, Daakshineshwar. The Math and the Mission both take up charitable and philanthropic activities. However, the former emphasizes religion on preaching, while the latter is concerned with welfare activities for women and children. It is necessary to point out that the use of the names of Sri Ramakrishna, Sri Sarada Devi, and Vivekananda by any institution does not necessarily mean that it is affiliated with either Sri Sarada Math or the Ramakrishna Sarada Mission.

Both organisations manage separate funds and maintain separate accounts. The Math fund consists of donations from friends and devotees. The Mission fund consists of fees from students, subscription, donations from the general public, and grants from the government and public bodies. The Math and the Mission funds are annually audited by qualified auditors.

Activities of Sri Sarada Math:

Sri Sarada Math is not a social organisation in which spirituality is just talked about. It is a purely spiritual organisation which has undertaken social work in accordance with Swami Vivekanand's motto, 'self-realization for oneself and service unto others.' The focus at the headquarters is on spiritual practice, the training of probationers and brahmacharinis, religious classes, lecture tours throughout India and abroad, as well as the publication of books and journals in English and Bengali. This movement is unfolding in accordance with Swami Vivekanand's ideal of practical and applied Vedanta.

The activities of Sri Sarada Math and the Ramakrishna Sarada Mission serve mainly women and children in all possible ways. These activities are offered throughout India and also, to a more limited extent, abroad . They include educational work, medical service, ruler uplift work, relief and help for the needy, and the dissemination of the cultural and spiritual ideas and ideas of India.

Activities of the Ramakrishna Sarada Mission:

Sri Sarada Math provides service to its communities through the Ramakrishna Sarada Mission. Activities offered through the Mission are 'spiritualized' , as it were. All persons, irrespective of caste or creed, race, or nationality were served according to their physical, intellectual , and/or spiritual needs. This includes or harmonious blending of renunciation and service. Any education or social service provided to others becomes worship of God in man. According to the Mission, therefore, only those social services that are attuned to higher ideals are worthy of the name 'service'.

The services provided through the Ramakrishna Sarada Mission Headquarters in Dakshineswar include a free medical dispensary, adult education, a school for underprivileged children, and the distribution of clothing to those who are in need.

Conclusion:

The formation of a Ramakrishna Math for women was neither spontaneous nor inevitable. It emerged from a long arc of vision, delay, and eventual institutional will: from Vivekananda's early 20th century plans, through decades of preparatory work by women devotees, to the decisive actions of Belur Math's trustees in the 1950s. The establishment of Sri Sarada Math in 1954 and its legal independence in 1959, followed by the Ramakrishna Sarada Mission in 1960, created a durable, women led monastic and service order within the Ramakrishna tradition.

This process illustrates how a modern Hindu movement negotiated gender, monasticism, and social service, producing a structure that both honors its founding ideals and responds to the specific spiritual and social needs of women. Future research could explore the lived experiences of the early sannyasinis, comparative analyses with other Hindu women's monastic orders, and the impact of the Sarada Mission's programmes on women's education and health in different regions of India.

Reference :

1. Belur Math. "Women's Monastic Organization." *https://belurmath.org/womens-monastic-organization/*
2. Swami Gambhirananda, *History of the Ramakrishna Math and Mission* [Calcutta : Advait Ashrama, 1957], page no. 135 .

3. *Letters of Swami Vivekananda* [Calcutta : Advait Ashrama, 1960], page no.254 .
4. *Letters of Swami Vivekananda* [Calcutta : Advait Ashrama, 1960], page no.216 .
5. *The Complete Works of Sister Nivedita* [Calcutta : Sister Nivedita Girls' School, 1967], Vol. I , Page no.22
6. *Letter of Sister Nivedita, ed.* by Sankari Prasad Basu [Calcutta : Nababharat Public., 1982] , Vol. II , page no. 661 .
7. Pravrajika Atmaprana (2006), *A New Monastic Tradition for Women* . The story of Ramakrishna Mission ; Swami Vivekanand's vision and fulfillment. Kolkata: Advait Ashrama page no. 533
8. ibid , Page no. 539
9. ibid Page no. 545
10. *The Temple Dedication Souvenir 1981* [Sri Sarada Math,1981],page no. 22 .
11. Swami Gambhirananda, *History of the Ramakrishna Math and Mission* [Calcutta : Advait Ashrama, 1957], page no. 40

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

उच्च शिक्षा में शैक्षिक असमानता और सामाजिक पुनरुत्पादन: पियरे बोरदियो के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

राम उग्र गोस्वामी
सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र विभाग,
सी.एस.एन.पी.जी. कॉलेज, हरदोई (उत्तर प्रदेश)

सारांश

उच्च शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता, समान अवसर और सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उच्च शिक्षा में शैक्षिक असमानता को पियरे बोरदियो की प्रमुख अवधारणाओं—आर्थिक पूँजी, सांस्कृतिक पूँजी, सामाजिक पूँजी, habitus, field तथा symbolic power—के माध्यम से समझना है। अध्ययन गुणात्मक एवं व्याख्यात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। इसमें प्राथमिक साक्षात्कार अथवा काल्पनिक प्रतिभागी-आँकड़ों का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि बोरदियो के मूल सैद्धांतिक लेखन तथा उच्च शिक्षा में असमानता से संबंधित समकालीन शोधों के आधार पर आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

उच्च शिक्षा में केवल संस्थागत अवसरों की समान उपलब्धता वास्तविक शैक्षिक समानता सुनिश्चित ही नहीं करती अपितु विद्यार्थियों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जो उनकी शैक्षिक यात्रा को प्रभावित करती है। परिवार की शैक्षिक पृष्ठभूमि, भाषा, डिजिटल संसाधनों तक पहुँच, सामाजिक नेटवर्क, शैक्षणिक संस्कृति (academic culture) की समझ और संस्थागत अपेक्षाओं से परिचित होने की क्षमता कुछ विद्यार्थियों को ऐसी अदृश्य सुविधाएँ प्रदान कर सकती है जो अन्य विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध नहीं होतीं। हाल के भारतीय शोध भी संकेत करते हैं कि उच्च शिक्षा के विस्तार के बावजूद जाति, सामाजिक पृष्ठभूमि, भाषा और सांस्कृतिक पूँजी से संबंधित असमानताएँ बनी हुई हैं।

प्रमुख शब्द : उच्च शिक्षा, शैक्षिक असमानता, पियरे बोरदियो, सांस्कृतिक पूँजी, सामाजिक पूँजी, habitus, सामाजिक पुनरुत्पादन, शैक्षिक समानता।

1. प्रस्तावना

शिक्षा को लंबे समय से सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक गतिशीलता का प्रभावशाली माध्यम माना जाता रहा है। विशेष रूप से उच्च शिक्षा से जो व्यक्ति को ज्ञान, कौशल, व्यावसायिक योग्यता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती है। आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों में विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सामाजिक पृष्ठभूमि की असमानताओं को कम करते हुए व्यक्तियों को योग्यता और परिश्रम के आधार पर आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करें। यदि दो विद्यार्थी एक ही विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करते हैं, तो क्या दोनों की शैक्षिक परिस्थितियाँ वास्तव में समान होती हैं? एक विद्यार्थी ऐसे परिवार से आ सकता है जहाँ माता-पिता उच्च शिक्षित हों, घर में पुस्तकें हों,

इंटरनेट और कंप्यूटर उपलब्ध हों तथा विश्वविद्यालयी व्यवस्था की जानकारी पहले से मौजूद हो। दूसरा विद्यार्थी पहली पीढ़ी का उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाला हो सकता है, जिसके परिवार में विश्वविद्यालयी अनुभव न हो और जिसके पास सीमित आर्थिक तथा डिजिटल संसाधन हों।

औपचारिक रूप से दोनों को समान classroom और curriculum प्राप्त हो सकता है, लेकिन उनकी प्रारंभिक सामाजिक परिस्थितियाँ समान नहीं हैं। यही अंतर उच्च शिक्षा में असमानता को समझने का महत्वपूर्ण आधार बनता है।

पियरे बोरदियो का समाजशास्त्रीय चिंतन इसी समस्या को एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान करता है। बोरदियो ने यह दिखाया कि सामाजिक असमानता केवल धन और संपत्ति के असमान वितरण का परिणाम नहीं है। समाज में ज्ञान, भाषा, सामाजिक संबंध, सांस्कृतिक अभिरुचियाँ और संस्थागत मान्यता भी ऐसी पूँजी के रूप में कार्य कर सकती हैं जिनका वितरण समान नहीं होता (Bourdieu, 1986)।

शिक्षा संस्थान इन पूँजियों को पहचानने और मान्यता देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार जो विद्यार्थी पहले से ही उस सांस्कृतिक संसार से परिचित होते हैं जिसे शैक्षिक संस्थान मूल्यवान मानते हैं, उन्हें अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त हो सकता है। इसके विपरीत, वंचित सामाजिक पृष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थियों को समान संस्थागत व्यवस्था के भीतर अतिरिक्त अनुकूलन करना पड़ सकता है। भारत में यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण है। उच्च शिक्षा का विस्तार हुआ है और 2022–23 में भारत में उच्च शिक्षा में कुल नामांकन लगभग 4.46 करोड़ तक पहुँच गया था। उसी वर्ष कुल नामांकन में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की हिस्सेदारी 15.5%, अनुसूचित जनजाति की 6.4% और अन्य पिछड़ा वर्ग की 39% थी। ये आँकड़े उच्च शिक्षा के विस्तार की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, लेकिन केवल enrollment में वृद्धि से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि शैक्षिक असमानता समाप्त हो गई है। उत्तर प्रदेश पर आधारित एक अध्ययन में भी पाया गया कि अनुसूचित जाति और मुस्लिम समूहों की उच्च शिक्षा में भागीदारी विशेषाधिकार प्राप्त समूहों की तुलना में पीछे रही और केवल आय में सुधार से भागीदारी में समानता सुनिश्चित नहीं हुई (Jha &, 2023).

2. अध्ययन की समस्या

उच्च शिक्षा में समानता पर होने वाली चर्चा अक्सर access, enrolment, reservation तथा financial assistance जैसे प्रत्यक्ष कारकों पर केंद्रित रहती है। ये सभी महत्वपूर्ण हैं, लेकिन इनके अतिरिक्त कुछ अदृश्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ भी विद्यार्थियों के शैक्षिक अनुभवों को प्रभावित कर सकती हैं।

उदाहरण के लिए :

- किस विद्यार्थी को academic language पहले से आती है?
- किस विद्यार्थी को विश्वविद्यालयी नियमों की जानकारी परिवार से मिलती है?
- किसके परिवार में उच्च शिक्षा का अनुभव मौजूद है?
- किसके पास laptop और stable internet है?
- किस विद्यार्थी के पास internships और career opportunities की जानकारी देने वाला social network है?
- कौन विद्यार्थी classroom में अपनी बात रखने में अधिक सहज महसूस करता है?
- किस विद्यार्थी को विश्वविद्यालय की संस्कृति "अपने लिए" परिचित लगती है?

इन प्रश्नों को केवल individual merit से समझना कठिन है।

3. अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्च शिक्षा में शैक्षिक असमानता को बोरदियो के सामाजिक सिद्धांत के माध्यम से समझना।
2. आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पूँजी की भूमिका का विश्लेषण करना।

3. habitus और field की अवधारणाओं के माध्यम से विद्यार्थियों के शैक्षिक अनुभव को समझना।

4. उच्च शिक्षा और सामाजिक पुनरुत्पादन के बीच संबंध को स्पष्ट करना।

5. meritocracy और वास्तविक equality of opportunity के बीच अंतर को रेखांकित करना।

6. उच्च शिक्षा में असमानता कम करने के लिए सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

4. शोध प्रश्न

1. उच्च शिक्षा में सामाजिक पृष्ठभूमि शैक्षिक अवसरों को किस प्रकार प्रभावित करती है?

2. सांस्कृतिक पूँजी विद्यार्थियों के academic experience और educational success को किस प्रकार प्रभावित कर सकती है?

3. सामाजिक पूँजी उच्च शिक्षा में अवसरों और समर्थन तक पहुँच को किस प्रकार प्रभावित करती है?

4. habitus विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षाओं और व्यवहारों को किस प्रकार प्रभावित करता है?

5. क्या उच्च शिक्षा सामाजिक असमानताओं को कम करने के साथ-साथ उनका पुनरुत्पादन भी कर सकती है?

6. वास्तविक शैक्षिक समानता के लिए केवल समान access पर्याप्त है या अतिरिक्त institutional support की आवश्यकता है?

5. सैद्धांतिक आधारः पियरे बोरदियो

पियरे बोरदियो का सिद्धांत शिक्षा और समाज के संबंध को समझने के लिए अत्यंत प्रभावशाली रहा है। उनका विश्लेषण इस बात पर केंद्रित है कि सामाजिक संरचनाएँ व्यक्तियों की पसंद, व्यवहार और अवसरों को कैसे प्रभावित करती हैं तथा संस्थाएँ किस प्रकार सामाजिक शक्ति संबंधों को पुनरुत्पादित कर सकती हैं।

Bourdieu और Passeron की Reproduction in Education, Society and Culture शिक्षा और सामाजिक वर्गों के संबंध को समझने वाली प्रमुख कृति है। इसमें शिक्षा व्यवस्था, चयन, परीक्षा, भाषा तथा सामाजिक वर्गों के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया है।

6. आर्थिक पूँजी और उच्च शिक्षा

Economic capital से आशय धन, संपत्ति तथा अन्य आर्थिक संसाधनों से है। उच्च शिक्षा में इसका प्रभाव बहुत प्रत्यक्ष हो सकता है।

आर्थिक रूप से सक्षम विद्यार्थी

- बेहतर digital devices खरीद सकता है,
- private coaching या अतिरिक्त courses ले सकता है,
- books और journals खरीद सकता है,
- शहर के अच्छे संस्थान में रहने का खर्च वहन कर सकता है,
- unpaid internship अथवा research opportunity के दौरान आर्थिक दबाव से अपेक्षाकृत मुक्त रह सकता है।

इसके विपरीत आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थी को पढ़ाई के साथ काम करना पड़ सकता है या उसे संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ सकता है।

इस प्रकार economic capital educational field में एक प्रकार का enabling resource बन जाती है।

तालिका संख्या- 1
आर्थिक पूँजी और उच्च शिक्षा

आर्थिक संसाधन	उच्च शिक्षा में संभावित प्रभाव
Laptop/Computer	Digital learning और research
Stable Internet	Online resources तक पहुँच
पुस्तकों की उपलब्धता	Academic preparation
आर्थिक सुरक्षा	अध्ययन के लिए अधिक समय
Coaching/extra courses	Competitive advantage
यात्रा/आवास की सुविधा	संस्थान तक निरंतर पहुँच

7. सांस्कृतिक पूँजी : का अदृश्य आयाम

Bourdieu (1986) की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणाओं में से एक Cultural Capital है। सांस्कृतिक पूँजी को केवल "संस्कृति" के अर्थ में नहीं समझना चाहिए। इसमें वे ज्ञान, भाषा, व्यवहार, academic dispositions और सांस्कृतिक दक्षताएँ शामिल हो सकती हैं जिन्हें सामाजिक संस्थाएँ मूल्यवान मानती हैं।

उच्च शिक्षा में cultural capital के कई रूप दिखाई दे सकते हैं :

भाषाई दक्षता

Academic writing की क्षमता

पुस्तक-पठन की आदत

शोध संस्कृति से परिचय

Presentation skills

विश्वविद्यालयी प्रक्रियाओं की जानकारी

शैक्षिक आकांक्षाएँ

यदि किसी विद्यार्थी के माता-पिता उच्च शिक्षित हैं, तो वह university culture से अप्रत्यक्ष रूप से पहले से परिचित हो सकता है।

इससे एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है :

क्या शिक्षा व्यवस्था केवल ज्ञान का मूल्यांकन करती है, या वह पहले से उपलब्ध cultural capital को भी पुरस्कृत करती है?

Bourdieu और Passeron (1977) के विश्लेषण में शिक्षा और सांस्कृतिक वैधता के बीच यही संबंध महत्वपूर्ण है।

8. सामाजिक पूँजी और नेटवर्क का महत्व

Social capital व्यक्ति के सामाजिक संबंधों, नेटवर्क और उन नेटवर्क से मिलने वाले संसाधनों से संबंधित है (Bourdieu, 1986)।

उच्च शिक्षा में social capital निम्न रूपों में दिखाई दे सकती है :

परिवार → शिक्षक → वरिष्ठ विद्यार्थी → alumni → professional network

इन नेटवर्कों के माध्यम से विद्यार्थियों को scholarships, internships, research opportunities, competitive

examinations और employment से संबंधित जानकारी प्राप्त हो सकती है।

पहली पीढ़ी के learners के पास ऐसे दमजूवतो अपेक्षाकृत सीमित हो सकते हैं।

भारत में उच्च शिक्षा में marginalized students के संदर्भ में social capital की भूमिका पर शोध ने भी यह दिखाया है कि सीमित networks विद्यार्थियों के academic experiences और opportunities को प्रभावित कर सकते हैं (Tierney et al., 2019).

यहाँ institutional mentoring महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि विश्वविद्यालय :

- mentoring,
- peer support,
- counselling,
- career guidance,
- academic orientation

प्रदान करता है, तो वह कुछ हद तक विद्यार्थियों की असमान social capital को compensate कर सकता है।

9. Habitus: विद्यार्थी केवल "व्यक्ति" नहीं, सामाजिक अनुभव का परिणाम भी है

Bourdieu की habitus अवधारणा इस अध्ययन को और अधिक गहराई प्रदान करती है।

Habitus को व्यक्ति के सामाजिक अनुभवों से विकसित होने वाली ऐसी प्रवृत्तियों, धारणाओं और व्यवहारों के रूप में समझा जा सकता है जो उसके सोचने और कार्य करने के तरीके को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, दो विद्यार्थी समान विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते हैं। एक विद्यार्थी बचपन से सुनता आया है कि तुम्हें आगे चलकर विश्वविद्यालय जाना है।

दूसरा विद्यार्थी ऐसे परिवेश में बड़ा होता है जहाँ उच्च शिक्षा परिवार के अनुभव का हिस्सा ही नहीं रही। दोनों को admission मिल जाने के बाद भी उनकी educational aspirations, confidence और institutional participation समान होना आवश्यक नहीं है।

इसलिए habitus यह समझने में सहायता करता है कि अवसर उपलब्ध होने और अवसर को वास्तविक रूप से अपनाने के बीच अंतर क्यों हो सकता है।

10. उच्च शिक्षा की अपनी संस्कृति

Bourdieu के framework में field एक सामाजिक क्षेत्र है जिसमें विशेष नियम, मानदंड, मूल्य और power relations कार्य करते हैं। विश्वविद्यालय को एक पिमसक के रूप में देखा जा सकता है। जो इस पिमसक में :

- academic language,
- qualifications,
- publications,
- examination,
- institutional reputation,
- communication style,
- professional networking जैसे तत्व महत्व रखते हैं। जो विद्यार्थी इन नियमों से पहले से परिचित होते हैं, वे field में अपेक्षाकृत आसानी से navigate कर सकते हैं।

इसलिए उच्च शिक्षा को केवल "एक समान classroom" के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। विश्वविद्यालय स्वयं एक सामाजिक-सांस्कृतिक field है।

11. Symbolic Power और Meritocracy

उच्च शिक्षा में merit को अक्सर objective और neutral माना जाता है। लेकिन Bourdieu के अनुसार जिसे हम

"merit" कहते हैं, उसका निर्माण किन सामाजिक परिस्थितियों में होता है,

यदि किसी विद्यार्थी को बचपन से अच्छी भाषा, books, coaching, technology, academic guidance और educated parents की support मिलता है, तो उसकी academic performance में केवल "individual merit" की भूमिका नहीं हो सकती।

इसका अर्थ यह नहीं है कि individual ability या मेहनत महत्वहीन है। बल्कि Bourdieu का दृष्टिकोण कहता है कि individual performance किन सामाजिक बवदकपजपवदे के भीतर निर्मित होती है। यहीं symbolic power महत्वपूर्ण हो जाती है। जब सामाजिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त cultural practices को केवल "natural intelligence" या "merit" के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, तब सामाजिक अंतर अदृश्य हो सकते हैं।

12. सामाजिक पुनरुत्पादन

शिक्षा समानता भी पैदा करती है और असमानता भी Bourdieu और Passeron (1977) का social reproduction perspective इस अध्ययन की केंद्रीय अवधारणा है। शिक्षा को सामान्यतः mobility का माध्यम माना जाता है : गरीबी → शिक्षा → योग्यता → रोजगार → सामाजिक गतिशीलता, लेकिन reproduction perspective एक दूसरा रास्ता भी दिखाता है :

सामाजिक पृष्ठभूमि → Cultural Capital → Educational Advantage → Qualification → सामाजिक स्थिति का पुनरुत्पादन; इसका अर्थ यह नहीं कि शिक्षा हमेशा असमानता पैदा करती है। बल्कि शिक्षा के भीतर mobility और reproduction दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ मौजूद हो सकती हैं।

13. समान अवसर बनाम समान क्षमता

समान अवसर (Equality of Opportunity) समान admission, समान curriculum, समान examination प्रदान करना।

वास्तविक शैक्षिक समानता विद्यार्थियों की अलग-अलग प्रारंभिक स्थितियों को पहचानते हुए उन्हें आवश्यक :

- academic support,
- language support,
- digital resources,
- financial support,
- mentoring,
- counselling प्रदान करना।

इसलिए : Equality does not always mean treating everyone identically(sometimes equality requires addressing unequal starting conditions-

14. उच्च शिक्षा में असमानता के बहुआयामी रूप

तालिका 2 उच्च शिक्षा में असमानता के आयाम और Bourdieu का framework

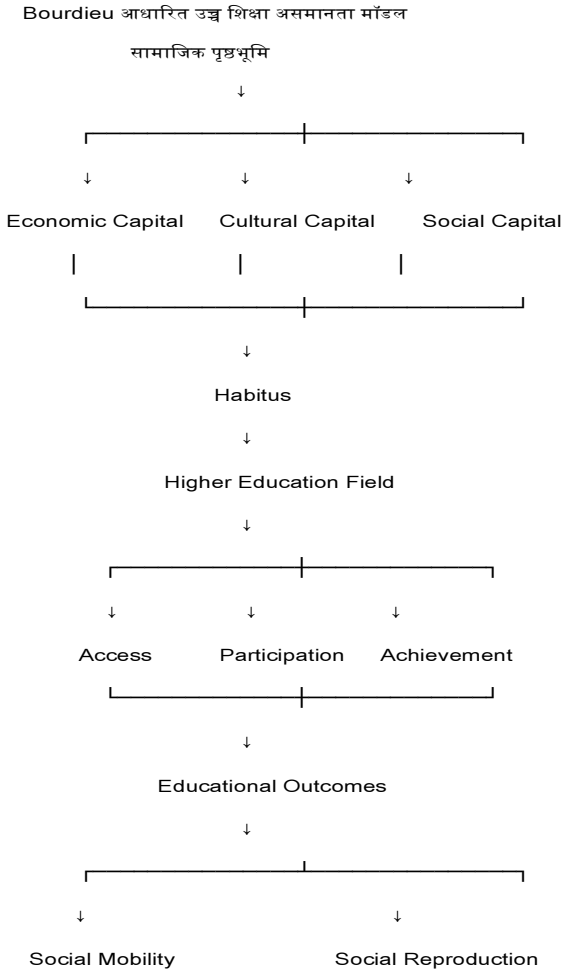
असमानता का आयाम	प्रमुख संसाधन	Bourdieu की अवधारणा
आर्थिक	धन, उपकरण, आवास	Economic Capital
सांस्कृतिक	भाषा, ज्ञान, academic exposure	Cultural Capital
सामाजिक	नेटवर्क, guidance	Social Capital
मनो-सामाजिक	confidence, aspirations	Habitus
संस्थागत	rules, norms, recognition	Field
प्रतीकात्मक	merit, prestige, legitimacy	Symbolic Power

15. भारतीय संदर्भ में ठवनतकपमन की प्रासंगिकता

भारतीय समाज में उच्च शिक्षा की असमानता को केवल बसें के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है। जाति, वर्ग, लिंग, ग्रामीण-शहरी अंतर, भाषा, धर्म, disability और first-generation learner status जैसी अनेक स्थितियाँ शैक्षिक अनुभवों को प्रभावित कर सकती हैं।

UGC की 2024 की SEDG guidelines भी मानती हैं कि सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समूहों को socio-cultural, economic और historical कारणों से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच में कठिनाइयाँ हो सकती हैं। इन समूहों में SC, ST, OBC, EWS, vernacular-medium students, first-generation learners, minorities, persons with disabilities तथा vulnerable communities शामिल हैं।

यह बिंदु Bourdieu के framework से अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से जुड़ता है। यदि किसी विद्यार्थी के पास आर्थिक संसाधन कम हैं, परिवार में उच्च शिक्षा का अनुभव नहीं है, academic language से दूरी है और institutional networks सीमित हैं, तो उसके पास higher education field में सफलतापूर्वक navigate करने के लिए आवश्यक capital अपेक्षाकृत कम हो सकती है। इसीलिए UGC की SEDG guidelines में mentoring, counselling, bridge courses, outreach तथा academic support जैसी व्यवस्थाओं पर बल दिया गया है।



उपरोक्त मॉडल की विशेषता यह है कि यह शिक्षा को न तो केवल mobility mechanism मानता है और न केवल reproduction mechanism। बल्कि यह दिखाता है कि दोनों प्रक्रियाएँ विद्यार्थियों की उपलब्ध पूँजी और institutional field के interaction से उत्पन्न हो सकती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षा में असमानता को केवल प्रवेश या नामांकन के स्तर पर समझना पर्याप्त नहीं है। भारत में उच्च शिक्षा के विस्तार के बावजूद सामाजिक समूहों के बीच participation में अंतर बना हुआ है। उत्तर प्रदेश से संबंधित शोध में भी सामाजिक पृष्ठभूमि और समूह-संबंधित कारकों का उच्च शिक्षा participation पर प्रभाव सामने आया है।

इसी प्रकार हालिया scholarship यह संकेत करती है कि भारत में higher education का massification संख्यात्मक रूप से अवसरों का विस्तार करता है, लेकिन cultural] linguistic और epistemic capital से जुड़ी असमानताएँ बनी रह सकती हैं।

language barriers, digital inequality cultural mismatch, weak social networks financial constraction]institutional discrimination बने रहते हैं, तो शिक्षा का विस्तार सामाजिक असमानता को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाएगा।

इस संदर्भ में Bourdieu का framework विशेष उपयोगी है क्योंकि यह inequality के visible और invisible दोनों dimensions को समझने का अवसर देता है।

Bourdieu का सिद्धांत शिक्षा की आलोचना करता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन करने में असमर्थ है।

इसके विपरीत, यदि शिक्षा संस्थान :

- disadvantaged students को अतिरिक्त academic support दें,
- cultural diversity को स्वीकार करें,
- mentoring उपलब्ध कराएँ,
- digital resources की समान पहुँच सुनिश्चित करें,
- language support दें,
- scholarships और financial assistance को मजबूत करें,
- inclusive institutional culture विकसित करें,

तो शिक्षा सामाजिक पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को कमजोर कर सकती है।

अर्थात् शिक्षा केवल reproduction का क्षेत्र नहीं है; यह reproduction और transformation के बीच संघर्ष का क्षेत्र भी हो सकती है।

निष्कर्ष

1. उच्च शिक्षा में समान ंबबमे वास्तविक समानता की गारंटी नहीं देता।

2. विद्यार्थियों की economic capital उनकी learning resources और educational opportunities को प्रभावित कर सकती है।

3. Cultural capital academic language, educational orientation और institutional expectations को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

4. Social capital mentoring, information और professional opportunities तक पहुँच को प्रभावित कर सकती है।

5. Habitus विद्यार्थियों की educational aspirations, confidence और institutional participation को प्रभावित कर सकता है।

6. विश्वविद्यालय स्वयं एक field है जिसमें कुछ cultural practices और forms of knowledge अधिक legitimate माने जाते हैं।

सुझाव

1. समानता को केवल प्रवेश से न मापा जाए

Higher education institutions को enrolment के साथ retention, participation, completion और post-education outcomes पर भी ध्यान देना चाहिए।

2. First-generation learners के लिए mentoring

पहली पीढ़ी के विद्यार्थियों के लिए structured mentoring system विकसित किया जाना चाहिए।

3. Cultural capital gap को कम करना

Academic writing, communication, research methodology, presentation और digital literacy के लिए bridge courses उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

4. Language support

विभिन्न भाषायी पृष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थियों के लिए academic language support विकसित किया जाना चाहिए।

5. Social capital का institutional निर्माण

विश्वविद्यालयों को mentoring] alumni networks, career counselling और internship support के माध्यम से disadvantaged students के social capital को बढ़ाना चाहिए।

6. आर्थिक सहायता

Scholarships, fellowships, digital devices और अन्य educational resources तक पहुँच सुनिश्चित की जानी चाहिए।

7. Inclusive institutional culture

विश्वविद्यालयों को ऐसी academic culture विकसित करनी चाहिए जिसमें विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के विद्यार्थी स्वयं को बराबर का participant महसूस करें।

8. Merit की व्यापक समझ

Academic merit को केवल final examination या marks के आधार पर न देखकर विद्यार्थियों की परिस्थितियों और उपलब्ध अवसरों के संदर्भ में भी समझने की आवश्यकता है।

21. उपसंहार

उच्च शिक्षा को सामाजिक समानता का शक्तिशाली माध्यम माना जाता है, लेकिन समानता की वास्तविकता को समझने के लिए केवल institutional access का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। पियरे बोरदियो का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पूँजी सिद्धांत यह समझने में सहायता करता है कि विद्यार्थी उच्च शिक्षा में समान प्रारंभिक सामाजिक परिस्थितियों के साथ प्रवेश नहीं करते।

Economic capital विद्यार्थियों को संसाधन उपलब्ध कराती है; cultural capital उन्हें academic culture में सहज होने में सहायता कर सकती है; social capital information और networks उपलब्ध कराती है; जबकि habitus

उनकी शैक्षिक आकांक्षाओं और व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। इन पूँजियों का असमान वितरण उच्च शिक्षा में ऐसी अदृश्य असमानताएँ उत्पन्न कर सकता है जिन्हें केवल enrolment statistics से नहीं समझा जा सकता।

इसलिए उच्च शिक्षा को केवल meritocratic institution मानना पर्याप्त नहीं है। शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का माध्यम बन सकती है, लेकिन यदि संस्थागत व्यवस्था सामाजिक एवं सांस्कृतिक असमानताओं को पहचानने में असफल रहती है, तो वही शिक्षा मौजूदा सामाजिक संरचनाओं के पुनरुत्पादन में योगदान कर सकती है।

इस अध्ययन का केंद्रीय निष्कर्ष यही है कि "समान अवसर" और "समान परिणाम" के बीच एक महत्वपूर्ण सामाजिक दूरी होती है। वास्तविक शैक्षिक समानता तभी संभव है जब उच्च शिक्षा संस्थान विद्यार्थियों की असमान प्रारंभिक परिस्थितियों को पहचानें और उन्हें आवश्यक academic, social, cultural और economic support प्रदान करें।

इस प्रकार Bourdieu का framework उच्च शिक्षा को केवल ज्ञान प्रदान करने वाली संस्था के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक पूँजी, सांस्कृतिक वैधता, शक्ति और सामाजिक गतिशीलता के संघर्ष-क्षेत्र के रूप में देखने का अवसर प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

Bourdieu, P. (1986). The forms of capital. In J. G. Richardson (Ed.), Handbook of theory and research for the sociology of education (pp. 241-258). Greenwood Press.

Bourdieu, P., & Passeron, J.-C. (1977). Reproduction in education, society and culture. Sage.

Donaghy, E. L., & Davies, D. (2025). Stratified massification: Higher education expansion and social (in)justice in India. International Journal of Educational Development.

Swartz, D. (1977). Pierre Bourdieu: The cultural transmission of social inequality. Harvard Educational Review, 47(4), 545-555.

Tierney, W. G., Sabharwal, N. S., & Malish, C. M. (2019). Inequitable structures: Class and caste in Indian higher education. International Journal of Qualitative Studies in Education, 32(5), 456-473.

University Grants Commission. (2024). Guidelines to provide equitable opportunity for the socio-economically disadvantaged groups (SEDGs) in the higher educational institutions. UGC.

Ministry of Education, Government of India. (2024). Annual report 2024-25. Government of India.

United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 agenda for sustainable development. United Nations.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Building Emotionally Intelligent Teachers for Holistic Education: Insights from NEP 2020

Dimpi Singh
Research Scholar (Department of Education)
Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur

Abstract

The National Education Policy (NEP) 2020 envisions a transformative educational framework that promotes holistic development, critical thinking, creativity, and social-emotional well-being among learners. The successful implementation of this vision depends largely on the professional competence of teachers. Emotional Intelligence (EI), defined as the ability to perceive, understand, manage, and utilize emotions effectively, has emerged as a crucial factor in teacher effectiveness and professional growth. This paper examines the role of emotional intelligence in teacher professional development within the framework of NEP 2020. It explores how emotional intelligence contributes to positive classroom environments, stress management, teacher-student relationships, collaboration, and lifelong learning. The paper further discusses practical strategies for integrating emotional intelligence into teacher education and professional development programs. The study concludes that emotionally intelligent educators are better equipped to address the evolving demands of twenty-first-century education and contribute to the holistic development of learners.

Keywords: Emotional Intelligence, Teacher Professional Development, NEP 2020, Holistic Education, Social-Emotional Learning, Teacher Effectiveness

Introduction

The quality of an education system is closely linked to the quality of its teachers. Recognizing this reality, the National Education Policy (NEP) 2020 places teachers at the center of educational reform. The policy advocates a learner-centered approach that promotes not only academic excellence but also social, emotional, ethical, and cognitive development. Such a comprehensive vision requires teachers who possess both pedagogical expertise and emotional competence.

Emotional Intelligence (EI) has become increasingly significant in educational discourse because teaching is fundamentally a human-centered profession. Teachers interact with students from diverse backgrounds, manage classroom dynamics, address emotional challenges, and collaborate with multiple stakeholders. Consequently, emotional intelligence serves as a critical professional competency that enables educators to perform these responsibilities effectively.

Objectives of the Study

1. To examine the concept and dimensions of emotional intelligence in education.
2. To analyze the relevance of emotional intelligence in teacher professional development.
3. To explore the relationship between emotional intelligence and the goals of NEP 2020.
4. To suggest strategies for integrating emotional intelligence into teacher development programs.

Conceptual Framework of Emotional Intelligence

The concept of emotional intelligence was introduced by Salovy and Mayer (1990), who defined it as the ability to monitor and manage one's own emotions and those of others. Goleman (1995) expanded the concept and identified five major dimensions: self-awareness, self-regulation, motivation, empathy, and social skills.

Self-awareness enables teachers to recognize their emotional states and understand how these emotions influence their decisions and interactions. Self-regulation helps educators manage stress and respond constructively to challenging situations. Motivation encourages perseverance and professional commitment. Empathy allows teachers to understand students' perspectives and emotional needs. Social skills facilitate effective communication, collaboration, and relationship building.

Teacher Professional Development under NEP 2020

NEP 2020 highlights continuous professional development as a cornerstone of educational quality. Teachers are expected to engage in lifelong learning and continuously upgrade their knowledge and skills. The policy recommends regular professional development opportunities, multidisciplinary learning, reflective practices, and the integration of technology into teaching and learning processes.

The policy also emphasizes inclusive education, social-emotional learning, and student well-being. These objectives require teachers to develop emotional competencies that enable them to support diverse learners and foster positive educational experiences.

Importance of Emotional Intelligence in Teacher Professional Development

Creating Positive Learning Environments Emotionallyintelligent teachers can create supportive and inclusive classroom environments. Students learn more effectively when they feel respected, valued, and emotionally secure. Through empathy and effective communication, teachers can establish trust and encourage meaningful participation.

Managing Stress and Preventing BurnoutTeaching is often associated with significant emotional and professional demands. Workload pressures, administrative responsibilities, and classroom challenges can contribute to stress and burnout. Emotional intelligence helps teachers regulate emotions, maintain resilience, and adopt healthy coping strategies. Research indicates that emotionally intelligent teachers experience lower levels of occupational stress and higher levels of job satisfaction.

Enhancing Teacher–Student RelationshipsPositive teacher-student relationships are essential for academic achievement and emotional well-being. Teachers who demonstrate empathy and emotional understanding are more successful in motivating students and addressing individual learning needs. Strong relationships also contribute to improved classroom behavior and engagement.Promoting

Collaboration and Leadership

Educational institutions function through collaboration among teachers, administrators, parents, and communities. Emotional intelligence strengthens interpersonal relationships and promotes teamwork. Teachers with strong social skills can communicate effectively, resolve conflicts constructively, and contribute positively to school culture and leadership initiatives.

Supporting Lifelong Learning

Professional growth requires openness to change, reflection, and continuous improvement. Emotional intelligence fosters adaptability, resilience, and intrinsic motivation. These qualities encourage teachers to embrace innovation and remain committed to lifelong learning.

Emotional Intelligence and Holistic Education

One of the central themes of NEP 2020 is holistic education. Holistic education seeks to develop learners intellectually, socially, emotionally, physically, and ethically. Teachers play a crucial role in facilitating this process.

Emotionally intelligent educators model positive behaviors such as empathy, self-control, respect, and collaboration. Through these behaviors, they contribute to students' social-emotional development and help create learning environments that nurture both academic and personal growth.

Strategies for Integrating Emotional Intelligence into Teacher Development

Teacher Education Curriculum

Teacher preparation programmes should include dedicated modules on emotional intelligence, social-emotional learning, communication skills, and emotional well-being. Such training can help future educators develop emotional competencies before entering the profession.

Reflective Practice

Reflective activities such as journaling, peer discussions, and self-assessment encourage teachers to analyze their emotional responses and professional experiences. Reflection enhances self-awareness and supports continuous improvement.

Mindfulness and Well-being Programmes

Mindfulness training, stress-management workshops, and well-being initiatives can help teachers develop emotional resilience. These programmes contribute to both personal wellness and professional effectiveness.

Professional Learning Communities

Collaborative learning communities provide opportunities for teachers to share experiences, discuss challenges, and learn from one another. Such communities foster emotional support and collective professional growth.

Technology-Enabled Learning

Digital platforms can facilitate emotional intelligence training through online courses, webinars, and interactive resources. Technology expands access to professional development opportunities and

supports continuous learning.

Discussion

The integration of emotional intelligence into teacher professional development aligns closely with the objectives of NEP 2020. The policy recognizes that effective teaching extends beyond content delivery and includes nurturing students' emotional and social development. Teachers with strong emotional competencies are better positioned to support inclusive classrooms, foster student engagement, and respond effectively to educational challenges.

Furthermore, emotional intelligence contributes to teacher well-being, which is essential for sustaining motivation and professional commitment. In an era characterized by rapid educational change, emotionally intelligent teachers are more adaptable and capable of leading meaningful transformations in teaching and learning.

Conclusion

Emotional intelligence is a critical component of teacher effectiveness and professional development. Within the framework of NEP 2020, it serves as a foundation for holistic education, inclusive classrooms, and lifelong learning. Teachers who possess strong emotional competencies are better equipped to manage stress, build positive relationships, collaborate effectively, and support students' overall development.

The integration of emotional intelligence into teacher education and professional development programes should therefore be considered a priority. By nurturing emotionally intelligent educators, educational institutions can contribute significantly to achieving the transformative goals envisioned by NEP 2020.

References :

Bar-On, R. (2006). The Bar-On model of emotional-social intelligence (ESI). Psicothema, 18, 13–25.

Brackett, M. A., Palomera, R., Mojsa-Kaja, J., Reyes, M. R., & Salovey, P. (2010). Emotion-regulation ability, burnout, and job satisfaction among British secondary-school teachers. Psychology in the Schools, 47(4), 406–417.

Darling-Hammond, L., Hyler, M. E., & Gardner, M. (2017). Effective Teacher Professional Development. Learning Policy Institute.

Elias, M. J., Zins, J. E., Weissberg, R. P., Frey, K. S., Greenberg, M. T., Haynes, N. M.,

Kessler, R., Schwab-Stone, M., & Shriver, T. P. (1997). Promoting Social and Emotional Learning: Guidelines for Educators.

Goleman, D. (1995). Emotional Intelligence: Why It Can Matter More Than IQ. Bantam Books.

Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.

Salovey, P., & Mayer, J. D. (1990). Emotional intelligence. Imagination, Cognition and Personality, 9(3), 185–211.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

जनजातियों की समस्याएँ एवं संवैधानिक प्रावधान

डॉ॰ प्रीति कुमारी
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय
समाजशास्त्र विभाग
पटना (बिहार)

सारांश : जनजाति अनेक समस्याओं से ग्रसित हैं। ये आज भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप में उस स्तर से काफी दूर हैं। जहाँ अन्य गैर-जनजातीय हैं। इनकी समस्याएँ तीन तथ्यों के परिणाम हैं, एक, कुछ समस्याएँ उनके स्वयं के रीति-रिवाजों के परिणाम हैं। दूसरा, कुछ समस्याएँ बाहरी जगत के सम्पर्क के परिणाम हैं। तीसरा, कुछ समस्याएँ प्रशासनिक व्यवस्था के परिणाम हैं। जनजातियों की प्रमुख समस्याएँ निम्न प्रकार हैं–

कुंजीभूत शब्द- सामाजिक, आर्थिक, स्तर, गैर-जनजातीय, समस्याएँ।

(1) आर्थिक समस्याएँ

जनजातियों की आर्थिक समस्या ही इनकी प्रमुख समस्या है। इनकी आर्थिक स्थिति देश के अन्य नागरिकों की तुलना में अधिक खराब है। इनके आर्थिक साधन सीमित थे। उनमें उचित सुधार न होने के कारण अर्थव्यवस्था और अधिक खराब होती चली गई। इनकी प्रमुख आर्थिक समस्याएँ निम्न हैं–

1. स्थानान्तरित कृषि की समस्या- स्थानान्तरित कृषि कुछ जनजातियों की विशेषता रही है। इस तरह की कृषि में सर्वप्रथम वे जंगलों में आग लगा देते हैं। आग लगे क्षेत्र पर कृषि करते हैं। जब कुछ समय के बाद वह क्षेत्र कृषि योग्य नहीं रहता, तो उसे छोड़कर फिर वे किसी अन्य क्षेत्र पर इसी प्रकार की कृषि करते हैं। यद्यपि इस तरह की कृषि में उपज अधिक नहीं होती, भूमि कटाव बढ़ जाता है तथा स्थायी जीवन संभव नहीं, इसके बावजूद वे परम्परागत रूप में इसे छोड़ना नहीं चाहते, परंतु उन्हें कानून के द्वारा उसे छोड़ने के लिए बाध्य किया गया। इसके चलते उन्हें एक नवीन समस्या का सामना करना पड़ा।

2. भूमि-सम्बन्धी समस्या- जनजातियों का जंगलों के एक बड़े भाग पर लंबे समय से अधिकार रहा। वे जंगलों की उपज का अपनी इच्छानुसार उपभोग करते रहे। सरकारी व्यवस्था ने उनके इस अधिकार को समाप्त किया। इससे उन्हें जंगलों से मिलने वाले लाभ समाप्त हुए, जिसका असर उनकी अर्थव्यवस्था पर पड़ा। इनके पास सीमित मात्रा में ही भूमि रह गई तथा सीमित मात्रा में ही वे जंगलों का लाभ ले सकते थे।

3. ऋणग्रस्तता की समस्या- व्यापारियों, साहुकारों एवं सूदखोरों आदि का जनजातीय क्षेत्रों में आगमन हुआ। वे इन जनजातियों को रूपया सूद पर दिए। एक तरफ मनमाना सूद कमाये और दूसरी तरफ कर्जा न दे सकने की स्थिति में जनजातियों की भूमि हड़पना प्रारंभ किए। इनका ऋण पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

4. औद्योगिक श्रमिकों की समस्या- कारखानों, चाय बागानों एवं खानों में कार्यरत जनजातीय श्रमिकों की समस्याएँ

अलग तरह की हैं। एक तरफ, उन्हें कम वेतन दिया जाता है, दूसरी तरफ, ज्यादा-से-ज्यादा काम लिया जाता है। साथ ही अशिक्षित होने के कारण जनजातीय श्रमिक औद्योगिक क्षेत्रों की कुरीतियों- मदिरा एवं वेश्या-गमन को अपनाते हैं, जो अन्य अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता है।[1]

(2) सामाजिक समस्याएँ

जनजातियों के बाहरी लोगों के साथ सम्पर्क के परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हुई। बाहरी लोगों के साथ सम्पर्क में दो प्रमुख रहे- ईसाई मिशनरियाँ और हिन्दू। इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप उनके प्रमुख सामाजिक समस्याएँ निम्न हैं–

1. बाल-विवाह- हिन्दुओं के सम्पर्क में आकर जनजातियों ने बाल-विवाह प्रथा को स्वीकारा। जनजातियों में विवाह युवावस्था में होते थे, जो अब कम आयु में होने लगे। यह बाल-विवाह अन्य अनेक समस्याओं को जन्म देता है।

2. कन्या-मूल्य- इन सभ्य समाजों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप एक तरफ कन्या मूल्य में मुद्रा का प्रचलन आया और दूसरी तरफ कन्या मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके चलते अनेक लड़कियाँ अविवाहित रह जाती हैं। इस स्थिति से बचाव के लिए जनजातियों में अपहरण-विवाह का प्रचलन था, जिसे कानून द्वारा बन्द कर दिया गया। इससे अनैतिकता एवं ऋणग्रस्तता का विकास हुआ।

3. युवागृहों का पतन- जनजातियों में युवागृह एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में रही, जहाँ युवक-युवतियाँ सामाजिक, आर्थिक एवं मनोरंजन की शिक्षाएँ प्राप्त करते थे। सभ्य समाजों के सम्पर्क के फलस्वरूप ये अपने इस संस्था से दूर होते चले गए। जहाँ यह संस्था है भी, वह मृतप्राय ही है। जनजातियों को सीख की एक संस्था का नष्ट होने से उनके सामूहिकता को क्षति पहुँची।

4. पारिवारिक क्षति- जनजातियों में सामाजिक गतिशीलता का विकास सम्पर्क के कारण हुआ है। जब जनजातीय लोग औद्योगिक एवं नगरीय क्षेत्रों में रोजगार के लिए आते हैं तो पूरे परिवार का साथ आना संभव नहीं होता। वे अकेले ही आते हैं। नए वातावरण में परिवार के अभाव में अक्सर वे गन्दी आदतों का शिकार हो जाते हैं। जुआ एवं शराब एवं परस्त्री-गमन आदि उनके मनोरंजन के साथ साधन बन जाते हैं। इससे सम्बन्धित परिवार को काफी क्षति पहुँचती है।[2]

(3) सांस्कृतिक समस्याएं

जनजातियों की सांस्कृतिक समस्याएं जो हैं, वे मूलतः बाहरी लोगों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप कही जाती हैं। मनुष्य का स्वभाव है कि जिस संस्कृति में वह पैदा होता है, पलता है, उसी में सुख मिलता है। लेकिन इच्छा से या अनिच्छा से जो जनजातियाँ ईसाई या हिन्दू बने, वे समझे कि वे अपनी हीनता को दूर कर रहे हैं, परन्तु उनके सम्मुख और समस्या उस खड़ी हुई। जनजातियों की प्रमुख सांस्कृतिक समस्याएं निम्न हैं–

1. अभियोजन की समस्या : जब अंग्रेज थे तब जनजातियों उनके सम्पर्क में गए। फिर वे ईसाई के सम्पर्क आए तथा उनका सम्पर्क हिन्दू से भी बना। इस सम्पर्क में कुछ जनजातियों अपना रहन-सहन उत्पन्न कर दी। वे न इधर के रहे और न उधर के। जनजाति के लोग उन्हें इसलिए घृणा की दृष्टि से देखने लगे क्योंकि उन्होंने अपने पूर्वजों के संस्कारों को छोड़ दिया। दूसरी ओर हिन्दू एवं ईसाई उन्हें सदा सन्देह की दृष्टि से देखते रहे और उन्हें अपने में खपाने को तैयार नहीं हुए।

2. भाषाई समस्या : सांस्कृतिक और भाषा में गहरा सम्बन्ध है। जिस संस्कृति के जो मूल्य हैं, सम्बन्धित भाषा में उन मूल्यों के लिए शब्द होते हैं। भाषा संस्कृति के मूल्यों को अभिव्यक्त करने का एक साधन है। बाह्य संस्कृतियों के सम्पर्क में कुछ जनजातियाँ अपनी भाषा छोड़कर दूसरी भाषाओं को अपना लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि नवीन भाषाओं के शब्द संस्कृति के जिन मूल्यों को अभिव्यक्त करते थे, उनसे जनजाति के लोग अनभिज्ञ थे इसलिए ये नवीन भाषाएँ उनके

लिए मूल्याकंनहीन हो गई। इससे उनके जीवन में सांस्कृतिक दृष्टि से एक खाई बनी एवं उनके जीवन में एक शून्य पैदा हो गया।

3. जनजातीय संस्कृति का पतन : ईसाई और हिन्दू के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप जनजातियों में अपनी संस्कृति के प्रति आस्था के भाव उत्पन्न हुए। वे अपनी संस्कृति को छोड़कर दूसरी संस्कृति का अनुकरण करने लगे। इससे उनके आदर्शों, मूल्यों और व्यवहार प्रतिमानों में बहुत से परिवर्तन हुए। दूसरी संस्कृतियों से प्रभावित जनजातियों और मूल जनजातियों में दूरी बढ़ी। इससे एक ओर सांस्कृतिक संघर्ष की समस्या हुई, तो दूसरी ओर उनकी ललित कलाएँ, संगीत, नृत्य एवं नक्काशी के कार्य पतन की ओर बढ़े।

4. धार्मिक विरोध : ईसाई एवं हिन्दू के सम्पर्क में कुछ जनजातियाँ ईसाई धर्म को स्वीकारा और कुछ ने हिन्दू धर्म को। इस धर्म परिवर्तन ने एक ओर जनजातीय धार्मिक एकता को नष्ट किया, तो दूसरी ओर एक ही जनजाति में तीन धर्म को मानने वाले देखे जा सकते हैं– हिन्दू धर्म को मानने वाले जनजाति, ईसाई धर्म को मानने वाले जनजाति और जनजातीय धर्म को मानने वाले जनजाति। इससे उनके बीच धार्मिक विरोध बढ़े हैं। जिसका जनजातीय जीवन पर कुप्रभाव देखा जा सकता है।[3]

(4) स्वास्थ्य की समस्याएं

जनजातियों की स्वास्थ्य की समस्याएं एक ओर गरीबी एवं दुर्गम निवास का परिणाम है, तो दूसरी ओर गैर-जनजातियों के साथ सम्पर्क का परिणाम है। साथ ही अज्ञानता एवं अन्धविश्वास भी उनके इस समस्या को बनाए हुए हैं। जनजातियों की प्रमुख स्वास्थ्य की समस्याएं निम्न हैं–

1. वस्त्र की समस्या : सभ्य समाज के सम्पर्क के परिणामस्वरूप वस्त्र की समस्या उनके सम्मुख आई। पहले वे नंगे रहा करते थे। फिर छाल एवं खाल का उपयोग करने लगे। आज वे वस्त्र का उपयोग करते देखे जाते हैं। लेकिन गरीबी की स्थिति में वे जो वस्त्र पहनते हैं, वे उनके शरीर पर ही फट जाते हैं। यानि उनके वस्त्र शरीर को ढँके-ढँके गन्दे हो जाते हैं, जो बीमारियों का कारण बनते हैं।

2. भोजन और पानी की समस्या : जनजातियों का निवास-स्थान प्रायः तराई क्षेत्रों, घने जंगलों और दुर्गम पहाड़ियों में है। इन क्षेत्रों का खाद्य पदार्थ अत्यधिक असंतुलित है। गन्दी मछली एवं चावल उनका मुख्य आहार है। इन क्षेत्रों में पीने योग्य पानी का अभाव है। जीने के लिए गन्दे पानी का सहारा लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उनका स्वास्थ्य सदैव खराब रहा करता है।

3. चिकित्सा की समस्या : जनजातियों का निवास स्थान ऐसे क्षेत्रों में है जहाँ प्रायः महामारियों का प्रकोप रहता है। साथ ही मलेरिया, पोलियो, चेचक, चर्म रोग, रोहे आदि बीमारियों इन क्षेत्रों में विशेष रूप से पायी जाती हैं। एक ओर इन क्षेत्रों में चिकित्सा का अभाव है, तो दूसरी तरफ इनकी चिकित्सा व्यवस्था अन्धविश्वास पर आधारित है। आज भी ये औषधियों के सेवन पर विश्वास न करे, पुजारी एवं झाड़-फूँक में विश्वास रखती है।

4. शराब का अभ्यस्त : जनजातियों के द्वारा महुआ, चावल, ताड़, गुड़ आदि की बनी शराब का प्रचलन रहा। परन्तु सभ्य समाज के सम्पर्क में ये अंग्रेजी शराब के अभ्यस्त हो गए, जो स्वास्थ्य के लिए काफी हानिकारक रहे। आज जनजातियों में शराब का सेवन निरंतर बढ़ता जा रहा है। पुरूष ही नहीं, स्त्रियाँ भी इसका सेवन करती हैं। इससे स्त्री एवं पुरूष दोनों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव देखा जाता है।[4]

(5) शिक्षा की समस्या

जनजातियों में शिक्षा का अभाव है। यही कारण है कि आज भी वह गैर-जनजातियों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। अशिक्षा के कारण वह अनेक तरह के अन्धविश्वासों से घिरा हुआ है। जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं

है। जहाँ व्यवस्था है भी, वहाँ बच्चे जाते ही नहीं। उनके माँ-बाप उन्हें शिक्षित बनाने में दिलचस्पी नहीं रखते। साथ ही वहाँ शिक्षा जनजातीय भाषा में न होने के कारण लोकप्रिय नहीं बन सकी। ईसाई मिशनरी के द्वारा जनजातियों को शिक्षित करने का कार्य हुआ है। इसके दो परिणाम निकले। एक तो पढ़े-लिखे जनजातियाँ अपनी ही संस्कृति से दूर होते चले। दूसरा, ईसाई मिशनरी के प्रभाव में बहुत-सी जनजाति ईसाई धर्म को स्वीकारा, जो कि ईसाई मिशनरी का विकास का उद्देश्य रहा। इससे जनजातियों के बीच अपने में एक खाई का विकास हुआ। जनजातियों में शिक्षा का न होना उनकी प्रगति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है।[5]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जनजातियाँ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृति, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि समस्याओं से ग्रसित हैं। इनकी समस्याओं का समुचित निदान के बिना स्वस्थ भारत की कल्पना नहीं की जा सकती। जनजातियाँ अनेक समस्याओं से ग्रसित हैं। इन समस्याओं को दूर किए बिना प्रजातंत्र की सफलता संभव नहीं। इनकी समस्याएँ दूर हों, इस ओर सरकार का भी ध्यान है, समाज वैज्ञानिकों एवं सुधारकों का भी। सर्वप्रथम यहाँ सरकारी प्रावधान की चर्चा की जाएगी। फिर समाज वैज्ञानिकों के विचार को प्रस्तुत किया जाएगा और अन्त में समाधान के कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जायेंगे।

संवैधानिक प्रावधान

भारत के नए संविधान में जनजातियों के लिए कुछ खास सुविधाएँ प्रदान की गई है। समस्त प्रदेशों से जनजातियों की अनुसूची तैयार की गई है। उनके हितों को सुरक्षित रखने तथा उन्हें उन्नत बनाने हेतु आवश्यक संरक्षण प्रदान किए गए हैं। इनके प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

(1) संविधान के अनुच्छेद 23 के अनुसार किसी व्यक्ति से जबर्दस्ती काम लेना गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। इससे जनजातियों से जबर्दस्ती मजदूरी का काम लिया जाना बन्द हुआ।

(2) संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार अल्पसंख्यक जनता की संस्कृति की राज्य द्वारा रक्षा का आश्वासन दिया गया। जनजातियों की अपनी संस्कृति है, इससे उन्हें अपनी संस्कृति की रक्षा करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

(3) संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य दुर्बलतर की शिक्षा एवं आर्थिक हितों की रक्षा करेगा तथा उन्हें शोषण से रक्षा करेगा। इससे जनजातियों को शिक्षा, आर्थिक उन्नति और शोषण से बचने का मौका मिला।

(4) संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार बिहार, मध्य प्रदेश, तथा उड़ीसा में जनजातियों के कल्याण के लिए एक अलग मंत्रालय की स्थापना की व्यवस्था की गई।

(5) संविधान के अनुच्छेद 244 के अनुसार संविधान में दो शिड्यूल संलग्न किए गए- एक पाँचवीं शिड्यूल है और दूसरा छठा। ये दोनों ही शिड्यूल में जनजातियों के प्रशासन की व्यवस्था बतलाई गई है।

(6) संविधान के अनुच्छेद 275 के अनुसार जनजातियों के कल्याण एवं सुशासन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को अनुदान देने की व्यवस्था की गई।

(7) संविधान के अनुच्छेद 325 के अनुसार जनजातीय समुदाय मतदान के अधिकार से वंचित नहीं रहेंगे।

(8) संविधान के अनुच्छेद 330 और 332 के अनुसार जनजातियों के लिए लोक सभा और राज्य-विधान सभाओं में कुछ सीटें सुरक्षित रखी गई।

(9) संविधान के अनुच्छेद 335 के अनुसार जनजातियों को नौकरी के लिए विशेष प्रावधान है।

(10) संविधान के अनुच्छेद 338 के अनुसार जनजातियों के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक विशेष पदाधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है। इसका कार्य जनजातियों के हित के लिए सुझाव देना है।

(11) संविधान के अनुच्छेद 339 के अनुसार राष्ट्रपति जनजातियों के क्षेत्रों के प्रशासन तथा उनके कल्याण कार्यों की एक रिपोर्ट माँग सकता है।

(12) संविधान के अनुच्छेद 340 के अनुसार राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि पिछड़े वर्गों की स्थिति की जाँच

एवं उन्नति के लिए सुझाव प्रस्तुत करने हेतु एक आयोग का गठन करें।

(13) संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार राष्ट्रपति को राज्यपालों एवं राजप्रमुखों की सलाह से किसी भी जनजाति को अनुसूचित जनजाति घोषित करने का अधिकार है।[6]

उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों का मूल उद्देश्य जनजातियों की समस्याओं का समाधान करना और उन्हें बेहतर स्थिति प्रदान करना रहा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उप्रेती, हरिश्चन्द्र : भारतीय जनजातियाँ, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
2. भारद्वाज, ए०एन० : प्रॉब्लम्स ऑफ शिड्यूल कास्ट एण्ड शिड्यूल ट्राईब्स इन इंडिया, नई दिल्ली।
3. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ : भारतीय समाज एवं संस्कृति, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली-7.
4. शर्मा, विमला चरण एवं विक्रम, कीर्ति : झारखण्ड की जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची।
5. शर्मा, श्रीनाथ : जनजातीय समाजशास्त्र, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
6. हसनैन, नदीम : जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

डॉ. कुँअर बेचैन एवं दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में राजनीतिक संवेदना : तुलनात्मक दृष्टि

प्रशांत चौरसे
ग़ज़लकार एवं शोधार्थी (हिन्दी)
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर

सारांश

प्रस्तुत शोध-आलेख में स्वतंत्रता के बाद की भारतीय राजनीति, लोकतंत्र के बदलते स्वरूप और आम जनमानस के मोहभंग का डॉ. कुँअर बेचैन एवं दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों के माध्यम से तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों रचनाकारों ने आज़ादी के बाद सत्ता द्वारा किए गए झूठे वादों, चुनावी छल, आर्थिक विषमता और आम नागरिक की विवशता को अपनी ग़ज़लों का केंद्रीय विषय बनाया है। जहाँ दुष्यंत कुमार की राजनीतिक संवेदना आक्रामक, तीखे व्यंग्य और सीधे जन-विद्रोह के रूप में प्रकट होती है, वहीं डॉ. कुँअर बेचैन मानवीय पीड़ा, सूक्ष्म प्रतीकात्मकता और गीतात्मकता के साथ व्यवस्था के दमनकारी चरित्र को उजागर करते हुए इंकलाब का आह्वान करते हैं। यह आलेख यह सिद्ध करता है कि दोनों ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल में पारंपरिक रोमानियत से हटकर शोषित वर्ग की आवाज़ और राजनीतिक चेतना भी प्रकट की है।

मुख्य शब्द—राजनीतिक संवेदना, मोहभंग, जन प्रतिरोध, हिंदी ग़ज़ल, लोकतांत्रिक विसंगतियाँ, दुष्यंत कुमार, डॉ. कुँअर बेचैन, शोषण, व्यवस्था परिवर्तन, तुलनात्मक अध्ययन।

स्वाधीनता के बाद भारतीय जनमानस ने जिस लोकतांत्रिक समता, न्याय और समृद्धि का स्वप्न देखा था, वह कुछ ही दशकों में व्यवस्था के स्वार्थ, भ्रष्टाचार और दमनकारी नीतियों की भेंट चढ़ गया। संविधान के आदर्शों और ज़मीनी हकीकत के बीच की इसी खाई ने तत्कालीन साहित्यकारों को व्यवस्था के विरुद्ध कलम उठाने के लिए प्रेरित किया। हिंदी ग़ज़ल को दरबारी मिजाज़ और पारंपरिक रोमानियत से मुक्त कर सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष और जन-आंदोलन का औजार बनाने में दुष्यंत कुमार और डॉ. कुँअर बेचैन का योगदान मील का पत्थर है। प्रस्तुत शोध-आलेख में दोनों ग़ज़लकारों की रचनाओं में निहित राजनीतिक संवेदना, मोहभंग, जन-उदासीनता और प्रतिरोध के स्वरों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

स्वाधीनता के बाद मोहभंग और छली गई रोशनी

दोनों ही ग़ज़लकारों के यहाँ आज़ादी के बाद का मोहभंग सबसे मुखर होकर सामने आता है। सत्ता द्वारा किए गए वादे किस तरह जनता के लिए धोखा साबित हुए, इसका मार्मिक चित्रण दोनों के काव्य में दिखता है। दुष्यंत कुमार जहाँ व्यवस्था के बुनियादी वादों की विफलता को व्यंग्य के साथ उद्घाटित करते हैं—

"कहाँ तो तय चिरागाँ हर एक घर के लिए
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।"[1]

वे इस आज़ादी को एक छलावा मानते हुए स्पष्ट कहते हैं–

"ये रोशनी है हकीकत में एक छल लोगों,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगों।"[2]

वहीं डॉ. कुँअर बेचैन विभाजन की हिंसा और स्वतंत्रता के बाद के खोखले संरक्षण को शीशे के शामियाने के रूप में देखते हैं, जो रक्षा करने के बजाय आग और तेज़ कर देता है–

"तै तो यह था जुल्म के नाखून काटे जायेंगे
लोग नन्हीं तितलियों के पर कतर कर आ गये
धूप निकली, तो हमें उसने भी अन्धा कर दिया
कैसे कह दें, हम अँधेरों से उबरकर आ गये।"[3]

सत्ता का दोहरा चरित्र और चुनावी सियासत

राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी का अंतर दोनों रचनाकारों की दृष्टि में लगातार खटकता है। दुष्यंत कुमार सियासत की चालबाजियों और संवेदनहीनता को रेखांकित करते हुए आम आदमी को सतर्क करते हैं कि राजनीति आम मानवीय संवेदना से परे हो चुकी है–

"मस्लहत आमेंज़ होते हैं सियासत के कदम,
तू न समझेगा सियासत तू अभी इंसान है।"[4]

इधर डॉ. कुँअर बेचैन ने भी राजनीति के इस छद्म और दोहरे चेहरे को उजागर करते हुए लिखा है कि यह व्यवस्था बाहर से शांत कबूतर और भीतर से शिकारी बाज जैसी है–

"यह कौन सा पंछी है, इस दौर में भी जिसका
कुछ तो है कबूतर का, कुछ बाज का चेहरा है।"[5]

नेताओं के लिए जनता का दर्द केवल चुनाव जीतने का माध्यम है। कुँअर बेचैन इस अवसरवादिता पर तीखा प्रहार करते हुए कहते हैं–

"लोगों के दर्द-ओ-गम भी सियासत के ज़हन में
झण्डों की तरह एक दिन फहरे-उतर गये।"[6]

आम आदमी की बेबसी, विस्थापन और लोकतंत्र का खोखलापन

प्रजातंत्र में जनता की स्थिति मात्र वोट बैंक और बेबस मोहरे जैसी होकर रह गई है। दुष्यंत कुमार जनता की इस उपेक्षित और दयनीय स्थिति को अत्यंत आक्रामक और कड़वे लहजे में दर्ज करते हैं–

"जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,
हम नहीं है आदमी हम झुनझुने हैं।"[7]

वे संसद में आम जनता की बुनियादी भूख और रोटी के मसले को केवल बहस का तमाशा बनाए जाने पर व्यंग्य करते हैं–

"भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में हैं ज़ेरे बहस ये मुद्दा।"[8]

दूसरी ओर, डॉ. कुँअर बेचैन इसी मानवीय पीड़ा और आर्थिक विषमता को झोपड़ी और महल के शोषणकारी संतुलन से जोड़कर देखते हैं–

"जहाँ इन्सान की औकात से दौलत बड़ी होगी
महल बनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोपड़ी होगी
जरा सोचों कि मुंह तक रोटियाँ क्यों नहीं आई
तुम्हारी ही कलाई में कहीं कुछ गड़बड़ी होगी।"[9]

व्यवस्था की दमनकारी क्रूरता का पर्दाफाश करते हुए वे लिखते हैं–

"हमारे हाथ तो कट ही चुके हैं
सियासत अब गला भी चाहती है।"[10]

जन उदासीनता बनाम क्रांति और बदलाव का आह्वान

दुष्यंत कुमार और डॉ. कुँअर बेचैन दोनों ही केवल व्यवस्था को कोसने तक सीमित नहीं रहते, बल्कि समाज की चुप्पी और निष्क्रियता पर भी चोट करते हैं। दुष्यंत कुमार जनता के भीतर फैले भय और उदासीनता पर क्षोभ प्रकट करते हैं–

"यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।"[11]

वे झूठे रहनुमाओं के भरोसे न रहकर स्वयं आगे आने का आह्वान करते हैं–

"रहनुमाओं की अदाओं पे फ़िदा है दुनिया,
इस बहकती हुई दुनिया को संभालों यारों।"[12]

इसी प्रकार डॉ. कुँअर बेचैन भी निराशा में उम्मीद के द्वार खुले रखने की बात करते हैं और अंततः दमनकारी सत्ता के विरुद्ध स्पष्ट इंकलाब का झंडा बुलंद करते हैं–

"इस वक्त अपने तेवर, पूरे शबाब पर हैं
सारे जहाँ से कह दो हम इंकलाब पर हैं
अपनी लड़ाइयाँ हैं, अब तो उसी महल से
अब सुर्खियाँ हमारी, जिसके गुलाब पर हैं
कोई मिटा न पाया हमको 'कुँअर' जहाँ में
हम दस्तखत समय की दिल की किताब पर हैं।"[13]

तुलनात्मक दृष्टि एवं निष्कर्ष

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो दुष्यंत कुमार की राजनीतिक संवेदना अधिक आक्रामक, सपाट, व्यंग्यात्मक और सीधे प्रहार करने वाली है। उनकी भाषा में आक्रोश की तीव्रता और व्यवस्था को झकझोर देने वाला सीधा तेवर दिखाई देता है। इसके विपरीत, डॉ. कुँअर बेचैन की राजनीतिक संवेदना में यथार्थ के तीखेपन के साथ-साथ गहरी गीतात्मकता, सहज मानवीय पीड़ा और प्रतीकात्मकता का संतुलन है। जहाँ दुष्यंत कुमार व्यवस्था से सीधे टकराते हुए पाठक को सड़क पर उतरने के लिए उकसाते हैं, वहीं कुँअर बेचैन घायल संवेदना के स्वर में व्यवस्था के स्याह पक्षों को उजागर करते हुए क्रांति और मानवीय एकात्मता का निर्माण करते हैं। अंततः दोनों ही ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल को शोषित वर्ग की पुकार और राजनीतिक प्रतिरोध का सशक्त माध्यम बनाकर लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा का ऐतिहासिक कार्य किया है।

संदर्भ

1. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली-2, पृ.स. 261
2. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली-2, पृ.स. 271

3. कुँअर बेचैन, शामियाने कांच के, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, 1983, पृष्ठ 78
4. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली-2, पृ.स. 288
5. कुँअर बेचैन, महावर इंतजारों का, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, 1983, पृष्ठ 28
6. कुँअर बेचैन, शामियाने कांच के, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, 1983, पृष्ठ 57
7. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली-2, पृ.स. 280
8. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली-2, पृ.स. 266
9. कुँअर बेचैन, शामियाने कांच के, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, 1983, पृष्ठ 43
10. कुँअर बेचैन, ...तो सुबह हो, ग़ज़ल संख्या 8
11. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली-2, पृ.स. 262
12. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली-2, पृ.स. 283
13. कुँअर बेचैन, शामियाने कांच के, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, 1983, पृष्ठ 44

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

निपुण भारत मिशन के अंतर्गत संचालित मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम द्वारा पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर पर अध्यनरत बालकों के भाषा एवं संख्यात्मक उपलब्धि का अध्ययन

डॉ.(प्रो.) अंकुश शर्मा
निर्देशक, जगन्नाथ विश्वविद्यालय जयपुर
(शिक्षा विभाग)

नम्रता भारद्वाज
शोधार्थी, जगन्नाथ विश्वविद्यालय जयपुर

सारांश

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम (FLN) का पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत बालकों की भाषा एवं संख्यात्मक उपलब्धि को जानने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों को प्राप्त करने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। प्रदतों के विश्लेषण के क्रम में प्रतिगमन विधि का परिकलन किया गया है। (FLN) कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर के बालकों की भाषा एवं संख्यात्मक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया है।

शब्द कुंजी : निपुण भारत मिशन, पूर्व प्राथमिक स्तर, प्राथमिक स्तर, भाषा एवं संख्यात्मक उपलब्धि।

सम्प्रत्यात्मक पृष्ठभूमि

शिक्षा का महत्व युगो युगो से चला आया है। शिक्षा के अभाव में मानव पशु के समान जीवन व्यतीत करता है। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है, जो मानव एवं पशु में अंतर कर पता है। शिक्षा का प्रचलन हर काल में अलग-अलग रूपों में होता आया है। शिक्षा मानव को वह सभी अधिकार दिलाती हैं, जो उसके व्यक्तित्व निर्माण के लिए आवश्यक है। शिक्षा व्यक्ति के विकास का महत्वपूर्ण साधन है। षशिक्षा सभी के लिए है। इसी को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा कई शिक्षा नीतियां बनाई गई। पहली शिक्षा नीति 1962 में बनी दूसरी शिक्षा नीति 1986 में बनी और तीसरी शिक्षा नीति 2020 में बनाई गई। इन सभी नीतियों को लागू करने का एकमात्र उद्देश्य बालकों का समग्र विकास करना है। नई शिक्षा नीति इस बात पर बल देती है कि देश का प्रत्येक बच्चा साक्षर बने। नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत निपुण भारत मिशन कार्यक्रम की शुरुआत की गई। निपुण भारत मिशन कार्यक्रम एक राष्ट्र मिशन है।इस कार्यक्रम के अंतर्गत मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक (FLN) कार्यक्रम की शुरुआत की गई। इस कार्यक्रम का उद्देश्य बालक का बुनियादी ढांचा मजबूत करना है। जब तक बालक का पूर्व एवं प्राथमिक स्तर मजबूत नहीं होगा तब तक वह भावी शिक्षण के लिए तैयार नहीं हो पाएगा। मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य खेलकूद एवं गतिविधि आधारित रचनात्मक क्रियाओ को पढ़ने से जोड़कर पढ़ाई को रोचक

बनाना है। शिक्षक के दौरान घरेलू भाषा को जोड़कर एक पारिवारिक व समावेशी वातावरण का निर्माण करना है, बच्चों को संख्या, माप वआकार की जानकारी करा ने के लिए उनमें तार्किक समझ का विकास करना जिससे बालक किताबी ज्ञान से ऊपर उठकर क्रियात्मक जानकारी हासिल कर सके। मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम के दौरान शिक्षण कराने से बालकों को कई लाभ प्राप्त होते हैं, जैसे बालकों की आगामी शिक्षा व जीवन की नींव मजबूत होना, नैतिकता का विकास होना, संख्यात्मक कौशल के माध्यम से बालकों की चिंतन एवं तार्किकता का विकास होना।

शीर्षक : 'निपुण भारत मिशन कार्यक्रम के अंतर्गत संचालित मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम द्वारा पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर पर अध्यनरत बालकों के भाषा एवं संख्यात्मक उपलब्धि का अध्ययन'

अध्ययन के उद्देश्य

पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों की भाषात्मक उपलब्धि का अध्ययन करना।
पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों की संख्यात्मक उपलब्धि का अध्ययन करना।
प्राथमिक स्तर के बालको की भाषात्मक उपलब्धि का अध्ययन करना।
प्राथमिक स्तर के बालकों की संख्यात्मक उपलब्धि का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों की भाषात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों की संख्यात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का प्राथमिक स्तर के बालकों के भाषात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का प्राथमिक स्तर के बालको के संख्यात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध कार्य में आंकड़ों के एकत्रीकरण हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श

जयपुर जिले के सांगानेर ब्लॉक के महात्मा गांधी मॉडर्न विद्यालयमें से 300 पूर्व प्राथमिक स्तर के एवं 300 प्राथमिक स्तर की बालकों का लॉटरी विधि के माध्यम से चयन किया गया है।

उपकरण

आंकड़ों के परीक्षण हेतु शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी विधियां

प्रस्तुत शोध कार्य में मध्यमान, प्रतिगमन आदी सांख्यिकी गणनाए की गई है।

तथ्यों का संकलन, विश्लेषण एवं व्याख्या

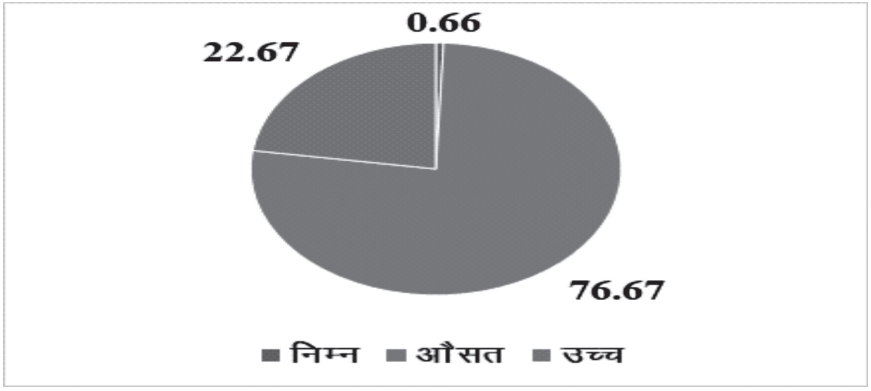
प्रस्तुत शोध कार्य में आंकड़ों का संकलन करने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया है। आंकड़ों का विश्लेषण मध्यमान व प्रतिगमन विधि के द्वारा संपन्न किया गया है।

परिकल्पना 1

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों की भाषात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी संख्या-1

प्रतिगमन			प्रतिगमन की सार्थकता			
						P Value
उच्च	औसत	निम्न	उच्च	औसत	निम्न	
22.67	76.67	0.66	17.49 से 27.85 तक	71.49 से 81.85 तक	0.66 से 0.66 तक	2.25



उक्त सारणी में मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों के भाषात्मक उपलब्धि के प्राप्तांकों का प्रतिगमन एवं प्रतिगमन की सार्थकता को गणना की है जिसके अनुसार 17.49 से 27.85 प्रतिगमन बालकों के भाषात्मक उपलब्धि औसत से उच्च स्तर पर पायी गयी। 71.49 से 81.85 प्रतिगमन बालको का औसत तथा 0.66 से 0.66प्रतिगमन बालकों की औसत से निम्न पायी गयी। अतः इस संदर्भ में उक्त शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है जबकि वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

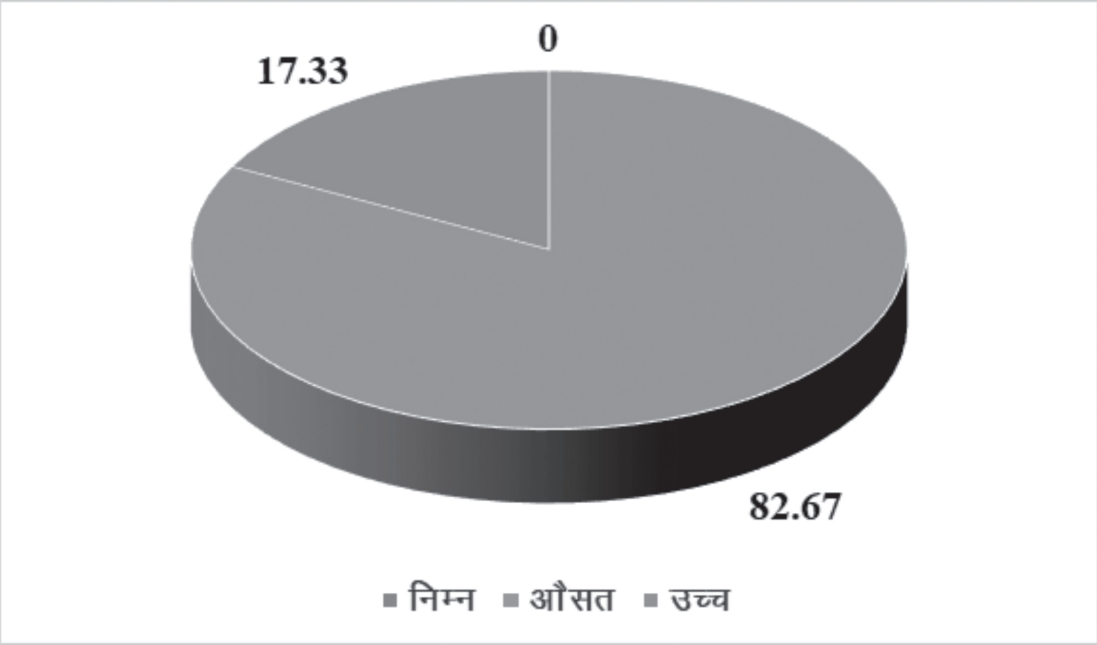
परिकल्पना-2

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों की संख्यात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी संख्या-2

प्रतिगमन			प्रतिगमन की सार्थकता			
						P Value
उच्च	औसत	निम्न	उच्च	औसत	निम्न	
17.33	82.67	0.00	14.05 से 20.61 तक	79.39 से 85.95 तक	0.00 से 0.00 तक	2.14

- 0.05 स्तर पर स्वीकार–अगर प्रतिगमन मान >1.98 है, तो परिकल्पना स्वीकार।
- 0.01 स्तर पर अस्वीकार–अगर प्रतिगमन मान < 2.03 है, तो परिकल्पना अस्वीकार।



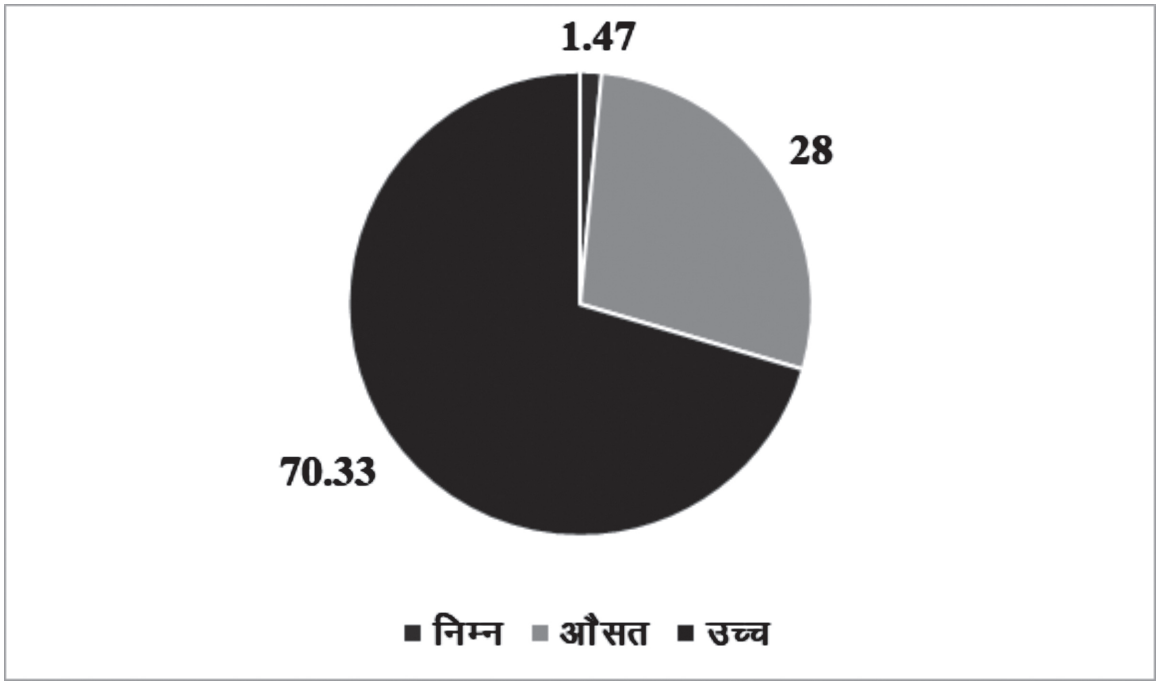
उक्त सारणी में मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों के संख्यात्मक उपलब्धि के प्राप्तांकों का प्रतिगमन एवं प्रतिगमन की सार्थकता को गणना की है जिसके अनुसार 14.05 से 20.61 प्रतिगमन बालकों के भाषात्मक उपलब्धि औसत से उच्च स्तर पर पायी गयी। 79.39 से 85.95 प्रतिगमन बालको का औसत तथा 0.0 से 0.0 प्रतिगमन बालकों की औसत से निम्न पायी गयी। अतः इस संदर्भ में उक्त शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है जबकि वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना-3

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का प्राथमिक स्तर के बालकों कीभाषात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी संख्या-3

प्रतिगमन			**प्रतिगमन की सार्थकता**			
						P Value
उच्च	औसत	निम्न	उच्च	औसत	निम्न	
70.33	28.00	1.47	66.73 से 74.61 तक	24.11 से 31.89 तक	0.34 से 2.32 तक	2.78



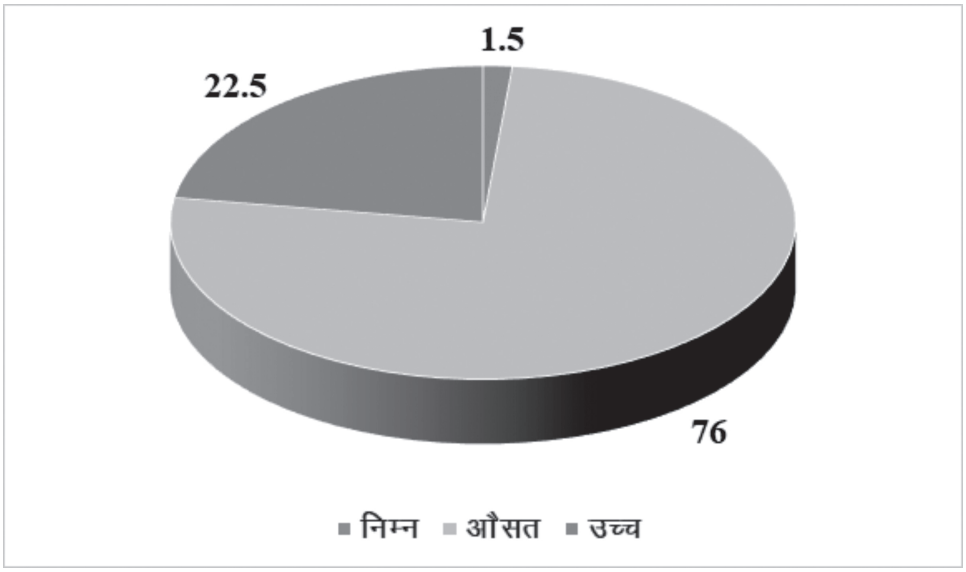
उक्त सारणी में मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का प्राथमिक स्तर के बालकों के भाषात्मक उपलब्धि के प्राप्तांकों का प्रतिगमन एवं प्रतिगमन की सार्थकता की गणना की है जिसके अनुसार 66.73 से 74.61 प्रतिगमन बालकों के भाषात्मक उपलब्धि औसत से उच्च स्तर पर पायी गयी। 24.11 से 31.89 प्रतिगमन बालकों का औसत तथा 0.34 से 2.32 प्रतिगमन बालकों की औसत से निम्न पायी गयी। अतः इस संदर्भ में उक्त शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है जबकि वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का प्राथमिक स्तर के बालकों की संख्यात्मक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

सारणी संख्या-4

प्रतिगमन			**प्रतिगमन की सार्थकता**			
						P Value
उच्च	औसत	निम्न	उच्च	औसत	निम्न	
22.50	76.00	1.50	18.77 से 29.23 तक	70.77 से 81.23 तक	0.00 से 0.00 तक	2.80

- 0.05 स्तर पर स्वीकार –अगर प्रतिगमन मान > 1.98 है, तो परिकल्पना स्वीकार।
- 0.01 स्तर पर अस्वीकार –अगर प्रतिगमन मान < 2.03 है, तो परिकल्पना अस्वीकार।



उक्त सारणी में मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का प्राथमिक स्तर के बालकों के संख्यात्मक उपलब्धि के प्राप्तांकों का प्रतिगमन एवं प्रतिगमन की सार्थकता की गणना की है जिसके अनुसार 18.77 से 29.23 प्रतिगमन बालकों के भाषात्मक उपलब्धि औसत से उच्च स्तर पर पायी गयी। 70.77 से 81.23 प्रतिगमन बालकों का औसत तथा 0.0 से 0.0 प्रतिगमन बालकों की औसत से निम्न पायी गयी। अतः इस संदर्भ में उक्त शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है जबकि वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष एवं परिणाम

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है की मूलभूत साक्षरता एवं संख्यात्मक कार्यक्रम का पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक स्तर के बालकों की भाषागत व संख्यात्मक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया है। सारणी संख्या 1 2 3 4 से विदित होता है कि (FLN) कार्यक्रम का प्रभाव पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर पर अधिक देखा गया है पूर्व प्राथमिक स्तर व प्राथमिक स्तर के बालकों की भाषात्मक उपलब्धि व संख्यात्मक उपलब्धि को सुदृढ़ करने के लिए शिक्षण प्रक्रिया को बाल केंद्रित, अनुभव आधारित व समस्या आधारित बनाया गया है जिससे भावी शिक्षण को मजबूत बनाया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, एस. के.(जनवरी -जून 2024) भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका (वॉल्यूम 45, अंक 1) लखनऊ : भारतीय शिक्षा शोध संस्थान।
2. के. अल्पना (फरवरी 2024) सांस्कृतिक प्रवाह (वर्ष 11 अंक-1) अखिल भारतीय सांस्कृतिक समन्वय संस्थान।
3. मिश्रा. डी.(जून 2024) शृंखला (वॉल्यूम XI) कानपुर : सोशल रिसर्च फाऊंडेशन।
4. बुच, एम.बी. (1988,-92). फिफ्थ सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन (वॉल्यूम 11). न्यू दिल्ली : एनसीईआरटी
5. केला, एच. बी.(जुलाई -दिसंबर 2024) जर्नल ऑफ़ साइकोसोशल रिसर्च (वॉल्यूम 19 नं. 2) न्यू दिल्ली : प्रिंटर्स पब्लिकेशन वीवर्टी लिमिटेड।।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारतीय सिनेमा के महाकाव्यात्मक कैनवास पर इतिहास, दंतकथा और कल्पना का अंतर मिटाने वाली महागाथा 'मुग़ल-ए-आज़म'

पीयूष पुष्पम
हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी फिल्मों की दुनिया में आज तक जितनी भी कालजयी कृतियाँ रची गई हैं, उनमें से मुग़ल-ए-आज़म सबसे सफलतम फिल्मों की सूची में सबसे अग्रिम पंक्ति में मिलती है। सलीम और अनारकली की प्रेम-कथा ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित न होते हुए भी दुनिया की तमाम अमर प्रेम-कथाओं की सूची में सबसे ऊपर मिलती है और इसका श्रेय सिर्फ और सिर्फ प्रसिद्ध फ़िल्म निर्देशक करीमुद्दीन आसिफ (1922-1971), जिन्हें के. आसिफ के नाम से ज्यादा जाना जाता है को जाता है, जिन्होंने मुग़ल-ए-आज़म को एक सपने के रूप में देखा और उस सपने को साकार रूप देने में उन्होंने अहम भूमिका निभाई इसलिए भी मुग़ल-ए-आज़म उनकी सबसे प्रसिद्ध, प्रचलित, लोकप्रिय एवं सबसे सफल फिल्म मानी जाती है। सच में मुग़ल-ए-आज़म के. आसिफ का सपना ही था क्योंकि न जाने कितने निर्देशकों ने पहले भी सलीम और अनारकली को लेकर फिल्में बनाई लेकिन जितनी लोकप्रियता के. आसिफ द्वारा निर्देशित मुग़ल-ए-आज़म को मिली उतनी और किसी को नहीं। इसलिए यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि भारतीय सिनेमा के पटल पर आज तक जितनी भी कालजयी फिल्मों को रचा गया है उन सभी में 1960 में प्रदर्शित होने वाली फिल्म मुग़ल-ए-आज़म सर्वोत्तम फिल्मों की श्रेणी में मानी जाती है।

हम जानते हैं कि सिनेमा में हमें कई कलाओं का सम्मिश्रण मिल जाता है। सिनेमा कहानी है तो अभिनय भी है, गीत है तो संगीत भी है, नृत्य है तो थिरकन भी है, फोटोग्राफी है तो जीवंत विडियोग्राफी भी है, देशकाल वातावरण है तो खेल भी है और राजनीति के साथ-साथ धर्म, जाति, वैभव और अध्यात्म भी है और ये सभी कलाएँ अगर कहीं अपने सर्वोत्कृष्ट एवं अपने चरम रूप में उपस्थित हैं या यूँ कहें कि हमें देखने को मिलती हैं तो वह मुग़ल-ए-आज़म ही है इसलिए भी मुग़ल-ए-आज़म फिल्म की कथा इतिहास और दंतकथा के सम्मिश्रण से बने होने के बावजूद सिनेमा की दुनिया में अमर हो गई है। निर्देशक के. आसिफ ने मुगलिया सल्तनत के खूबसूरत ऐतिहासिक पटल पर प्रेम की एक काल्पनिक दंतकथा को रूहानी अंदाज़ में उकेरने का काम बड़े दिल से किया है। मूलतः मुग़ल-ए-आज़म की कहानी इतिहास और दंतकथाओं को मिलाकर रची गयी है। हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा शासक अकबर, जिसके चरित्र में व्याप्त उदारता, सरलता, सहजता, सहिष्णुता इत्यादि की बात इतिहास में बार-बार की जाती है और जिसे हम हिन्दुस्तान से मुहब्बत करने वाला महान शासक के नाम से भी जानते एवं मानते हैं। जब उसी महान अकबर को केंद्र में रखकर एक फिल्म बनती है तो हम पाते हैं कि फिल्म के निर्देशक के. आसिफ ने अकबर के चरित्र को इसी ताने-बाने में बुना है जिससे उसकी महानता में किसी तरह की कमी की कोई गुंजाइश न रह जाए। इसी कारण से यह फिल्म आज कालजयी एवं ऐतिहासिक मास्टरपीस साबित हुई है।

फिल्म निर्माण की शुरुआत 1950 में होती है लेकिन फिल्म को बनाने में लगभग 10 वर्षों का लंबा समय लगता है और फिल्म अंततः 1960 में दर्शकों के बीच आती है। दर्शकों के मध्य आते ही फिल्म अपने उम्मीद पर खरे उतरती है और दर्शकों का अपार प्रेम फिल्म को मिलता है। अपने भव्य सेट, शानदार अभिनय और अमर संगीत के कारण मुग़ल-ए-आज़म आज भी सिनेमा की दुनिया का मील का पत्थर मानी जाती है। प्रसिद्ध सिनेविद् जवरीमल्ल पारख फिल्म के संबंध में लिखते हैं कि, "मुग़ल-ए-आज़म जिस विराट महाकाव्यात्मक कैनवास को लेकर बनाई गई थी उसे प्रायः समझा ही नहीं गया। मुग़ल-ए-आज़म को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि हम इस बात को ध्यान में नहीं रखते कि यह फिल्म विभाजन की भयावह त्रासदी से उभरते देश के एक धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक राष्ट्र बनने के आरंभिक सालों की समानांतर रचना है। यह फ़िल्म इस नवजात राष्ट्र के सामने खड़ी चुनौतियों से एक लोकप्रिय दंतकथा के जरिए दो-चार होने का साहसपूर्ण प्रयत्न करती है। यह इस राष्ट्र के चरित्र की बुनियादी ताकतों और कमजोरियों को त्रासद प्रेमकथा के माध्यम से सामने लाती है।"

फिल्म को हम देखें तो इसकी शुरुआत ही हमारे देश के नक्शे से होती है और इस फिल्म में कथावाचक की भूमिका भी हिंदुस्तान ही निभाता है। हिंदुस्तान के मुख से जो निर्देशक के. आसिफ ने कहलवाया है, उससे अकबर की महानता और उसका हिंदुस्तान से लगाव साफ़-साफ़ झलकता है। इस वाक्य को महान अभिनेता अल्ताफ़ हुसैन ने आवाज़ दी थी। वाक्य इस प्रकार है, "मैं हिंदुस्तान हूँ। हिमालय मेरी सरहदों का निगहबान है। गंगा मेरी पवित्रता की सौगंध है। .....मेरे इन चाहने वालों में एक इंसान जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर था। अकबर ने मुझसे प्यार किया। मज़हब और खायत की दीवार से बुलंद होकर इंसान से मुहब्बत करना सिखाया और हमेशा के लिए मुझे सीने से लगा लिया।"

बादशाह अकबर के देश प्रेम को देखते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार, लेखक और आलोचक मुकुल केसवन ने अपनी पुस्तक 'सेक्युलर कॉमन सेंस' में फिल्म का विश्लेषण करते हुए रेखांकित करते हैं कि, "एक मध्ययुगीन बादशाह को जिसकी जड़ें भी पूरी तरह से इस देश में नहीं थी, उसे हिंदुस्तान नामक राष्ट्र के साथ जोड़ा जाना बहुत महत्त्व रखता है।" इस देश के बारे में अकबर के सोच पर टिप्पणी करते हुए ब्रिटिश इतिहासकार जी. बी. मेलिसन ने अपनी पुस्तक 'अकबर एंड द राइज़ ऑफ़ द मुग़ल एम्पायर' में लिखा था, "अकबर का महान विचार यह था कि समस्त भारत का एकीकरण एक मुखिया के अधीन हो। उसने आरंभ में ही यह जान लिया था कि धार्मिक विश्वासों के एकीकरण से यह संभव नहीं है। इसलिए एकीकरण हितों के एकीकरण के रूप में ही होना चाहिए। इस एकीकरण को संपन्न करने के लिए पहली जरूरत विजय प्राप्त करने की थी; दूसरी जरूरत ईश्वर के प्रति सद्विवेक और पूजा की सभी पद्धतियों के प्रति सम्मान की भावना थी।...उसने अपने साम्राज्य की नींव इतनी गहरी कर दी थी कि उसका पुत्र अपने पिता के समान न होते हुए भी राज्य को विधिवत संभालने में समर्थ रहा। जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि उसने जो किया और जिस तरह के दौर में किया और इसे करने के लिए जो तरीका उसने अपनाया तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि अकबर उन महान व्यक्तियों में से था, जिन्हें सर्वशक्तिमान परमात्मा राष्ट्रीय संकट में राष्ट्र की शांति तथा सहिष्णुता के मार्ग पर ले जाने के लिए भेजते हैं, जिसके द्वारा ही लाखों-लाख लोगों की खुशियों को सुनिश्चित किया जा सकता है।"

मुगल-ए-आजम मूलतः इतिहास के महान शासक अकबर की महाकथा है साथ ही उसके वर्गीय चरित्र को भी महावृतांत के रूप में इस फिल्म में दर्शाया गया है। इस फिल्म में अनारकली और सलीम की प्रेमकथा को भी निर्देशक ने उकेरा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अनारकली-सलीम की लोकप्रिय प्रेमकथा के ताने-बाने में अकबर के वर्गीय चरित्र और महानता को उभारने में निर्देशक के. आसिफ ने सफलता पाई है। अनारकली नाम की कोई कनीज़, जिसका प्रेम-प्रसंग राजकुमार सलीम से हो, इसकी चर्चा इतिहास में कहीं भी देखने को नहीं मिलती है। इसके बावजूद इतिहास में जिस प्रेमकथा का कहीं कोई ज़िक्र तक नहीं है उसी काल्पनिक प्रेमकथा को निर्देशक ने अमर प्रेमकथा साबित कर दिया है।

यूँ तो सलीम और अनारकली के प्रेम को आधार बनाकर कई फिल्में देश-विदेश के निर्देशकों ने बनाई है लेकिन उन तमाम फिल्मों के बीच के. आसिफ द्वारा निर्देशित मुग़ल-ए-आज़म फिल्मी दुनिया में एक तरह से मील का पत्थर साबित

हुआ है। उर्दू के नाटककार इम्तियाज अली ताज ने 1922 में 'अनारकली' नाम से एक नाटक लिखा जो काफी लोकप्रिय एवं उल्लेखनीय रहा। इस नाटक को आधार बनाकर 1928 में 'दि लव्स ऑफ ए मुगल प्रिंस' नाम की मूक फिल्म बनी। 1928 में ही निर्देशक और मशहूर पटकथा लेखक रमाशंकर चौधरी ने इस कहानी को लेकर 'अनारकली' फिल्म का निर्माण किया। निर्देशक नंदलाल जसवंतलाल के निर्देशन में 1953 में 'अनारकली' नाम से हिंदी में एक और फिल्म बनी। यह फिल्म मुगल राजकुमार सलीम और दासी अनारकली की प्रेम कहानी पर आधारित है। इस फिल्म में मुख्य भूमिका प्रदीप कुमार (शहजादा सलीम) और बीना राय (अनारकली) ने निभाई थी और इस फिल्म का संगीत सी. रामचंद्र ने दिया था। इस फिल्म का संगीत बहुत लोकप्रिय हुआ और इसलिए इस फिल्म ने बॉक्स ऑफिस पर बहुत अच्छी कमाई भी की। लेकिन इस कहानी को अभी कलात्मक मोक्ष मिलना बाकी था और वह कलात्मक मोक्ष पूरा हुआ— 'मुगल-ए-आज़म' के निर्माण के साथ। अपने अनुमान से कई गुना ज्यादा खर्च के साथ यह फिल्म 10 वर्षों में पूरा हुआ। ऐसे तो फिल्म को बीच में ही बंद करने तक की नौबत आ गयी थी लेकिन फिल्म अंततः दर्शकों के मध्य आई। फिल्म के निर्माता कम लागत में फिल्म बनाना चाहते थे लेकिन निर्देशक के. आसिफ अपने ढंग से इस फिल्म पर काम करना चाहते थे और वे किसी भी समझौते के लिए तैयार नहीं थे। एक समय ऐसा भी आया जब फिल्म निर्माता ने इसके निर्देशन के लिए सोहराब मोदी से बात की लेकिन सोहराब मोदी ने यह कह कर मना किया कि यह फिल्म के. आसिफ की है, वे ही इसे बना सकते हैं। के. आसिफ स्क्रीन के सामने बैठे दर्शकों को इतिहास के उस समय में ले जाना चाहते थे, जिसे मुगलिया सल्तनत कहा जाता था और यही कारण था कि वे मुगलिया सल्तनत की भव्यता को रचने में किसी भी तरह की रुकावट पसंद नहीं कर पा रहे थे। फिल्म पर उस समय लगभग डेढ़ करोड़ की लागत आई और अपने समय की सबसे महँगी लेकिन सबसे लोकप्रिय फिल्म साबित हुई और जब फिल्म बाजार में आई तो सच कहा जाए तो के. आसिफ ने इतिहास रच दिया और उस समय यह फिल्म 20 करोड़ से ज्यादा की कमाई की जो अपने आप में इतिहास बन गई।

सलीम और अनारकली पर जितनी भी फिल्में बनी और के. आसिफ निर्मित मुगल-ए-आजम को देखकर जो मूलभूत अंतर महसूस हुआ वह यही है कि बाकी की सभी फिल्में सिर्फ और सिर्फ सलीम और अनारकली के प्रेम को दर्शाने के लिए ही बनायी गयी थीं इसलिए उनमें सलीम और अनारकली का प्रेम ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण भी था लेकिन मुगल-ए-आज़म में यही प्रेम कहानी अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में तो है ही, परंतु इसकी कहानी सिर्फ और सिर्फ प्रेम कहानी तक ही नहीं रुकती, बल्कि उसके आगे जाकर अपने समय के वर्गीय चरित्र और समाज से रूबरू भी होती है और यहीं पर यह फिल्म अन्य सभी से भिन्न हो जाती है।

साहित्य, सिनेमा और मीडिया पर आलोचनात्मक लेखन एव पटकथा के विशेषज्ञ डॉ. जवरीमल्ल पारख ने अपने लेख 'मुगले आज़म रू सत्ता विमर्श का लोकतांत्रिक संदर्भ' में लिखा है कि, "लगभग एक दशक में फैले इस फिल्म के निर्माण के बीच हिंदुस्तान में बहुत सारे परिवर्तन भी हुए। फिल्म-निर्माण की प्रक्रिया शुरू होने से सिर्फ चार साल पहले 1947 में देश को आज़ादी मिली थी और धर्म के आधार पर देश का बंटवारा हो चुका था। इस फिल्म के लेखन से जुड़े सभी लेखक और निर्देशक न सिर्फ मुसलमान थे बल्कि उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उत्तर प्रदेश के उर्दू भाषी, शिक्षित, अभिजात और मध्यवर्गीय मुसलमानों के एक हिस्से ने बंटवारे के बाद हिंदुस्तान में रहने के बजाय पाकिस्तान जाना मुनासिब समझा। लेकिन इन्हीं वर्गों के, इससे भी ज्यादा बड़े हिस्से ने हिंदुस्तान में रहने का फैसला किया। उन्होंने धार्मिक राज्य पाकिस्तान के बजाय धर्म निरपेक्ष और लोकतांत्रिक हिंदुस्तान के प्रति अपनी आस्था जताई और इस बात को अस्वीकार किया कि हिंदू और मुसलमान दो भिन्न राष्ट्र हैं। 1950 में देश ने नया संविधान स्वीकार किया था। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में एक धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक राष्ट्र की स्थापना हुई और इस संविधान के तहत 1952 में पहला चुनाव हुआ। इस फिल्म के पूरे होने तक दूसरी लोकसभा भी चुनी जा चुकी थी। दो पंचवर्षीय योजनाएँ भी लागू हो चुकी थीं और अवड़ी अधिवेशन में कांग्रेस ने समाजवादी किस्म के समाज के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की थी। मुगल-ए-आज़म पर विचार करते हुए इन ऐतिहासिक घटनाक्रमों को ध्यान में रखना इसलिए जरूरी है कि इस फिल्म में जिस हिंदुस्तान को प्रदर्शित किया गया है उसके पीछे लोकतांत्रिक भारत

के प्रति फिल्मकार की आस्था भी व्यक्त हुई है। यह आस्था भारत की मिली-जुली संस्कृति और धार्मिक सहिष्णुता की परंपरा में भी निहित है। फिल्मकार के इस नज़रिये को समझे बिना हम मुगल-ए-आज़म को एक दंतकथा पर बनी प्रेम कहानी समझने की भूल करेंगे।"

फिल्म की शुरुआत में हम देखते हैं कि शहंशाह अकबर सलीम चिश्ती की दरगाह पर पुत्र प्राप्ति की दुआ के लिए आते हैं। इस दृश्य को गौर से देखने पर पता चलता है कि निर्देशक ने कितना अद्भुत एवं अनूठा दृश्य दर्शकों के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश की है। मूलतः अपने समाज में हम देखते हैं कि वंश को आगे बढ़ाने के लिए हमेशा पुत्र प्राप्ति की इच्छा बनी रहती है चाहे लगातार पाँच बेटी पैदा हो जाए लेकिन उसके बाद भी एक पुत्र का मोह बना रहता है क्योंकि वंश को आगे ले जाने के लिए पुत्र की आवश्यकता समाज में शुरू से देखने को मिली है और इस फिल्म के शुरुआत में भी हम वही देखते हैं कि हिंदुस्तान का इतना बड़ा शासक अकबर भी पुत्र प्राप्ति के मोह से बच न सका और उस दृश्य को निर्देशक ने बड़ी सहजता से दर्शाया है। हिंदी सिनेमा के महान अभिनेता पृथ्वीराज कपूर ने शहंशाह अकबर की भूमिका निभाई है जिनका भारी-भरकम शरीर, रोबदार आवाज और शानदार अभिनय को देखकर यही कह सकते हैं कि शहंशाह अकबर की भूमिका के लिए कपूर साहब से बेहतर और कोई हो ही नहीं सकता था। तपते रेगिस्तान में खाली पैर से चलते हुए पृथ्वीराज कपूर साहब के चेहरे पर थकावट, उदासी और पुत्र के लिए बेचैनी का जो भाव दिखता है वह देखते ही बनता है। जब अकबर रेगिस्तान में चलते हुए सलीम चिश्ती की दरगाह पर पहुँचने वाला होता है तो पीछे से आवाज के माध्यम से निर्देशक ने यह दिखाया है कि जब हम दुआ माँग रहे होते हैं तो हम कितने भी बड़े क्यों न हो जाएं हमें सामने वाले के समक्ष सर झुका कर खड़ा होना होता है और अकबर भी वही करता है। आवाज़ में कहा जाता है कि, "जिस शहंशाह के सामने सारी दुनिया सर सुकाती थी, वह आज एक फकीर के सामने सर झुकाये खड़ा था और दुआ माँग रहा था।" दरअसल यहाँ भारत की उस आध्यात्मिक चेतना को प्रवाहित करने की कोशिश की गई है जहाँ यह दिखलाया जाता है कि गुरुओं, ऋषियों, फकीरों के सामने बड़ी-बड़ी सल्तनतें सर झुकाती रही है और अकबर शहंशाह जरूर था पर यहाँ सर झुका कर खड़ा था। सलीम चिश्ती की दुआ से अकबर को पुत्र की प्राप्ति हो गई इसलिए अकबर ने उन्हीं के नाम पर अपने इस पुत्र का नाम सलीम रखा। सलीम ही आगे चलकर इतिहास में जहाँगीर के नाम से जाना गया। सलीम राजमहल में पलने-बढ़ने तो लगा लेकिन इसके साथ ही उसकी शरारतें भी बढ़ने लगी और फिल्म में उसे मदिरापान करते हुए नशे में दिखलाया गया है। शहंशाह अकबर को यह बात नागवार गुजरती है कि हिन्दुस्तान के होने वाले सम्राट का पैर इस तरह लड़खड़ाये। यह चिंता एक पिता की चिंता भी है, परन्तु उससे ज्यादा चिंता हिन्दुस्तान के उस सम्राट की है जो अपने अराधिकारी के रूप में सलीम को देखता है। अकबर अपने सेनापति मानसिंह को बुलाकर बालक सलीम को जंग के मैदान में भेजने का आदेश देते हैं। फिल्म में यह दिखलाया गया है कि सलीम राजमहलों की सुख-सुविधाओं से महरूम, ममता के आँचल से दूर चौदह वर्षों तक जंग के माहौल में रहता है और यही माहौल उसे अजेय योद्धा बनाती है। चौदह वर्षों के बाद राजमहल में सलीम की वापसी होती है। वापसी के समय पिता की उत्सुकता और माँ की खुशी का चित्रांकन फिल्मकार ने बहुत सुंदर तरीके से किया है।

फिल्म में संगतराश की भूमिका भी है जो मूर्तियाँ उकेरने का काम करता है। वह अकबर के नौरत्नों में नहीं है। राजाश्रय से दूर एक स्वतंत्रचेता कलाकार है जो निर्भय होकर सत्य कहता है। संगतराश जैसा कोई कलाकार अकबर के समय था, इसकी सूचना इतिहास में नहीं मिलती। वस्तुतः संगतराश फिल्मकार की ही कल्पना है। दरअसल के. आसिफ संगतराश के माध्यम से लेखकों, कलाकारों की ऐतिहासिक भूमिका और दायित्वों को रेखांकित करना चाहते थे, जो किसी भी सामाजिक प्रक्रिया के निर्माण में होती है या हो सकती है। हम देखते हैं कि अकबर के समय जहाँ एक तरफ राजाश्रित कवि व कलाकार थे, वहीं दूसरी ओर भक्तिकाव्य की पूरी परंपरा भी विद्यमान थी। जो राजाश्रय से दूर स्वतंत्र चेता कलाकार की भूमिका निभा रहे थे और जनता में अलख जगाने का काम कर रहे थे। संगतराश उसी परंपरा की कड़ी के रूप में दिखता है। बहरहाल संगतराश से फिल्म में एक मूर्ति बनाने के लिए कहा जाता है। संगतराश तो मूर्ति नहीं बना पाता किंतु मूर्ति की जगह बहुत खूबसूरत लड़की नादिरा यानि मधुबाला को खड़ा कर देता है। अब यहाँ पर यह सवाल उठता है कि संगतराश ऐसा क्यों करता है।

वह मूर्ति बना तो सकता था परंतु वह नहीं बनाता। दरअसल काल्पनिक स्त्री की जगह खुद एक स्त्री को खड़ा करना - यह कला में यथार्थवादी दृष्टि की माँग है और संगतराश उसी माँग को पूरा करने हेतु ऐसा कार्य करता है। नादिरा की खूबसूरती और दिलेरी को देखकर शहंशाह अकबर उसे अनारकली का खिताब देते हैं।

फिल्म की नायिका अनारकली एक ख्वाब की तरह शहजादा सलीम के दिल में बस जाती है। फिर शुरु होती है मोहब्बत की वह कहानी जिसे दुनिया सलीम-अनारकली के नाम से जानती है। हम फिल्म में पाते हैं कि अनारकली भी सलीम को पहली नज़र में चाहने लगती है लेकिन इस चाह में एक भय का अंश भी छुपा हुआ होता है। पहली बार जब शाही बाग में दोनों अकेले मिलते हैं तब सलीम अनारकली से आग्रह करता हुआ कहता है कि, "अनारकली इधर देखो। मैं तुम्हारी आँखों में अपनी मोहब्बत का इकरार देखना चाहता हूँ। वह मोमबती पर हाथ रखते हुए कहती है- इन्हें न देखिये शहजादे। इसमें कनीज़ की सहमी हुई हसरतों के सिवा और कुछ नहीं। सलीम कहता है- "भूल जाओ कि तुम कनीज़ हो और सलीम को अपनी आँखों में वह देखने दो, जो तुम्हारी जुबान कहते हुए डरती है।' अनारकली कहती है- 'मेरी आँखो से मेरे ख्वाब मत छीनिए।" इन्हीं संवादों के बीच सलीम-अनारकली का प्यार परवान चढ़ता हुआ दिखाया गया है। शास्त्रीय संगीत के बैकग्राउंड में सलीम-अनारकली के प्रेम दृश्यों की फिल्मकार ने बहुत ही जादुई ढंग से प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि गंगाजल की पवित्रता और शराब की मदहोशी दोनों साथ-साथ मिल गये हों। प्रेम के एक दृश्य पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध निर्देशक महेश भट्ट ने ठीक ही कहा है कि, "मुग़ल-ए-आज़म का वह प्रेम दृश्य अविस्मरणीय है, शायद जब एक्स्ट्रीम क्लोज़ अप में दिलीप कुमार मधुवाला के भावेगपूर्ण चेहरे को सफेद पंख के साथ गुदगुदाता है। शायद वह भारतीय रजत पटल पर फिल्माया गया सबसे एरोटिक दृश्य है। (Shot in extreme close-ups of just faces in which Dilip Kumar tickles the impassioned face of Madhubala with a white feather- This was perhaps the most sensitively portrayed erotic scene on the Indian screen.)"

शहंशाह अकबर को जब दोनों के प्रेम कहानी का पता चलता है तो वह उनके खिलाफ हो जाता है। अकबर की चिंता यह है कि एक मामूली कनीज़ लौंडिया हिन्दुस्तान की मल्लिका कैसे बन सकती है? दरअसल यह अकबर की वर्गीय चेतना को दर्शाता है। मुगल विजातीय शादी कर सकते हैं। खुद अकबर ने हिन्दू लड़कियों से शादी की। सलीम की माँ जोधाबाई हिन्दू औरत थी। परंतु ये सभी राजघरानों की लड़घकियाँ थी। कोई साधारण घर की लड़की इनकी रानी नहीं बन सकती थीं। अकबर को इस वर्गीय चेतना को फिल्मकार देश प्रेम के रूप में दिखलाता है। यही कारण है कि इस प्रेम कहानी में विलेन के रूप में होने के बावजूद अकबर को दर्शक एक बड़े नायक तथा न्यायप्रिय सम्राट के रूप में देखता है। हम जानते हैं कि इस कहानी को लेकर पूर्व में बनी सभी फिल्मों में अनारकली को चुनवा दिया जाता है परंतु के. आसिफ के मुग़ल-ए-आज़म में अकबर के आदेश से अनारकली को एक सेफ पैसेज देकर देश निकाले की सजा दी जाती है। इस घटना से अकबर की उदारता और महानता और भी बढ़ जाती है। फिल्म के अंतिम दृश्य में अकबर अनारकली से कहता है कि, "अनारकली हमें माफ करना, हम प्यार के दुश्मन नहीं परंतु हम हिन्दुस्तान के तख्त से कोई समझौता नहीं कर सकते।" इस तरह के संवादों से अकबर वर्गीय चरित्र के दायरे में रहने के बावजूद दर्शकों के दिल जीत लेते हैं।

निर्देशक नंदलाल जसवंतलाल के निर्देशन 1953 में बनी अनारकली फिल्म के अंत में यह लिखा हुआ आता है कि यह एक काल्पनिक कहानी है और इसका अकबर के इतिहास से कोई संबंध नहीं है। मुग़ल-ए-आज़म की शुरुध्आत ही इस तथ्य को स्थापित करने से होती है कि हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने वाले मुग़ल बादशाह से इस कहानी का संबंध है। फिल्मकार को इस बात से फर्क नहीं पड़ता कि अनारकली की कथा ऐतिहासिक है या नहीं। शुरू में ही अंग्रेजी में लिखा हुआ आता है जिसका हिंदी आशय यह है- "जब इतिहास और दंतकथा कला और कल्पना में एक दूसरे से घुलमिल जाते हैं और इस महान धरती की आत्मा अपने संपूर्ण वैभव और सौंदर्य के साथ इनमें निखर उठती है तो इन दोनों का हमारे अतीत से संबंध बन जाता है। (When history and legend intermingle in art and imagination and the soul of this great land shines forth in all its beauty and splendor] both become a part of our heritage.)"

इस फ़िल्म में अपने जमाने के सबसे लोकप्रिय अभिनेताओं ने काम किया था। पृथ्वीराज कपूर (बादशाह अकबर) दिलीप कुमार (सलीम) मधुबाला (अनारकली) दुर्गा खोटे (जोधाबाई) अजित (दुर्जन सिंह), निगार सुलताना (बहार), कुमार (संगतराश), मुराद (राजा मानसिंह), सुरेंद्र (तानसेन) आदि ने प्रमुख रूप से भूमिका निभाई है। सभी कलाकारों ने अपने-अपने चरित्रों के साथ बखूबी न्याय किया है लेकिन पृथ्वीराज कपूर, दिलीप कुमार और मधुबाला ने अपने अभिनय से चरित्रों को जीवंत कर दिया है। सलीम के रूप में दिलीप कुमार का अभिनय बेजोड़ है। दिलीप कुमार के बारे में यह कहा जाए कि सलीम और देवदास के रूप में उन्होंने जो अभिनय किया है वह हिंदी सिनेमा के इतिहास में अद्वितीय है तो यह बात अतिशयोक्ति नहीं होगी। अनारकली के रूप में मधुबाला से बेहतर कोई अभिनेत्री उस चरित्र को जीवंत नहीं कर सकता था। आखिरी में पृथ्वीराज कपूर साहब! बादशाह अकबर की जैसी भूमिका पृथ्वीराज कपूर साहब ने की उसे देखकर मन में यही ख्याल आता है कि अगर असली अकबर भी पृथ्वीराज के इस रोल को देख ले तो शायद यही कहे - भैया पृथ्वीराज, तू ही असली अकबर है। मैं तो बस यूँ ही!

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. https://ndff-in/mughale-azam-by-parakh-ji-part-1
2. मुगल-ए-आजम, सिनेमा से उद्धृत पंक्ति
3. मुकुल केसवन, सेक्युलर कॉमन सेंस, पेंगुइन बुक्स, पृष्ठ सं 6
4. जी. बी. मेलिसन, अकबर एंड द राइज़ ऑफ़ द मुग़ल एम्पायर, 1890, पृ. 196-200
5. जवरीमल्ल पारख, भारतीय सिनेमा का समाजशास्त्र, ग्रंथशिल्पी प्रकाशन
6. मुगल-ए-आजम, सिनेमा से उद्धृत पंक्ति
7. मुगल-ए-आजम, सिनेमा से उद्धृत पंक्ति
8. आशीष राजाध्यक्ष और पॉल विलेमेन, एंसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा, सं 1998, पृष्ठ सं 365
9. मुगल-ए-आजम, सिनेमा से उद्धृत पंक्ति
10. मुगल-ए-आजम, सिनेमा से उद्धृत पंक्ति।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

गिग अर्थव्यवस्था : भारतीय श्रम बाजार में अवसर, चुनौतियाँ और नीतिगत संदर्भ

गीतांजलि वर्मा
स्वतंत्र शोधकर्ता

सारांश

गिग अर्थव्यवस्था (Gig Economy) ने पिछले एक दशक में वैश्विक श्रम बाजार के स्वरूप को मौलिक रूप से बदल दिया है। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म आधारित इस अर्थव्यवस्था में अल्पकालिक, स्वतंत्र और लचीले कार्य को प्राथमिकता दी जाती है, जहाँ श्रमिक पारंपरिक नियोक्ता-कर्मचारी संबंध से मुक्त होकर स्वतंत्र ठेका (independent contractor) के रूप में कार्य करते हैं। भारत में गिग अर्थव्यवस्था तीव्र गति से विस्तारित हो रही है, विशेषकर राइड-हेलिंग, खाद्य वितरण, ई-कॉमर्स लॉजिस्टिक्स, घरेलू सेवाओं और पेशेवर परामर्श के क्षेत्रों में। यह शोध पत्र गिग अर्थव्यवस्था की अवधारणा, ऐतिहासिक विकास, भारतीय संदर्भ में इसके स्वरूप, श्रमिकों के सामने उपस्थित अवसरों एवं चुनौतियों, तथा विद्यमान नीतिगत ढाँचे का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में पाया गया कि गिग कार्य श्रमिकों को लचीलापन, आय के अवसर और डिजिटल सशक्तीकरण प्रदान करता है, परंतु साथ ही सामाजिक सुरक्षा, आय अस्थिरता, व्यावसायिक स्वास्थ्य जोखिम और सामूहिक सौदेबाजी की अनुपस्थिति जैसी गंभीर समस्याएँ भी उत्पन्न करता है। भारत सरकार द्वारा 2021 में पारित सामाजिक सुरक्षा संहिता और 2023 में गठित राजस्थान गिग वर्कर्स कल्याण अधिनियम जैसे प्रयासों को इस संदर्भ में महत्वपूर्ण पहल के रूप में रेखांकित किया गया है। शोध निष्कर्ष बताते हैं कि गिग अर्थव्यवस्था के सतत और समावेशी विकास हेतु एक संतुलित नियामक ढाँचा आवश्यक है, जो नवाचार को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ श्रमिकों के अधिकारों और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी भी सुनिश्चित करे।

मुख्य शब्द : गिग अर्थव्यवस्था, डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, अस्थायी श्रम, सामाजिक सुरक्षा, भारतीय श्रम बाजार, प्लेटफ़ॉर्म श्रमिक, नीतिगत ढाँचा, लचीला रोजगार।

1. परिचय

1.1 पृष्ठभूमि

गिग अर्थव्यवस्था (Gig Economy) शब्दावली ने पिछले दशक में वैश्विक श्रम बाजार में एक नई विमर्श-परंपरा को जन्म दिया है। 'गिग' शब्द मूलतः संगीत जगत से लिया गया है, जहाँ संगीतकार एक-एक 'गिग' अर्थात् एकल प्रस्तुति के लिए अनुबंधित होते थे और प्रत्येक प्रस्तुति के पश्चात् उनका अनुबंध समाप्त हो जाता था। इसी प्रकार, आधुनिक गिग अर्थव्यवस्था में श्रमिक अल्पकालिक, अस्थायी और परियोजना-आधारित कार्य करते हैं, जिसमें पारंपरिक दीर्घकालिक रोजगार संबंध का अभाव होता है। डिजिटल प्रौद्योगिकी, विशेषकर स्मार्टफ़ोन, क्लाउड कंप्यूटिंग, बिग डेटा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI)

ने इस अर्थव्यवस्था को संभव बनाया है, जहाँ प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ माँग और आपूर्ति के बीच तत्काल मिलान (तमंस-जपउम उंजबीपदह) सुनिश्चित करती हैं।

वैश्विक स्तर पर गिग अर्थव्यवस्था का विस्तार अत्यंत तीव्र गति से हुआ है। भारत में यह क्षेत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय वृद्धि दर्शा रहा है। नीति आयोग (NITI Aayog) की वर्ष 2022 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में गिग श्रमिकों की संख्या 2020-21 में लगभग 77 लाख थी, जो 2029-30 तक 2.35 करोड़ तक पहुँचने की संभावना है (नीति आयोग, 2022)। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, वित्त वर्ष 2021 में जहाँ गिग श्रमिकों की संख्या 77 लाख थी, वहीं वित्त वर्ष 2025 में यह बढ़कर 1.20 करोड़ हो गई है, यानी करीब 55 प्रतिशत की वृद्धि (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)। अनुमान है कि 2029-30 तक गिग वर्क भारत की वर्कफोर्स का 6.7 फीसदी हिस्सा बनेगा और ळक्ट में 2.35 लाख करोड़ रुपये का योगदान देगा (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)।

1.2 समस्या का कथन

गिग अर्थव्यवस्था ने श्रम बाजार में अभूतपूर्व लचीलापन और आय के नए अवसर उत्पन्न किए हैं, परंतु इसके साथ ही अनेक गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। सबसे प्रमुख समस्या यह है कि गिग श्रमिकों को पारंपरिक श्रम कानूनों द्वारा प्रदत्त सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन, अवकाश वेतन और सामूहिक सौदेबाजी के अधिकारों से वंचित रखा जाता है। प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ उन्हें 'स्वतंत्र ठेकेदार' (independent contractor) के रूप में वर्गीकृत करती हैं, जिससे नियोक्ता के दायित्वों से बचाव होता है (श्रम और रोज़गार मंत्रालय, 2020)। इसके अतिरिक्त, एल्गोरिदमिक प्रबंधन, आय की अस्थिरता, कार्य-जीवन संतुलन की समस्या, व्यावसायिक स्वास्थ्य जोखिम और डेटा गोपनीयता जैसे मुद्दे भी गिग श्रमिकों के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं।

भारत में, जहाँ बड़ी संख्या में असंगठित श्रमिक हैं और सामाजिक सुरक्षा का दायरा सीमित है, गिग अर्थव्यवस्था की चुनौतियाँ और भी गहरी हो जाती हैं। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, देश के करीब 40 फीसदी गिग वर्कर्स की मासिक कमाई 15,000 रुपये से भी कम है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)। अतः यह आवश्यक है कि गिग अर्थव्यवस्था के स्वरूप, इसके लाभ-हानि और नीतिगत आवश्यकताओं का गंभीर अकादमिक विश्लेषण किया जाए।

1.3 शोध प्रश्न

इस शोध पत्र में निम्नलिखित शोध प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया गया है :

1. गिग अर्थव्यवस्था की अवधारणा और ऐतिहासिक विकास क्या है?
2. भारतीय श्रम बाजार में गिग अर्थव्यवस्था का स्वरूप और विस्तार किस प्रकार का है?
3. गिग श्रमिकों के समक्ष उपस्थित प्रमुख अवसर और चुनौतियाँ क्या हैं?
4. भारत में गिग श्रमिकों के लिए विद्यमान नीतिगत और कानूनी ढाँचा कितना प्रभावी है?
5. गिग अर्थव्यवस्था के सतत और समावेशी विकास हेतु किस प्रकार का नियामक ढाँचा आवश्यक है?

1.4 शोध का उद्देश्य

इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(a) गिग अर्थव्यवस्था की अवधारणात्मक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना।

(b) भारतीय संदर्भ में गिग अर्थव्यवस्था के विस्तार और स्वरूप का अध्ययन करना।

(c) गिग श्रमिकों के सामने उपस्थित अवसरों और चुनौतियों की पहचान करना।

(d) भारत में विद्यमान नीतिगत ढाँचे की समीक्षा करना।

(e) गिग अर्थव्यवस्था के सतत विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

1.5 शोध की सीमाएँ

यह शोध पत्र मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों—शोध पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशनों और समाचार

लेखों—पर आधारित है। प्राथमिक सर्वेक्षण का अभाव इस अध्ययन की प्रमुख सीमा है। इसके अतिरिक्त, गिग अर्थव्यवस्था का क्षेत्र अत्यंत गतिशील है, अतः समय के साथ आँकड़े और नीतियाँ परिवर्तित हो सकती हैं।

1.6 शोध पत्र की संरचना

यह शोध पत्र पाँच प्रमुख भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में परिचय, समस्या कथन, शोध प्रश्न और उद्देश्य प्रस्तुत किए गए हैं। द्वितीय भाग में साहित्य समीक्षा के माध्यम से गिग अर्थव्यवस्था से संबंधित विद्यमान शोध का विश्लेषण किया गया है। तृतीय भाग में शोध पद्धति का वर्णन है। चतुर्थ भाग में निष्कर्ष और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। पंचम भाग में नीतिगत सुझाव और भविष्य की शोध दिशाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

2. साहित्य समीक्षा

2.1 सामान्य परिचय

साहित्य समीक्षा किसी भी शोध का अनिवार्य अंग होती है, जो विषय से संबंधित पूर्व अध्ययनों का व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत करती है। गिग अर्थव्यवस्था पर विद्यमान साहित्य को मोटे तौर पर चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः (i) अवधारणात्मक और सैद्धांतिक अध्ययन, (ii) श्रमिक अनुभव और सामाजिक सुरक्षा संबंधी अध्ययन, (iii) प्लेटफ़ॉर्म शासन और एल्गोरिदमिक प्रबंधन संबंधी अध्ययन, तथा (iv) नीतिगत और कानूनी ढाँचे संबंधी अध्ययन। इस अनुभाग में इन चारों आयामों पर आधारित साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

2.2 अवधारणात्मक और सैद्धांतिक अध्ययन

गिग अर्थव्यवस्था की अवधारणा को समझने के लिए शोधकर्ताओं ने विविध सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। फ्रीडमैन (2014) ने गिग अर्थव्यवस्था को 'श्रम बाजार का उभरता हुआ परिदृश्य' बताते हुए इसे तकनीकी नवाचार और लचीले रोजगार की संगति के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार, गिग अर्थव्यवस्था में श्रमिक स्वतंत्र ठेकेदार के रूप में कार्य करते हैं, जिससे उन्हें कार्य के समय और स्थान की स्वतंत्रता प्राप्त होती है, परंतु साथ ही आय की अस्थिरता और सामाजिक सुरक्षा के अभाव का सामना भी करना पड़ता है।

कालेबर्ग (2009) ने 'अनिश्चित रोजगार' (precarious employment) की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए तर्क दिया कि गिग कार्य में रोजगार की अस्थिरता, सीमित सामाजिक सुरक्षा और सामूहिक सौदेबाजी की कमी जैसी विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनका मानना है कि यह प्रवृत्ति वैश्विक श्रम बाजार में बढ़ती असमानता और श्रमिकों की असुरक्षा का प्रतीक है।

वुड एवं अन्य (2019) ने गिग अर्थव्यवस्था को 'डिजिटल श्रम' (digital labour) के व्यापक ढाँचे में रखते हुए इसे तीन स्तरों—माइक्रोवर्क, मैक्रोवर्क और क्लाउडवर्क—में विभाजित किया। उनके अनुसार, गिग अर्थव्यवस्था में श्रमिक और प्लेटफ़ॉर्म के बीच की शक्ति-संतुलन असमान होती है, जहाँ एल्गोरिदम नियंत्रण और डेटा एकाधिकार प्लेटफ़ॉर्म के पक्ष में कार्य करते हैं।

भारतीय संदर्भ में, श्रम और रोज़गार मंत्रालय (2020) ने गिग कामगारों को 'एक ऐसे व्यक्ति' के रूप में परिभाषित किया है, 'जो नियोक्ता और कर्मचारी के पारंपरिक संबंधों से अलग काम करता है या कामकाजी व्यवस्था में भाग लेता है और इसी तरह के काम से अपनी कमाई करता है' (श्रम और रोज़गार मंत्रालय, 2020)। यह परिभाषा गिग श्रम के सार को स्पष्ट करती है—पारंपरिक रोजगार संबंधों से मुक्ति, परंतु साथ ही उससे जुड़े अधिकारों और सुरक्षा से भी वंचित।

2.3 श्रमिक अनुभव और सामाजिक सुरक्षा संबंधी अध्ययन

गिग श्रमिकों के अनुभवों पर आधारित अध्ययनों ने उनके समक्ष उपस्थित चुनौतियों को उजागर किया है। रोज़ेनब्लाट और स्टार्क (2016) ने न्इमत के ड्राइवरों पर किए गए अध्ययन में पाया कि एल्गोरिदमिक प्रबंधन श्रमिकों के कार्य-जीवन संतुलन, मानसिक स्वास्थ्य और आर्थिक स्थिरता पर गंभीर प्रभाव डालता है। उनके अनुसार, प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ ड्राइवरों को 'स्वतंत्र ठेकेदार' के रूप में वर्गीकृत करके नियोक्ता के दायित्वों से बचती हैं, जबकि वास्तविकता में वे उनके कार्य पर सूक्ष्म

स्तर तक नियंत्रण रखती हैं।

बर्ग एवं अन्य (2018) ने 'डिजिटल लेबर प्लेटफ़ॉर्म और श्रमिकों की स्थिति' पर वैश्विक अध्ययन में पाया कि अधिकांश गिग श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा और पेंशन जैसी बुनियादी सुविधाएँ प्राप्त नहीं होतीं। उनके अनुसार, गिग श्रमिकों की आय अस्थिर होती है और उन्हें कार्य के लिए उपलब्ध रहने के लिए लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जिसे 'प्रतीक्षा कार्य' (waiting work) कहा जाता है।

टिकोना और माटेस्कु (2018) ने घरेलू सेवाओं में कार्यरत गिग श्रमिकों पर किए गए अध्ययन में पाया कि महिला श्रमिकों को अतिरिक्त भेदभाव और सुरक्षा जोखिमों का सामना करना पड़ता है। उनके अनुसार, गिग अर्थव्यवस्था में लैंगिक असमानता और सामाजिक पूर्वाग्रह गहराई से निहित हैं।

भारतीय संदर्भ में, नीति आयोग (2022) की रिपोर्ट 'इंडिया'ज बूमिंग गिग एंड प्लेटफ़ॉर्म इकोनॉमी' ने गिग श्रमिकों की स्थिति पर व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया। रिपोर्ट के अनुसार, भारत में गिग श्रमिकों की औसत आय पारंपरिक श्रमिकों की तुलना में कम है, और उन्हें सामाजिक सुरक्षा का लाभ प्राप्त नहीं है (नीति आयोग, 2022)। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, करीब 40 प्रतिशत गिग श्रमिकों की मासिक आय 15,000 रुपए से कम है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)। सर्वेक्षण में यह भी कहा गया है कि गिग श्रमिकों को 'फ्रीलांसर', 'स्वतंत्र ठेकेदार' या 'प्लेटफॉर्म पार्टनर' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, जिससे पारंपरिक श्रम कानूनों और परिभाषाओं को लागू करना मुश्किल हो जाता है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)।

2.4 प्लेटफ़ॉर्म शासन और एल्गोरिदमिक प्रबंधन संबंधी अध्ययन

प्लेटफ़ॉर्म शासन और एल्गोरिदमिक प्रबंधन पर केंद्रित अध्ययनों ने गिग अर्थव्यवस्था में शक्ति-संतुलन और नियंत्रण के स्वरूप को उजागर किया है। केनी और ज़िसमैन (2016) ने तर्क दिया कि डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म 'द्विपक्षीय बाजार' (two-sided market) के रूप में कार्य करते हैं, जहाँ वे माँग और आपूर्ति के बीच मध्यस्थता करते हैं और नेटवर्क प्रभावों के माध्यम से बाजार पर प्रभुत्व स्थापित करते हैं। उनके अनुसार, यह प्रभुत्व श्रमिकों के लिए प्रतिकूल शर्तें उत्पन्न करता है, क्योंकि प्लेटफ़ॉर्म एकाधिकार की स्थिति में मजदूरी और कार्य-दशाओं को नियंत्रित करते हैं।

वालास और शोर (2020) ने एल्गोरिदमिक प्रबंधन की अवधारणा को विकसित करते हुए इसे 'डिजिटल टेलरिज्म' (digital Taylorism) के रूप में वर्णित किया। उनके अनुसार, प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ एल्गोरिदम के माध्यम से श्रमिकों के कार्य को सूक्ष्म स्तर तक नियंत्रित करती हैं, जिसमें कार्य-समय, गति, मार्ग और मूल्यांकन शामिल हैं। यह नियंत्रण श्रमिकों की स्वायत्तता और गरिमा को सीमित करता है।

ग्रीसबाख और अन्य (2019) ने एल्गोरिदमिक प्रबंधन के पाँच प्रमुख तंत्रों की पहचान की: (i) ग्राहक मूल्यांकन के माध्यम से निगरानी, (ii) कार्य आवंटन में स्वचालित निर्णय, (iii) गतिशील मूल्य निर्धारण, (iv) डेटा-संचालित प्रदर्शन प्रबंधन, और (v) श्रमिकों के बीच प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करना। उनके अनुसार, ये तंत्र श्रमिकों के लिए अस्थिरता और अनिश्चितता उत्पन्न करते हैं।

भारतीय संदर्भ में, फेयरवर्क (2021) की रिपोर्ट 'इंडिया गिग वर्कर्स सर्वे' ने दिखाया कि भारतीय गिग श्रमिकों को एल्गोरिदमिक प्रबंधन के कारण गंभीर मानसिक तनाव, कार्य-जीवन असंतुलन और आर्थिक असुरक्षा का सामना करना पड़ता है। रिपोर्ट के अनुसार, अधिकांश गिग श्रमिकों को अपनी आय और कार्य-समय पर कोई नियंत्रण नहीं होता, और उन्हें प्लेटफ़ॉर्म द्वारा लगातार निगरानी और मूल्यांकन का सामना करना पड़ता है (फेयरवर्क, 2021)।

2.5 नीतिगत और कानूनी ढाँचे संबंधी अध्ययन

गिग अर्थव्यवस्था के नियामक ढाँचे पर विद्यमान साहित्य ने विभिन्न देशों के अनुभवों और भारत में विद्यमान चुनौतियों को उजागर किया है। डी स्टीफानो (2016) ने तर्क दिया कि गिग अर्थव्यवस्था में श्रमिकों का वर्गीकरण एक जटिल कानूनी समस्या है, क्योंकि प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ उन्हें 'स्वतंत्र ठेकेदार' मानती हैं, जबकि वास्तविकता में वे कर्मचारी जैसी स्थिति में

कार्य करते हैं। उनके अनुसार, यह वर्गीकरण श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा और श्रम अधिकारों से वंचित करता है।

चेरियन और अन्य (2021) ने भारत में गिग श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा के मुद्दे पर अध्ययन किया। उनके अनुसार, भारत में गिग श्रमिकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, परंतु उनके लिए कोई विशेष कानूनी संरक्षण उपलब्ध नहीं है। उन्होंने सुझाव दिया कि सरकार को गिग श्रमिकों के लिए एक समग्र सामाजिक सुरक्षा ढाँचा विकसित करना चाहिए, जिसमें स्वास्थ्य बीमा, पेंशन, दुर्घटना बीमा और कौशल विकास शामिल हों।

भारत सरकार ने 2021 में सामाजिक सुरक्षा संहिता (Social Security Code, 2020) पारित की, जिसमें गिग श्रमिकों और प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा के दायरे में शामिल करने का प्रावधान है। संहिता के अनुसार, केंद्र सरकार और राज्य सरकारें गिग श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ तैयार कर सकती हैं (सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020)। हालाँकि, इस संहिता के क्रियान्वयन में अभी तक महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई है।

राजस्थान सरकार ने 2023 में 'राजस्थान प्लेटफ़ॉर्म आधारित गिग वर्कर्स (रजिस्ट्रेशन और कल्याण) अधिनियम' पारित किया, जो भारत में अपनी तरह का पहला कानून है। इस अधिनियम के तहत गिग श्रमिकों का पंजीकरण अनिवार्य किया गया है और उनके लिए एक कल्याण बोर्ड का गठन किया गया है, जो सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा और अन्य लाभ प्रदान करेगा (राजस्थान सरकार, 2023)। इसके बाद कर्नाटक और महाराष्ट्र जैसे राज्यों ने भी इसी प्रकार के कानून बनाने की पहल की है।

2.6 साहित्य समीक्षा का सारांश

उपरोक्त साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि गिग अर्थव्यवस्था पर विद्यमान शोध मुख्यतः चार आयामों पर केंद्रित हैरू अवधारणात्मक ढाँचा, श्रमिक अनुभव, प्लेटफ़ॉर्म शासन और नीतिगत ढाँचा। विद्यमान साहित्य में निम्नलिखित अंतराल (तमेमंतबी हंचे) पाए गए :

(a) भारतीय गिग श्रमिकों के दीर्घकालिक आर्थिक और सामाजिक प्रभावों पर अनुदैर्ध्य (longitudinal) अध्ययनों का अभाव है।

(b) गिग अर्थव्यवस्था के लैंगिक आयाम पर गहन शोध की आवश्यकता है, विशेषकर महिला गिग श्रमिकों के अनुभवों पर।

(c) भारत में गिग श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के क्रियान्वयन और प्रभावशीलता का मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ है।

(d) गिग अर्थव्यवस्था के ग्रामीण और अर्ध-शहरी आयामों पर शोध की कमी है।

(e) एल्गोरिदमिक पारदर्शिता और जवाबदेही के लिए तकनीकी और नीतिगत समाधानों पर अंतरानुशासनिक शोध की आवश्यकता है।

3. शोध पद्धति

3.1 शोध डिज़ाइन

यह शोध पत्र वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध डिज़ाइन पर आधारित है। अध्ययन में गिग अर्थव्यवस्था की अवधारणा, भारतीय संदर्भ में इसके स्वरूप, श्रमिकों के समक्ष उपस्थित अवसरों-चुनौतियों और नीतिगत ढाँचे का विश्लेषण किया गया है। शोध में मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

3.2 डेटा स्रोत

इस शोध पत्र में निम्नलिखित द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है :

(a) सरकारी रिपोर्टें : नीति आयोग (2022), आर्थिक सर्वेक्षण (2025-26), श्रम और रोज़गार मंत्रालय (2020) के प्रकाशन।

(b) अकादमिक शोध पत्र : गिग अर्थव्यवस्था, श्रम अध्ययन, और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म शासन से संबंधित पीयर-रिव्यूड जर्नल लेख।

(c) अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशन : अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), विश्व बैंक, और अन्य संस्थाओं की रिपोर्टें।

(d) नीतिगत दस्तावेज़ : सामाजिक सुरक्षा संहिता (2020), राजस्थान गिग वर्कर्स अधिनियम (2023), और अन्य संबंधित कानूनी दस्तावेज़।

(e) समाचार लेख और रिपोर्टें : प्रमुख समाचार पत्रों और ऑनलाइन पोर्टल्स से प्राप्त जानकारी।

3.3 विश्लेषण विधि

शोध में विषय-वस्तु विश्लेषण (thematic analysis) विधि का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त जानकारी को व्यवस्थित रूप से वर्गीकृत किया गया और प्रमुख विषयों—अवसर, चुनौतियाँ, नीतिगत ढाँचा—के आधार पर विश्लेषण किया गया। तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से भारतीय संदर्भ की विशिष्टताओं को रेखांकित किया गया।

3.4 शोध की सीमाएँ

इस शोध की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(a) प्राथमिक सर्वेक्षण का अभाव : यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिससे गिग श्रमिकों के प्रत्यक्ष अनुभवों को समझने में सीमा आती है।

(b) भौगोलिक सीमा : अध्ययन मुख्यतः भारतीय संदर्भ पर केंद्रित है, परंतु विभिन्न राज्यों के बीच के अंतरों का गहन विश्लेषण नहीं किया गया है।

(c) समय सीमा : गिग अर्थव्यवस्था अत्यंत गतिशील है, अतः अध्ययन में प्रयुक्त आँकड़े और नीतियाँ समय के साथ परिवर्तित हो सकती हैं।

(d) क्षेत्रीय सीमा : अध्ययन मुख्यतः राइड-हेलिंग, खाद्य वितरण और ई-कॉमर्स लॉजिस्टिक्स क्षेत्रों पर केंद्रित है; अन्य क्षेत्रों का सीमित विश्लेषण हुआ है।

4. विश्लेषण और निष्कर्ष

4.1 गिग अर्थव्यवस्था का ऐतिहासिक विकास

गिग अर्थव्यवस्था का विकास तीन प्रमुख चरणों में हुआ है :

प्रथम चरण (2000-2010) : इस अवधि में इंटरनेट और मोबाइल प्रौद्योगिकी के विस्तार के साथ ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म का उदय हुआ। ई-कॉमर्स और ऑनलाइन सेवाओं के माध्यम से अल्पकालिक कार्य के अवसर बढ़े।

द्वितीय चरण (2010-2020) : स्मार्टफ़ोन, जीपीएस, और क्लाउड कंप्यूटिंग के व्यापक उपयोग ने गिग अर्थव्यवस्था को नई गति दी। Uber, Ola, Swiggy, Zomato, और न्तइंद ब्यउचंदल जैसे प्लेटफ़ॉर्म भारत में तेजी से फैले।

तृतीय चरण (2020 के बाद) : कोविड-19 महामारी के दौरान गिग अर्थव्यवस्था में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। संकट के समय में गिग कार्य ने लाखों लोगों को आय का साधन प्रदान किया, परंतु साथ ही सामाजिक सुरक्षा की कमी और श्रमिकों की असुरक्षा को भी उजागर किया (अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, 2021)।

4.2 भारतीय गिग अर्थव्यवस्था का स्वरूप

भारत में गिग अर्थव्यवस्था निम्नलिखित विशेषताओं द्वारा चिह्नित है :

(a) तेज़ वृद्धि : नीति आयोग (2022) के अनुसार, भारत में गिग श्रमिकों की संख्या 2020-21 में 77 लाख थी, जो 2029-30 तक 2.35 करोड़ तक पहुँचने का अनुमान है। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, वित्त वर्ष 2025 में यह संख्या 1.20 करोड़ हो गई है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)।

(b) क्षेत्रीय विविधता : गिग कार्य मुख्यतः राइड-हेलिंग (Ola, Uber), खाद्य वितरण (Swiggy, Zomato), ई-कॉमर्स

लॉजिस्टिक्स (Amazon, Flipkart), घरेलू सेवाएँ (Urban Company), और पेशेवर सेवाएँ (Freelancer, Upwork) में केंद्रित है।

(c) जनसांख्यिकीय संरचना : अधिकांश गिग श्रमिक युवा (18-35 वर्ष), पुरुष-प्रधान, और शहरी क्षेत्रों में केंद्रित हैं। हालाँकि, महिला गिग श्रमिकों की संख्या भी बढ़ रही है, विशेषकर घरेलू सेवाओं और सौंदर्य सेवाओं में।

(d) आर्थिक योगदान : गिग अर्थव्यवस्था भारत के GDP में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। अनुमान है कि 2029-30 तक यह ळक्ट में 2.35 लाख करोड़ रुपये का योगदान देगी (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)।

4.3 गिग श्रमिकों के समक्ष अवसर

4.3.1 लचीलापन और स्वायत्तता

गिग कार्य श्रमिकों को कार्य के समय, स्थान और मात्रा पर सापेक्ष स्वायत्तता प्रदान करता है। यह विशेष रूप से उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण है जो अन्य दायित्वों (जैसे शिक्षा, पारिवारिक देखभाल) के साथ कार्य करना चाहते हैं (फ्रीडमैन, 2014)।

4.3.2 आय के अवसर

गिग प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों को अतिरिक्त आय के अवसर प्रदान करते हैं। छात्र, गृहिणियाँ, और अंशकालिक कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए यह महत्वपूर्ण आर्थिक सहारा है। शोध से पता चलता है कि अधिकांश गिग श्रमिक गिग कार्य को अपनी प्राथमिक आय का स्रोत नहीं, बल्कि पूरक आय का साधन मानते हैं (बर्ग एवं अन्य, 2018)।

4.3.3 डिजिटल सशक्तीकरण

गिग प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों को डिजिटल कौशल विकसित करने और तकनीकी रूप से सशक्त होने का अवसर प्रदान करते हैं। स्मार्टफ़ोन, ऐप्स, और डिजिटल भुगतान प्रणालियों के माध्यम से श्रमिक डिजिटल अर्थव्यवस्था में सक्रिय भागीदार बनते हैं (वुड एवं अन्य, 2019)।

4.3.4 सामाजिक गतिशीलता

गिग अर्थव्यवस्था कुछ श्रमिकों के लिए सामाजिक गतिशीलता का माध्यम भी बन सकती है। शोध से पता चलता है कि कुछ गिग श्रमिक अपनी आय और कौशल में वृद्धि करके बेहतर आर्थिक स्थिति प्राप्त कर पाते हैं (नीति आयोग, 2022)।

4.4 गिग श्रमिकों के समक्ष चुनौतियाँ

4.4.1 सामाजिक सुरक्षा का अभाव

गिग श्रमिकों को स्वास्थ्य बीमा, पेंशन, अवकाश वेतन, और दुर्घटना बीमा जैसी बुनियादी सामाजिक सुरक्षाएँ प्राप्त नहीं होतीं। प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ उन्हें 'स्वतंत्र ठेकेदार' के रूप में वर्गीकृत करके नियोक्ता के दायित्वों से बचती हैं (डी स्टीफानो, 2016)। भारत में, सामाजिक सुरक्षा संहिता (2020) में गिग श्रमिकों को शामिल करने का प्रावधान है, परंतु इसका क्रियान्वयन अभी तक प्रभावी नहीं हुआ है (सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020)।

4.4.2 आय की अस्थिरता

गिग श्रमिकों की आय अस्थिर होती है, क्योंकि यह माँग, मौसम, और एल्गोरिदमिक आवंटन पर निर्भर करती है। शोध से पता चलता है कि अधिकांश गिग श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी का भी लाभ नहीं मिलता, और उनकी औसत आय पारंपरिक श्रमिकों की तुलना में कम होती है (बर्ग एवं अन्य, 2018; नीति आयोग, 2022)। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, 40 प्रतिशत गिग श्रमिकों की मासिक आय 15,000 रुपये से कम है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2025-26)।

4.4.3 व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा जोखिम

गिग श्रमिकों को लंबे घंटे काम करना पड़ता है, जिससे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। ड्राइवरों और डिलीवरी श्रमिकों को सड़क दुर्घटनाओं, वायु प्रदूषण, और मस्कुलोस्केलेटल विकारों का सामना करना पड़ता है।

शोध से पता चलता है कि एल्गोरिदमिक प्रबंधन के कारण गिग श्रमिकों में तनाव, चिंता, और अवसाद के मामले बढ़ रहे हैं (रोज़ेनब्लाट और स्टार्क, 2016; फेयरवर्क, 2021)।

4.4.4 सामूहिक सौदेबाजी की अनुपस्थिति

गिग श्रमिकों को सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार प्राप्त नहीं है, क्योंकि उन्हें 'कर्मचारी' नहीं माना जाता। इससे उन्हें अपनी मजदूरी, कार्य-दशाओं, और अन्य अधिकारों के लिए सामूहिक रूप से बातचीत करने का अवसर नहीं मिलता (वालास और शोर, 2020)।

4.4.5 एल्गोरिदमिक पारदर्शिता का अभाव

गिग श्रमिकों को एल्गोरिदम के निर्णयों—कार्य आवंटन, मूल्य निर्धारण, मूल्यांकन—के बारे में जानकारी नहीं होती। इससे उन्हें भेदभाव, अन्याय, और शोषण का सामना करना पड़ता है (ग्रीसबाख एवं अन्य, 2019)।

4.4.6 डेटा गोपनीयता और निगरानी

गिग प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों के व्यक्तिगत डेटा—स्थान, कार्य समय, प्रदर्शन—को एकत्र और विश्लेषण करते हैं। इससे श्रमिकों की गोपनीयता और स्वायत्तता का हनन होता है (केली, 2019)।

4.4.7 लैंगिक असमानता

महिला गिग श्रमिकों को अतिरिक्त भेदभाव, सुरक्षा जोखिम, और कार्य-जीवन असंतुलन का सामना करना पड़ता है। शोध से पता चलता है कि महिला गिग श्रमिकों को पुरुषों की तुलना में कम आय और कम अवसर प्राप्त होते हैं (टिकोना और माटेस्कु, 2018)।

4.5 भारत में विद्यमान नीतिगत ढाँचा

4.5.1 सामाजिक सुरक्षा संहिता (2020)

भारत सरकार ने 2021 में सामाजिक सुरक्षा संहिता पारित की, जिसमें गिग श्रमिकों और प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा के दायरे में शामिल करने का प्रावधान है। संहिता के अनुसार, केंद्र सरकार और राज्य सरकारें गिग श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ तैयार कर सकती हैं (सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020)। हालाँकि, इस संहिता के क्रियान्वयन में अभी तक महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई है।

4.5.2 राजस्थान गिग वर्कर्स अधिनियम (2023)

राजस्थान सरकार ने 2023 में 'राजस्थान प्लेटफ़ॉर्म आधारित गिग वर्कर्स (रजिस्ट्रेशन और कल्याण) अधिनियम' पारित किया, जो भारत में अपनी तरह का पहला कानून है। इस अधिनियम के तहत गिग श्रमिकों का पंजीकरण अनिवार्य किया गया है और उनके लिए एक कल्याण बोर्ड का गठन किया गया है, जो सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा और अन्य लाभ प्रदान करेगा (राजस्थान सरकार, 2023)। इसके बाद कर्नाटक और महाराष्ट्र जैसे राज्यों ने भी इसी प्रकार के कानून बनाने की पहल की है।

4.5.3 अन्य पहल

केंद्र सरकार ने गिग श्रमिकों के लिए 'ई-श्रम' पोर्टल शुरू किया है, जिसका उद्देश्य असंगठित श्रमिकों और गिग श्रमिकों का पंजीकरण करना है। इसके अतिरिक्त, कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय ने गिग श्रमिकों के लिए कौशल विकास कार्यक्रम शुरू किए हैं (श्रम और रोज़गार मंत्रालय, 2020)।

4.6 नीतिगत सुझाव

4.6.1 सामाजिक सुरक्षा का सार्वभौमिकीकरण

गिग श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा के दायरे में शामिल करना आवश्यक है। सरकार को चाहिए कि वह प्लेटफ़ॉर्म कंपनियों के साथ मिलकर एक सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा कोष (Universal Social Security Fund) का गठन करे, जिसमें स्वास्थ्य बीमा, पेंशन, दुर्घटना बीमा, और मातृत्व लाभ शामिल हों (चेरियन एवं अन्य, 2021)।

4.6.2 न्यूनतम मजदूरी की गारंटी

गिग श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी की गारंटी सुनिश्चित की जानी चाहिए। प्लेटफ़ॉर्म कंपनियों को प्रत्येक कार्य के लिए न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करना अनिवार्य किया जाना चाहिए, जिससे श्रमिकों को आय की न्यूनतम सुरक्षा प्राप्त हो (नीति आयोग, 2022)।

4.6.3 एल्गोरिदमिक पारदर्शिता

प्लेटफ़ॉर्म कंपनियों को एल्गोरिदम के निर्णयों—कार्य आवंटन, मूल्य निर्धारण, मूल्यांकन—के बारे में पारदर्शिता सुनिश्चित करनी चाहिए। सरकार को एल्गोरिदमिक जवाबदेही के लिए एक नियामक ढाँचा तैयार करना चाहिए (ग्रीसबाख एवं अन्य, 2019)।

4.6.4 सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार

गिग श्रमिकों को सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। सरकार को गिग श्रमिकों के लिए स्वतंत्र ट्रेड यूनियनों के गठन की अनुमति देनी चाहिए और उन्हें कानूनी मान्यता प्रदान करनी चाहिए (वालास और शोर, 2020)।

4.6.5 व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा

गिग श्रमिकों के लिए व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा मानकों का पालन अनिवार्य किया जाना चाहिए। प्लेटफ़ॉर्म कंपनियों को श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य बीमा, सुरक्षा प्रशिक्षण, और आपातकालीन सहायता प्रदान करनी चाहिए (अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, 2021)।

4.6.6 डिजिटल साक्षरता और कौशल विकास

गिग श्रमिकों के लिए डिजिटल साक्षरता और कौशल विकास कार्यक्रम शुरू किए जाने चाहिए। इससे उन्हें बेहतर कार्य अवसर और आय प्राप्त करने में मदद मिलेगी (नीति आयोग, 2022)।

4.6.7 लैंगिक समानता

गिग अर्थव्यवस्था में लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के लिए विशेष उपाय किए जाने चाहिए। महिला गिग श्रमिकों के लिए सुरक्षित कार्य वातावरण, समान वेतन, और विशेष सामाजिक सुरक्षा लाभ प्रदान किए जाने चाहिए (टिकोना और माटेस्कु, 2018)।

4.7 भविष्य की शोध दिशाएँ

(a) भारतीय गिग श्रमिकों के दीर्घकालिक आर्थिक और सामाजिक प्रभावों पर अनुदैर्ध्य अध्ययन।

(b) महिला गिग श्रमिकों के अनुभवों और लैंगिक असमानता पर गहन शोध।

(c) सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के क्रियान्वयन और प्रभावशीलता का मूल्यांकन।

(d) ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में गिग अर्थव्यवस्था के विकास और प्रभावों का अध्ययन।

(e) एल्गोरिदमिक पारदर्शिता और जवाबदेही के लिए तकनीकी और नीतिगत समाधानों पर अंतरानुशासनिक शोध।

(f) गिग अर्थव्यवस्था और औपचारिक रोजगार के बीच संबंधों का विश्लेषण।

(g) कोविड-19 के बाद गिग अर्थव्यवस्था के बदलते स्वरूप का अध्ययन।

5. निष्कर्ष

गिग अर्थव्यवस्था ने भारतीय श्रम बाजार में अभूतपूर्व परिवर्तन लाए हैं। इसने लाखों लोगों को आय के अवसर, लचीलापन, और डिजिटल सशक्तीकरण प्रदान किया है। परंतु साथ ही इसने सामाजिक सुरक्षा, आय अस्थिरता, व्यावसायिक स्वास्थ्य, और सामूहिक सौदेबाजी जैसी गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। भारत में गिग श्रमिकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, और यह प्रवृत्ति भविष्य में भी जारी रहने की संभावना है।

विद्यमान नीतिगत ढाँचा—सामाजिक सुरक्षा संहिता (2020), राजस्थान गिग वर्कर्स अधिनियम (2023)—गिग श्रमिकों

के संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं, परंतु उनका प्रभावी क्रियान्वयन अभी तक सुनिश्चित नहीं हुआ है। आवश्यक है कि सरकार, प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ, और नागरिक समाज मिलकर एक संतुलित नियामक ढाँचा विकसित करें, जो नवाचार को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ श्रमिकों के अधिकारों और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी भी सुनिश्चित करे।

गिग अर्थव्यवस्था का सतत और समावेशी विकास तभी संभव है जब श्रमिकों को केवल 'स्वतंत्र ठेकेदार' के रूप में नहीं, बल्कि सम्मानजनक कार्य और सामाजिक सुरक्षा के अधिकारी के रूप में मान्यता प्रदान की जाए। यह न केवल श्रमिकों के लिए, बल्कि समग्र आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए भी आवश्यक है।

संदर्भ

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन. (2021).
World employment and social outlook: The role of digital labour platforms in transforming the world of work- International Labour Organization-

आर्थिक सर्वेक्षण. (2025-26). Economic survey 2025-26. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार.

कालेबर्ग, ए. एल. (2009). Precarious work, insecure workers: Employment relations in transition- American Sociological Review, 74(1), 1–22-

केली, जे. (2019). Data and the gig economy- Journal of Information Ethics, 28(2), 45–59-

ग्रीसबाख, के., कीथ, एम., - रोज़ेनब्लाट, ए. (2019). Algorithmic control in platform work- Proceedings of the ACM on Human-Computer Interaction, 3(CSCW), 1–21-

चेरियन, जे., जॉर्ज, एस., - मैथ्यू, ए. (2021). Social security for gig workers in India- Economic and Political Weekly, 56(12), 45–52-

टिकोना, जे., - माटेस्कु, ए. (2018). Gendered platform work- Data - Society Research Institute-

डी स्टीफानो, वी. (2016). The rise of the "just-in-time workforce": On-demand work, crowdwork, and labour protection in the "gig economy-" Comparative Labor Law - Policy Journal, 37(3), 471–504-

नीति आयोग. (2022). India's booming gig and platform economy: Perspectives and recommendations on the future of work- NITI Aayog, Government of India-

फेयरवर्क. (2021). India gig workers survey- Fairwork Foundation-

फ्रीडमैन, जी. (2014). Workers without employers: Shadow corporations and the rise of the gig economy- Review of Keynesian Economics, 2(2), 171–188-

बर्ग, जे., फ़ुरर, एम., हार्मन, ई., रानी, यू., - सिल्बरमैन, एम. एस. (2018). Digital labour platforms and the future of work: Towards decent work in the online world- International Labour Office-

राजस्थान सरकार. (2023). Rajasthan Platform Based Gig Workers (Registration and Welfare) Act, 2023- Government of Rajasthan-

रोज़ेनब्लाट, ए., - स्टार्क, एल. (2016). Algorithmic labor and information asymmetries: A case study of Uber's drivers- International Journal of Communication, 10, 3758–3784-

वालास, एस., - शोर, जे. बी. (2020). What do platforms do\ Understanding the gig economy- Annual Review of Sociology, 46, 273–294-

वुड, ए. जे., ग्राहम, एम., लेहदॉनविर्टा, वी., - हर्थ, आई. (2019). Good gig, bad gig: Autonomy and algorithmic control in the global gig economy- Work, Employment and Society, 33(1), 56–75-

श्रम और रोज़गार मंत्रालय. (2020). Social Security Code, 2020- Ministry of Labour and Employment, Government of India-

सामाजिक सुरक्षा संहिता. (2020). The Code on Social Security, 2020- Government of India-

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Cultural Echoes of the Past: A Historical and Cultural Study of Indian Folk Arts

Anjali Sachan
Research Scholar, History
Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur

Abstract

India has a rich cultural diversity that is defined by many features like region, language, religion, and ecology. One of the best examples of this cultural diversity is the folk and tribal art of this country. Folk art is not just an ornamentation process, but it holds a lot more in terms of collective consciousness, social customs, religious beliefs, ecological knowledge, and community identity of India. The Indian folk arts have acquired their current forms only by means of continuous interaction between people, ecology, rituals, and local customs. Some of the notable examples of folk art include Madhubani of Bihar, Warli of Maharashtra, Pattachitra of Odisha, Phad of Rajasthan, Gond of Madhya Pradesh, Kalamkari of Andhra Pradesh and Telangana, and Aipan of Uttarakhand.

This research analyzes Indian folk arts from a historical-cultural approach. It studies their roots, specific characteristics, symbols, social functions, diversity between regions, and present transformations. The methodology used in this research is qualitative, historical, and descriptive-analytical based on secondary sources. The results of the research show that the folk arts should not be regarded as a relic belonging to the past, but rather be treated as a living cultural tradition. Even though modernity, commercialization, and changing lifestyles present some difficulties, markets, institutions, museums, and technological advancements offer opportunities for the preservation and dissemination of cultural heritage.

Keywords: Indian Folk Art, Tribal Art, Cultural Heritage, Madhubani, Warli, Gond, Pattachitra, Phad, Kalamkari, Aipan, Cultural Identity

1. Introduction

The unique cultural heritage of India is manifested in its overwhelming diversity of art forms. In every corner of India, each community has its own special language of art, be it in the forms of painting, embroidery, sculpture or decoration of fabrics. Folk art is quite an important aspect of all artistic practices since it is based on common people's experiences rather than institutional art practices. Folk art becomes a medium representing the relationship between the people and their environment.

The Indian government's handicrafts portal describes folk painting as traditional art that is

representative of the folk traditions and way of life of rural Indian communities. According to the information given on the portal, the most popular art forms are Madhubani, Pattachitra and Warli. These styles use natural paints and simple tools and are based on simple themes such as folk legends, festivals and rituals. (Office of the Development Commissioner [Handicrafts], n.d.). (Handicrafts)

Folk arts are also a means of preserving the historical past because communities tell their stories, religion, ecological knowledge and practices through images, signs and symbols. Therefore, understanding folk art helps one comprehend society and history at the same time.

However, it is necessary to realize that not all folk traditions can be perceived as the result of one ancient artistic tradition. Indian folk art has a long story behind it, which includes many important events and factors like local traditions, popular religions, regions, rituals, tribes, trade, migration and technological progress.

2. Objectives of the Study

The major objectives of the present study are:

1. **To examine the historical development and regional diversity of Indian folk arts**, with special reference to traditions such as Madhubani, Warli, Gond, Pattachitra, Phad, Kalamkari, and Aipan.
2. **To analyse the cultural and social significance of Indian folk arts**, particularly their role in preserving community identity, collective memory, religious beliefs, ecological knowledge, and women's cultural traditions.
3. **To assess the impact of modernization, commercialization, and contemporary cultural initiatives on Indian folk arts**, with particular emphasis on the challenges and possibilities of their preservation and transmission as living heritage.

3. Research Methodology

This paper relies on a qualitative and historical analytical approach to research. It uses mainly secondary sources for data. Research works including publications like books, journals, and papers investigating Indian tribal art are the main basis for the study, as well as the primary documents and publications by various institutions of the Government of India, including the Ministry of Handlooms and Handicrafts. UNESCO sources allow supplementing the study with important information. The research employs the techniques of historical analysis, comparative and thematic study.

4. Review of Literature

The current studies of available literature focus on the examination of folkart originating from India from different angles such as aesthetics, history, anthropology, and culture. Kashyap (2026) is the author introducing the idea of folk art being a medium communicating cultural diversity, collective experience and symbolism as well as social values. The author Usha Rani G (2025) looks at folk art from the point of view of its role in storytelling and spirituality as well as being a mark of community identity at the same time being aware of the modernization and commercialization of folk art which is a major problem. Furthermore, Varadpande (1991) and Dalmia (1988) state that folk art is a

community-based cultural activity and practice. Those studies stress that folk art represents three dimensions which are: aesthetic expression, social memory, and living heritage.

However, it seems that scientific literature fails to address the issue of giving a complex analysis of the historical development of folk art, regional comparisons, gender differences, ecological knowledge, and modern preservation practices. The current research is aimed to fill in the above-mentioned gap.

Findings and discussions

5. Historical Development of Indian Folk Arts

The history of Indian visual culture is very old and varied. Early rock paintings show that early human groups in India used visual images for recording animals, hunting, religious ceremonies and aspects of the natural world. The evolution of murals, temple and manuscript traditions gave rise to new stylistic vocabulary.

However, it would not be historically accurate to consider modern folk paintings a direct offshoot of a particular ancient tradition. In fact, Indian folk painting should be viewed as a combination of long-standing cultural continuity and regional innovation.

The development of visual themes has been significantly influenced by religious traditions. Religious and mythological images of Hindus, Buddhists, and Jains have greatly contributed to the formation of visual language, as well as temple traditions that have fostered the growth of regional art styles. Cultural exchanges during the Middle Ages have also expanded Indian art traditions, as seen, for example, in Persianate influences on Indian art.

The colonial period opened up new markets and materials for art. The Kalighat painting development gives the example of this - it was born near the Kalighat temple of Kolkata and gradually enriched itself with new subjects, moving from religious to social and satirical ones.

Thus, the historical development of folk art should be interpreted not simply as preservation of the past but as a continuous process of adaptation.

6. Regional Diversity of Indian Folk Arts

6.1 Madhubani Painting

Madhubani, or Mithila painting, is known mainly in the state of Bihar. It used to be painted on wall and floor and is now shifting to the use of paper, cloth, canvas, etc. Its subjects are Hindu gods, nature, animals, symbols of fertility, weddings and ceremonies.

The use of bold outlines, geometrical patterns and bright, vivid colours makes it outstanding. The transfer from household ritual painting to commercialized art points out the interrelation of folk traditions with private, local and worldwide contexts.

6.2 Warli Art

Originating in Maharashtra, Warli painting has emerged from the Warli community. This is a simplified visual language and is made up of minimalist human figures and geometric shapes illustrating everyday happenings. For instance: farming and hunting, wedding celebrations, dances and social gatherings

form a common subject in the paintings.

White pigment against an ochre or earthy background gives the painting a unique look. Moreover, the art symbolizes the community's bond with nature and continuous sense of community life. The literature given also finds its likeness in farming, social rituals and the relevance of Nature in the community.

6.3 Gond Art

Gond Art is referred to mainly in Madhya Pradesh and Gond people. The art mainly represents animals and birds, forests and the mythology. Use of dots and lines has made Gond art a unique visual experience.

Thus, Gond art shows a strong connection between art and the consciousness towards nature. In this context, animals and trees are depicted not just as decoration but also in a spiritual composition.

6.4 Pattachitra

The word Pattachitra, largely popular in Odisha, means painting on cloth. This art form is known for its fine details and powerful storytelling. The paintings are based on tales from Hinduism.

The continuation of this art is proof of the relationship between religious organizations, art community, and cultural memory. Cultural documentation by government agencies has also recognized Pattachitra. (CCRT India)

6.5 Phad Painting

Phad is a traditional Indian form of scroll painting that originated in Rajasthan and combines artistic strokes with narrative elements. Phad features different episodes of heroic deeds and religious stories that are painted on the scroll in a sequence.

Phad is one of the famous traditional folk paintings that is recorded by the Ministry of Culture, Government of India. (CCRT India) UNESCO-linked Indian intangible heritage documentation also includes Phad scroll painting and narration among India's documented cultural traditions. (Intangible Cultural Heritage)

6.6 Kalamkari : Kalamkari is primarily associated with the states of Andhra Pradesh and Telangana, and is a practice that merges art and textile. The tradition of Kalamkari has mythological and narrative influences. This technique presents the significance of the kalam, which refers to the unique pen-like tool used by artists. The evolution of Kalamkari indicates that art and crafts in India may not be easily categorized as painting, textile or craft.

6.7. Aipan and Other Regional Art

Aipan is the unique decorative art of Uttarakhand. Similar to Kalamkari, Aipan also reflects craftsmanship that can be found throughout India in domestic art. The Government of India's handicraft portal has categorized Aipan together with Madhubani, Warli, Gond, and Phad as a traditional folk paint. (Handicrafts) Such traditions demonstrate that art in India has historically been embedded in everyday life rather than restricted to galleries or elite institutions.

7. Folk Art, Women and Community Knowledge

Women have had a major responsibility in terms of facilitating many domestic and ritual art traditions.

The art traditions referred to as Mandana, Alpana, etc., have mainly been practiced by women during ceremonies like festivals, marriages, etc.

Women have significantly contributed to local folk art practices. Womens artistic creativity is transmitted from generation to generation in forms such as Mandana and Alpana.

This implies the importance of this gender dimension. With the help of domestic artistic production, women could express their religious values, hopes and thoughts and identity through art which was socially recognized.

The study points out that, to a degree, commercialization of this art has transformed women from domestic artists into professionals.

8. Symbolism, Environment and Social Memory

Folk art delivers its messages through symbols. The sun, moon, trees, birds, animals, geometric patterns, religious icons, and human activities often symbolize much more than their appearance.

Warli, Gond, and Madhubani showcase how communities interpret their ties with nature, society, and sacredness. Research papers show that such symbols also secure local traditions, fairy tales, and beliefs.

The environmental aspect is very crucial. Natural colors, earth colors, rice paste, leaves, clay, and other materials encourage the art process to be combined with nature around us. Traditional art preserves not only visual knowledge but also knowledge about local materials and environment.

Research made by UNESCO indicates the relationship between art traditions, women, rituals, and mathematical art. Kolam is made with rice powder, which is traditionally passed from generations. (Intangible Cultural Heritage)

9. Modernization, Commercialization and Preservation

Indian folk arts are facing many problems at present. The process of urbanization and changes in lifestyle has made some forms of old patronage less important. Even commercial production may sometimes lead to reductions and simplifications of artforms in order to satisfy market demands. The literature used for the research mentions that the most significant challenges include urbanization, commercialization, and lack of support for artists.

At the same time, it should be mentioned that modernization does not mean disappearance of culture. Indeed, the same research states that a great number of folk art creators have successfully transferred folk motifs into painting, textile, design and other mediums. Furthermore, government institutions are also doing a lot of efforts. For instance, the National Museum Institute is holding various workshops on different types of folk art such as Warli, Gond, Pattachitra, and Madhubani. (Indian Culture)

The government of India has pioneered broader cultural mapping endeavors which aim at systematic documentation. One of these initiatives, known as Mera Gaon Meri Dharohar, aims at documenting the cultural assets of villages under the National Mission on Cultural Mapping. (UNESCO)

The principle of UNESCO that living heritage is dependent on its transmission by communities and not just preservation in museums is of considerable relevance. The various cultural practices that have received UNESCO recognition in India clearly show that community participation is critical for

the preservation of cultural heritage. (Intangible Cultural Heritage)

11. Conclusion

The folk arts of India are significant as they help to sustain the diversity of the Indian history and culture, keeping in place the collective memory, belief systems, social structure, ecological knowledge, and the meaning of community. Some of the traditional folk arts such as Madhubani, Warli, Gond, Pattachitra, Phad, Kalamkari, and Aipan are examples of the beautiful experience of local tradition defending the solidarity of the nation against diversity of cultures. The art forms which are described above are considered to be important visual, tangible, and community resources allowing to expand the borders of historical knowledge beyond the written records. It is important to point out that the folk arts should be preserved, but it does not mean that they should stop evolving.

References

1. Dalmia, Y. (1988). *The painted world of the Warli*. Lalit Kala Akademi.
2. Gairola, V. (n.d.). *Indian painting*.
3. Gairola, V. (n.d.). *Critical study of Indian painting*.
4. Kashyap, P. (2026). Folk arts of India: A study. *International Journal of Research–GRANTHAALAYAH, 14*(2SCE), 225–227. https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v14.i2SCE.2026.6773
5. Office of the Development Commissioner (Handicrafts). (n.d.). *Folk painting*. Ministry of Textiles, Government of India. (Handicrafts)
6. Rani, U. G. (2025). Folk and tribal art of India. *Aksharasurya: Peer-Reviewed, Multi Lingual E-Journal, 7*(3), 362–367. https://doi.org/10.5281/zenodo.15796461
7. Shukla, R. C. (n.d.). *Appreciation of painting (Chitrakala ka rasaswadan)*.
8. UNESCO. (n.d.). *India: Intangible cultural heritage*. UNESCO Intangible Cultural Heritage. (Intangible Cultural Heritage)
9. UNESCO. (2012). *Kolam, ritualistic threshold drawings and designs of Tamil Nadu, India*. UNESCO Intangible Cultural Heritage. (Intangible Cultural Heritage)
10. Varadpande, M. L. (1991). *Folk and tribal arts of India*. Abhinav Publications.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

जनता के सिंहासन के कवि : दिनकर

मुलायम यादव
शोध छात्र, हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी।

जनचेतना के प्रबल समर्थक रामधारी सिंह दिनकर का हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उस समय पदार्पण हुआ जिस समय देश पराधीनता की जंजीर से जकड़ा हुआ था। भारतीय समाज की व्यवस्था अत्यंत विशृंखलित हो चुकी थी। विदेशी शासक जनता को परेशान कर रहे थे। देश के अंदर ही कुछ ऐसे स्वार्थी लोग कार्य कर रहे थे जिससे देश समाज और संस्कृति का नुकसान हो रहा था। इन सब विरोधी नीतियों पर दिनकर का ध्यान गया तब उनका हृदय मानो गरीबों शोषितो तथा देश के प्रति चित्तकार उठा, उन्होंने अपने काव्य साधना के माध्यम से जनता को एक नई दिशा देने का सतत् प्रयास किया और अपने उद्देश्य में सफल रहे।

दिनकर अपने काव्य में किसानों, मजदूरों की दशा का वर्णन किए हैं। दिल्ली कविता में वैभव की दीवानी दिल्ली को कृषको रानी कहकर संबोधित किया है। दिल्ली का राजवैभव उन्हें किसानों और मजदूरों के रक्त से रंजीत दिखाई देता है। पूंजीवादी दमन और शोषण से त्रस्त कृषकों की दयिनीय दशा पर मर्माहत् हो उठते हैं और हुंकार में लिखते हैं–

"जेठ हो की पुस हमारे कृषकों को आराम नहीं
छुटे बैलों से संग हमारे जीवन में कभी यह याम नहीं।
बसन कहां सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं
मुख में जीव, शक्ति भुज में जीवन में सुख का नाम नहीं।"[1]

एक तरफ धनवान लोग अपने कुत्तों को दूध पिलाते हैं तो दूसरी और कृषकों, मजदूरों के बच्चे दूध के अभाव में तड़प तड़प कर मर जाते हैं। समाज में ऐसे ही शोषण को मिटाने के लिए दिनकर क्रांति का आवाह्न करते हैं। वह इस व्यवस्था को नष्ट कर नवीन समाज की कामना करते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था के कारण समाज में विषमता की खाई गहरी होती गई। अंग्रेजी शासन भारतीय जनता का कुत्तों से भी अधिक अपमान करती है। समाज की एक एसी स्थिति को कवि के हृदय में शासन के प्रति आक्रोश भर जाता है।वह नम्रता को छोड़कर क्रांति की सहारा लेने को विवश हो जाता है–

"हटो व्योम के मेघ, पथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं;
'दूध -दूध' को वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम आ जाते हैं।"[2]

कवि पूंजीपतियो को जागते हुए कहता है तुम केवल सुख सुविधा में ध्यान मत दो एक बार व्याकुल आवाज को भी सुनो नहीं तो सदियों से पीड़ित शोषित कृषकों का आक्रेश जब बाहर आएगा तो फिर मनचाही वस्तु जिस तरह चाहेगा ले लेगा वह–

"अपने को ही नहीं देख, टुक ध्यान इधर भी देना,
भूमिहीन कृषकों की कितनी बड़ी है सेना।

बांध तोड़ जिस रोज फौज खुलकर हल्ला बोलेगी,
तुम दोगे क्या चीज वही जो चाहेगी, सो ले लेगी।"[3]

कभी भी समाज का व्यक्ति होता है समाज के प्रति उसका कर्तव्य होता है। अपने साहित्य के माध्यम से वह समाज को एक नई दिशा प्रदान करता है। दिनकर भी अपने जीवन में भारत के दो रूपों को देखा है स्वतंत्रता के पूर्व का भारत और स्वतंत्रता के बाद का भारत। परतंत्र भारत राजनीतिक इतिहास शोषण-उत्पीड़न छल-कपट तथा राग-द्वेष इत्यादि घटनाओं से भरा पड़ा है, प्रत्येक दृष्टि से संपन्न भारत में अंग्रेजों के कारण भुखमरी, गरीबी का वातावरण छाया रहा।

स्वतंत्रता के बाद भारत शासको के समक्ष देश की अर्थव्यवस्था की समस्या विकराल रूप धारण कर सामने खड़ी थी। क्योंकि अंग्रेजों ने भारत को लूट कर जर्जर बना दिया था। स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत अपने आंतरिक समस्याओं से निपटा रहा था, तभी चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया जिसके कारण देश का विकास एकदम रुक गया। चीन आक्रमण से भारत उभरा ही नहीं था कि पाकिस्तान आक्रमण कर दिया। जिससे देश की हालत और बिगड़ गई।एसी विषम परिस्थितियों को दिनकर ने देखा है तब उन्हें सोने की चिड़िया का भारत याद आता है–

"अरुण की चिर ज्योति तेरे देश में
है सुना उसकी अमित मुस्कान है
टक टकी अपनी क्षितिज पर है लगी
निशी गई हंसना स्वर्ण -विहान है।"[4]

देश के जनता अब जागरुक होने लगी है। सदियों से दवायी- सतायी जा रही जनता अपना महत्व समझ चुकी है–

"सदियों की ठंडी बुझी- राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने की ताज पहन इठलाती है
दो समय के रथ का घर-घर का नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।"[5]

दिनकर जनता के शक्ति से परिचित कराते हुए कहते हैं जनता जब कुछ करने की वीणा उठाती है तो उसकी राह रोकने की शक्ति किसी में नहीं है––

"हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है;
जनता की रोक राह, समय में ताव कहां
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है।"[6]

भारत का अतीत गौरवशाली रहा है। किसी भी देश का वर्तमान अपने अतीत से प्रेरणा प्राप्त कर स्वरूप निर्धारित करता है। जिस देश का अतीत आदि गौरवपूर्ण हो उसका वर्तमान सुखद होगा। दिनकर ने भारत के गौरव को इतिहास से वर्तमान स्थिति सुंदर बनाने का प्रयत्न किया है। उनके अतीत के मुंह को देखकर लक्ष्मी नारायण सुधांशु ने लिखा है–

"दिनकर के हृदय में अतीत का बड़ा प्रबल आग्रह है। जिस दिन उनके हृदय में हिमालय फूटा उसी दिन से उनकी प्रतिभा ने एक नई दिशाओर गति की।अतीत गौरव की स्मृति तथा खंडहरों के प्रति दिनकर ने जी भावुकता का परिचय दिया वह अप्रतिम है।"[7]

अतीत के गौरव को याद करते हुए दिनकर ने लिखा––

"यह खंडहर किस स्वर्ण अजिर का
धूलों में सो रहा टूटकर रत्न शिखर किसके मंदिर का।"[8]

दिनकर ने अपने काव्य में उसे व्यवस्था का विरोध किया जहां नब्बे प्रतिशत की कमाई पर दस प्रतिशत लोग मौज कर रहे हैं। जहां मेहनत करने वाले को उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है।जहां उत्पादन करने वाले भूखे हैं, दिनकर

का काव्य शोषितो के मुक्ति का उदघोस है। उनका मन सामाजिक और आर्थिक से पीड़ित जनता को देखकर हा कर हाहाकार कर उठता है–

"पिलाने को कहां से रक्त लाये दानवों को,
नहीं क्या स्वत्व है प्रति शोध का हम मानवों को।।"[9]

जागरण और चेतना के थपेड़ो का अनुभव के सिर्फ मध्यम वर्ग ही नहीं कर रहा था बल्कि किसान और मजदूर भी अपने ऊपर होने वाले शोषण के प्रति जागरूक हो रहे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जो संघर्ष उसकी झांकी मिलती है। देश ने जो बलिदान दिया उसके फलस्वरुप स्वतंत्रता प्राप्त हुई। और युगचारण दिनकर का जनता के प्रशस्ति में गा उठे–

"सब से विराट जनतंत्र जगत का आप पहुंचा,
तैंतीस कोटी- हित सिंहासन तैयार करो;
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है ,
तैतीस कोटि जनता के सीर पर मुकुट धरो।"[10]

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत शासन तथा कर्मचारी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने लगे हैं। उसमें स्वेच्छाचारिता की वृत्ती जीस भयंकर रूप का उभर कर आयी उससे शासन तंत्र दुर्बल होने लगा। यह स्थिति राष्ट्र के लिए घातक था। दिनकर जैसे विद्रोही कवि के लिए असह्य था। कवि ने तिक्ष्ण कटाक्ष किया–

"लोग हैं आजाद बिललाने को,
नेता है आजाद जहां चाहे, वहां जाने को
अफसर परम स्वतंत्र है।
मंत्री जी हजार पढ़े लगते मंत्र हैं ,
साहब तो खुद परेशान है।
चपरासी देता उन्हें पानी न पान है।"[11]

दिनकर संसद के सदस्य रहने के कारण राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार से भली-भांति परिचित है। देश के वहीं नेता स्वराज प्राप्ती से पूर्व अपने त्याग, देशप्रेम राष्ट्रभक्ति के कारण जनता के अपार स्नेह कौर श्रद्धा के पात्र बने थे।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश सेवा को विस्तृत स्वार्थ धनलिप्सा एवं पदलोलुपता का शिकार हो गए। उनमें विचित् आपाधापी मच गयी। दिनकर ने भ्रष्टाचार का सजीव चित्रण किया है–

"टोपी रहती है, मैं थैली बन सकती हूं
कुर्ता कहता है, मुझे बोरिया ही कर लो।
ईमान बचाकर कहता है आंखें सबकी
बिकने को तैयार, खुशी हो जो दे दो।।"[12]

जनचेतना, राष्ट्रचेतना, शोषितो के प्रति सहानुभूति, किसान, मजदूर वर्ग के समर्थक, स्वतंत्रता के बाद भ्रष्टाचार पर प्रहार, राजनीति भ्रष्टाचार का उजागर, जनमानस के समर्थक, राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जनता के सिंहासन कवि हैं।

संदर्भ- सूची

1. दिनकर, रामधारी सिंह, 'हुंकार', पटना उदयाचल प्रकाशन, पृ. सं. 7
2. वहीं से पृ सं 23.
3. दिनकर, रामधारी सिंह, 'नील कुसुम' पृ. सं 86.
4. दिनकर, रामधारी सिंह, 'इतिहास के आंसू' पृ. सं 8.

5. दिनकर, रामधारी सिंह, 'धूप और धुआं' पृ. सं 53.
6. वहीं से पृ. सं 54.
7. सुधांशु, लक्ष्मी नारायण, 'जीवन के तत्व और काव्य सिद्धांत' पृ. सं 302.
8. दिनकर, रामधारी सिंह, 'इतिहास के आंसू' पृ. सं 13.
9. दिनकर, रामधारी सिंह, 'हुंकार' पटना उदयाचल प्रकाशन, पृ. सं 26.
10. दिनकर, रामधारी सिंह, 'नील कुसुम' पृ. सं 65.
11. दिनकर, रामधारी सिंह, 'परशुराम की प्रतीक्षा' पृ. सं 62.
12. दिनकर, रामधारी सिंह, 'नीम के पत्ते' पृ सं 18.

M. N. : 9794029853
Email id: mulayamsy1993@gmail.com

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

मानवीय मूल्यों की संजीवनी कबीर भक्ति

डॉ. सावित्री देवी
सहायक आचार्या हिंदी
राजकीय महाविद्यालय करसोग
दूरभाष : 7018732092
Email ID: savikarsog@gmail.com

कबीर हिंदी साहित्य जगत का ही नहीं बल्कि भक्ति के क्षेत्र का प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इन्होंने भक्ति का ऐसा मार्ग चुना जो ईश्वर से अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना नहीं करता और न ही दिखावा करने का प्रयास करता है। बल्कि इनकी भक्ति मानव को नया संदेश देती है और मानव होने का एहसास कराती है। आज जब मानव मूल्य निरंतर गिरावट की सीमा पार करते दृष्टिगत हो रहे हैं ऐसे समय में कबीर की भक्ति उन्हें पुनर्जीवित करने में अहम योगदान दे रही है। इनकी भक्ति ईश्वर अराधना या स्मरण मात्र नहीं है बल्कि सत्य, प्रेम, करुणा, समर्पण, आत्म शोध, आत्मसंतुष्टि एवं मानवता पर आधारित जीवन दर्शन है। इनकी भक्ति ने समाज सुधारने का जो प्रयास किया है वह उन्हें समाज सुधारक की श्रेणी में रखने में सहायक रहा है। कबीर की भक्ति समय और माध्यम से परे है, जिसका ज्ञान आज के तकनीकी युग में भी प्रासंगिक हैं। ये कृत्रिमता से हटकर सार्थक जीवन की वास्तविक दिशा दिखाते हैं। इनकी भक्तिपरक दृष्टि सतत विकास और नैतिक जीवन के लिए अति आवश्यक है। मानव-मूल्यों की सार्थकता के संदर्भ में रविन्द्र कुमार सिंह कहते हैं कि "जनमानस में व्याप्त भ्रांत धारणाओं को नकारकर उच्च और उदात्त मान्यताओं का प्रतिपादन करते हुए कल्याणकारी तत्वों को समृद्ध करना साहित्यकार का उत्तरदायित्व है। यदि साहित्यकार की रचना इस दृष्टि से प्रेरित है तो उसका कृतित्व प्रासंगिक है। व्यापक संदर्भ में साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता, मानव मूल्यों, सामाजिक कल्याण, मानवीय सरोकार मानवीय संलग्नता में निहित है।"[1]

आज मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है क्योंकि लोग जरूरत से ज्यादा एक दूसरे के विरोधी बनते जा रहे हैं। किसी एक व्यक्ति की खुशी दूसरे व्यक्ति के लिए दुख का कारण बन रही है। हर व्यक्ति बुलंदियों को छूना चाहता है, चाहे उसे किसी भी रास्ते पर क्यों न चलना पड़े यही मानव की गिरावट का परिचय है। ऐसे समय में कबीर के विचार नव जागरुकता का पाठ पढ़ाते दृष्टिगत होते हैं। मानवीय मूल्यों का ह्रास करता अहंकार भाव लोगों के विवेक का शत्रु बन गया है। यह मानसिक शांति को भंग करने का सहायक कारक बन रहा है। ऐसे समय में कबीर संदेश देते हैं -

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
सब अंधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या माँहि।।"[2]

आज के समय में मानव को अहंकार त्यागकर निरंतर कर्मरत रहने की जरूरत है ताकि वह जीवन की सार्थकता सिद्ध कर सके।

मानवता का परचम लहराने में कबीर ने कोई कमी नहीं रखी। आज जहां धार्मिक असहिष्णुता वैश्विक समस्या बन गई हैं, लोग धर्म के नाम पर एक दूसरे के खून के प्यासे बन गए हैं वहीं कबीर भक्ति मानव को सचेत करती प्रासंगिक प्रतीत

होती है। कबीर ने हिन्दू- मुसलमानों को एक करने का प्रयास किया। इनके विचार आज सामाजिक एकता एवं धार्मिक सहिष्णुता के लिए प्रेरणास्रोत हैं। समानता एवं सहिष्णुता मानवीय मूल्यों की सार्थकता की वाहक हैं। कबीर ने विभिन्न धर्मों में एकता स्थापित करने का कार्य किया है। आज इस तरह के समाज सुधारक की आवश्यकता है। धार्मिक कट्टरता इन्सानियत को कलंकित कर रही है। धर्म के नाम पर दंगे करवाए जाते हैं। ऐसे समय में कबीर की धार्मिक एकता के विचार प्रासंगिक हैं–

"रज गुन ब्रह्म तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।
कहैं कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई।"[3]

कबीर की भक्ति एक ईश्वर की उपासना की प्रेरणा देते हुए सबके लिए भक्ति के मार्ग खोल देती है। जिसमें न किसी को छोटा न बड़ा मानते हैं, क्योंकि ईश्वर प्रेम केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं है बल्कि परमात्मा की सृष्टि के सभी जीव-जंतु उसकी सीमा के भीतर समाहित होते हैं। कबीर उन लोगों को भी समझाने का प्रयत्न करते हैं जो कहते हैं कि ईश्वर मंदिर में और खुदा मस्जिद में हैं। ये लोग ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं समझ पाए। इस सम्बन्ध में कबीर कहते हैं–

"मो को कहां ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में।।"[4]

परोपकार एक ऐसा मानवीय मूल्य है जो मानव जीवन की सार्थकता का सूत्रधार है। वर्तमान समय में लोग स्वार्थ में अंधे हो गए हैं। आज भाई - भाई शत्रु बन बैठे है। बड़े रसूखदार लोग स्वार्थांधता में उचित - अनुचित में भेद कर पाने में असफल हो रहे हैं। पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों की जगह व्यक्तिगत स्वार्थ ने ले ली है, जिसके कारण मानवीय सम्बन्धों में तेजी से कड़वाहट बढ़ती जा रही है। आधुनिक जीवन की स्पर्धा ने मानव को आत्मकेंद्रित कर दिया है। मानवीय संवेदनाएं, करुणा , परोपकार जैसी भावनाएँ समाज से लुप्त हो रही हैं। ऐसे समय में सामाजिक सद्भाव को पुनर्स्थापित करने के लिए कबीर भक्ति सहायक हो सकती है। इन्होंने परोपकार का संदेश देते हुए लोगों को जागरूक किया कि समाज एवं परिवार में नैतिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए मनुष्य को दूसरों के कल्याण हेतु सदैव तत्पर रहना होगा। कबीर कहते हैं–

कबीर मरौ पर मांगो नहीं, अपने तन कै काज।
परमारथ के कारणै, मोहि मांगत न आवे लाज।।[5]

इसमें कबीर बताते हैं कि अपने लिए तो कोई भी जीव कुछ भी कर लेता है परन्तु इस संसार में आने का उद्देश्य तब सार्थक होगा जब दूसरों की सहायता में तत्परता को ध्येय मानेंगे। परोपकार करके जहां एक ओर किसी की खुशी का कारण बनते हैं, वहीं उस ईश्वर के प्रति साधना स्वतः व्यक्त हो जाती है। ऐसे ही भाव आज भी सही दिशा दिखाने में अहम भूमिका निभा सकते हैं।

कबीर के विचार एकता के सूत्र में बांधने का हर संभव प्रयास करते रहे। कबीर ने मानव के कर्मों को जीवन की सार्थकता स्वीकारा और सबको जातीय आधार पर, धर्म के आधार पर एक ही माना। कबीर के अनुसार समाज में रहने वाले छोटे या बड़े नहीं हैं बल्कि सभी मानव है और इनकी इंसानियत ही पहचान है। कबीर ने समाज को सुधारने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में बच्चन सिंह लिखते हैं– "यह कहना कि कबीर समाज-सुधारक थे, गलत है। यह कहना कि धर्म सुधारक थे और भी गलत है। यदि सुधारक थे तो रेडिकल सुधारक। वे धर्म के माध्यम से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे। वे कोई पंथ खड़ा करने के पक्षपाती नहीं थे। वे ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें न कोई हिन्दू हो न मुसलमान, न पूजा हो न नमाज, न पण्डित हो न मुल्ला, सिर्फ इंसान हो।"[6]

कबीर एक ऐसे समाज सुधारक हैं जिन्होंने समाज में विश्वबंधुत्व भाव उत्पन्न करने की कोशिश की है। वे समाज को स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनाने के लिए सदैव तत्पर हैं। आज जहां लोग दंभ और अहंकार में डूबे हुए हैं। अहंकार के वश में होकर विनम्रता का भाव भूल रही युवा पीढ़ी को आज समझने की जरूरत है कि यदि मानवीयता का परिचायक बनना है तो विनम्र

होना होगा। बड़ों के प्रति सम्मान, आत्मीयता एवं आदर रखना बहुत जरूरी है। सच्ची विनम्रता भक्त को ईश्वरीय गुणों के अनुरूप ढालती है। विनम्रता से प्रेम एवं सद्भावना बनी रहेगी। कबीर कहते हैं–

"ऐसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोई।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होई।।"[7]

वर्तमान समय में जरूरत है कि कबीर की शिक्षाओं को ग्रहण कर जीवन को सरल बनाने में अपना योगदान दें। यही विचार आज के मनुष्य को नैतिक रूप से सशक्त बनाने में सहायक है। विनम्र स्वभाव से सबके हृदय में जगह बनाकर समस्त मानव जाति के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

आज हर व्यक्ति आगे निकलने की चाह में नैतिकता को भूल गया है। एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार को समझने में भी नाकाम रहे हैं। कबीर की भक्ति में आत्म शोध एवं आत्मसम्मान देखा जा सकता है। आज हर व्यक्ति आत्मनिर्भर तो होना चाहता है परन्तु परिश्रम करने से कतराता है। कबीर मानते हैं कि स्वाभिमानी व्यक्ति विवेकशील होता है। वह न ही तो दूसरों को नीचा दिखाता है और न ही वह किसी से आगे निकलने के लिए अनुचित रास्ता अपनाता है। वह अपनी गरिमा को ध्यान में रखकर निर्णय लेता है। वह खुद की बुराइयों को देखता है, समझता है और आत्मचिंतन करके आत्मशोध करता है। इस संदर्भ में कबीर के विचार हैं–

"बुरा जो देखन मैं गया, बुरा न मिल्या कोई।
जो मन खोजा आपणा, मुझसे बुरा न कोई।।"[8]

यही विचार नैतिक शुद्धता एवं आत्मविश्लेषण का संदेश देते हैं और प्रेरित करते हैं कि आधुनिक समय में सबको अपने चरित्र निर्माण हेतु आत्म जवाबदेही तय करनी होगी तभी जीवन की सार्थकता होगी। दूसरों की खामियों को छोड़कर उनकी खूबियों को खोजना है और स्वयं सुधार कर अपनी कमियों को दूर करना है।

हिंदी साहित्य जगत में कबीरदास एक ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने एक युगीन कवि के रूप में ही पहचान नहीं बनाई अपितु एक सच्चे ईश्वर भक्त के रूप में भी अपना स्थान सुनिश्चित किया है। उन्होंने सत्य और अहिंसा का संदेश दिया एवं जनकल्याण के भाव को साहित्य का आधार बनाया। हर युग का साहित्य उस युग का दर्पण होता है इस बात को तो कबीर ने सिद्ध किया है, साथ ही यह भी सिद्ध किया कि एक साहित्यकार चाहे तो सूझबूझ एवं दूरदृष्टि से आने वाले युग को भी राह दिखाकर प्रासंगिक हो सकता है। उन्होंने युगीन विसंगतियों एवं चेतनाओं को अपने साहित्य में यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। इसी अनुभव सत्य पर आधारित काव्य ही उनकी लोकप्रियता और प्रासंगिकता का कारण बना। उन्हें जो अच्छा लगा उसका खुलकर समर्थन किया और जो अनुचित या बुरा लगा उसका निर्भीकता से विरोध किया। दैनिक ट्रिब्यून में डॉ अशोक कुमार ने कबीर के बारे में कहा था– "मुख्य वक्ता के रूप में डॉ अशोक कुमार ने कबीर साहित्य को आज की सबसे बड़ी आवश्यकता बताया। उन्होंने कहा कबीर के अंदर जनमानस के दुःख– दर्द, वेदना– संवेदना को समझने की सबसे अधिक समझ थी। यही वजह है कि कबीर आज ही नहीं आने वाले हजारों सालों तक प्रासंगिक हैं।"[9]

यही जरूरत है आज की युवा पीढ़ी को समझने की कि देश को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने के लिए खुद को तराशने की जरूरत है। जिन मूल्यों के कारण हमारी पहचान है उनको सुरक्षित करने के लिए हम आगे बढ़ें।

कबीर की दृष्टि समाज को सुदृढ़ करती दूरदृष्टि है जो मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित करने में सहायक सिद्ध होगी। कबीर सामाजिक सरोकारों के कारण लोकप्रिय एवं बहुचर्चित है। भक्ति में मानव मूल्यों की गरिमा को बनाए रखते हुए जन-जन को इन्होंने संदेश दिया। वे सार्वजनिक हित की भावना के कारण लोगों में अपनी पहचान आज तक बनाए हुए हैं। उन्होंने अपने भक्तिपरक विचारों से सबका पथ प्रदर्शन किया और एक आदर्श समाज की स्थापना करने का हरसंभव कार्य किया। कबीर भक्ति मानव मूल्यों की पुनर्स्थापना करने का सशक्त आधार है। प्रेम , आत्म शोध, समानता, परोपकार से कबीर की भक्ति मानव धर्म को केंद्र में लाने की क्षमता रखती है। जिस तीव्र गति से मानव मूल्यों में गिरावट आ रही है, उन्हें बचाने का माध्यम कबीर के भक्तिपरक विचार ही हो सकते हैं। वैश्वीकरण के दौर में मानवीय संकटों का समाधान कबीर ने अपनी भक्ति के

माध्यम से प्रस्तुत किया है और इनके ये विचार वैश्विक समाज को नैतिकता का संदेश देते हैं। इनकी भक्ति मूलतः मानव केन्द्रित रही है। जहाँ भक्ति का आधार मानव धर्म हो, वहाँ करुणा, प्रेम, परोपकार जैसे मूल्य स्वयं सजीव हो जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आज के विघटित होते समाज में कबीर- भक्ति मानवता को बचाने वाली संजीवनी है जो लोगों को इस तकनीकी युग में भी संवेदनशील होने के लिए प्रेरित करती है। यह भक्ति मानव को मानव होने का एहसास कराती है एवं व्यक्ति को आत्म चिंतन एवं आत्म शोध से जोड़ते हुए सामाजिक समरसता की स्थापना करती है। इस कृत्रिम एवं भौतिकतावादी युग में भौतिक सुख की दौड़ में दौड़ रहे लोगों को कबीर– भक्ति आत्मसंतुष्टि, आत्मसंयम एवं सादा जीवन जीने की प्रेरणा देती है और समझाती है कि आज मानव को समझने की आवश्यकता है कि उन्हें साधनों के गुलाम बनकर नहीं बल्कि अपनी बुद्धि और प्रतिभा के बल पर अपना अस्तित्व बनाए रखना है।

ग्रन्थ सूची

1. रविन्द्र कुमार सिंह, संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, वाणी प्रकाशन, आवृत्ति संस्करण, 2015 पृष्ठ 38
2. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 72
3. वही, पृष्ठ 149
4. वही, पृष्ठ 49
5. वहीं, पृष्ठ 110
6. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली, 2009), पृष्ठ-88
7. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 109
8. वही, पृष्ठ 116
9. दैनिक ट्रिब्यून, 19 जून, 2016

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Personality Traits and Managerial Effectiveness among Bank Managers in Jharkhand: A Big Five Perspective

Shivesh
Ph.D. Research Scholar
Department of Commerce and Management
Sona Devi University

ABSTRACT

Bank managers occupy a distinctive managerial position because they must combine commercial judgement with regulatory discipline, customer service, staff coordination, risk awareness, and increasingly rapid technological adaptation. This paper examines the relationship between personality traits and managerial effectiveness among bank managers in Jharkhand through the conceptual lens of the Big Five personality framework and the broader idea of emotional intelligence. The paper is developed from a study framework involving structured questionnaires and interviews with 200 bank managers and reported quantitative and qualitative patterns concerning conscientiousness, emotional stability, openness to experience, agreeableness, and extraversion. Particular attention is given to the ways in which these traits may shape decision-making, stress management, employee motivation, customer relations, and the capacity to respond to changing banking practices. The reported evidence indicates that conscientiousness and emotional stability are especially important for managerial effectiveness, while openness is more visible in contexts that reward innovation and adaptive behaviour. Agreeableness and extraversion appear particularly relevant to interpersonal coordination and customer-facing leadership. The paper also considers differences between public- and private-sector banking environments and the possible influence of age, gender, educational background, and experience on managerial behaviour. Rather than treating personality as a fixed explanation of performance, the analysis argues that managerial outcomes arise from an interaction between dispositional tendencies, institutional demands, role expectations, and learned professional capabilities. The discussion concludes that personality-informed recruitment, leadership development, stress-management training, and context-sensitive managerial assessment may strengthen banking performance in Jharkhand. Because the available study material reports directional findings but does not provide item-level data, factor loadings, regression coefficients, or significance tables, the paper interprets the empirical results only at the level supported by the source study and does not manufacture numerical estimates.

KEYWORDS : Big Five personality traits; bank managers; managerial effectiveness; Jharkhand; conscientiousness; emotional stability; leadership; banking management.

1. INTRODUCTION

The quality of banking management has consequences that extend beyond the internal administration of a branch. A bank manager coordinates employees, responds to customers, interprets institutional rules, exercises judgement under uncertainty, and often acts as the visible representative of the bank within a locality. The study on which this paper is based therefore places personality and attitude at the centre of an important organizational question: why do managers working under broadly comparable rules often differ in the way they organize work, handle pressure, communicate with employees, respond to customers, and adapt to change?

Traditional accounts of managerial performance frequently emphasize knowledge, experience, formal authority, or technical competence. These remain indispensable, but they do not fully explain variation in managerial conduct. Two managers with similar qualifications may react very differently to the same customer complaint, regulatory pressure, staff shortage, technological disruption, or business target. Such differences invite attention to relatively enduring patterns of thought, emotion, and behaviour. Personality research provides a structured way to analyse these patterns. The Big Five model, associated with dimensions of conscientiousness, emotional stability, openness to experience, agreeableness, and extraversion, has become one of the most influential frameworks for examining how individual differences relate to workplace outcomes (Goldberg, 1993; Roberts et al., 2007).

The managerial relevance of these traits is intuitively strong in banking. Conscientiousness may encourage planning, procedural care, persistence, and attention to detail. Emotional stability may support balanced judgement when managers face conflict, workload pressure, or reputational risk. Openness may enable learning and experimentation when digital systems or new service models are introduced. Agreeableness may help in negotiation, staff relations, and customer handling, while extraversion may support communication, visibility, persuasion, and professional networking. Yet none of these traits operates in isolation. A highly conscientious manager may become rigid if procedural discipline is not accompanied by openness. A highly agreeable manager may create trust but may also struggle with necessary confrontation. An extraverted manager may inspire employees, but effectiveness still depends on judgement and institutional discipline. The important analytical task is therefore not to identify a single ideal personality but to understand combinations of traits and the contexts in which they become productive.

The source study focuses on bank managers in Jharkhand and is particularly valuable because regional organizational research is less common than broad national or metropolitan studies. The banking environment of Jharkhand requires managers to operate across differences in economic development, customer familiarity with formal finance, technological access, and local expectations. Managers may need to reconcile standardized banking systems with highly localized service realities. This creates an especially useful setting for studying the relationship between personality and effectiveness.

This paper develops one of two distinct analyses derived from the same broad study framework. Its exclusive emphasis is on personality as a predictor and facilitator of managerial effectiveness. Public-private sector differences and demographic patterns are considered, but only insofar as they help explain how personality is expressed in managerial work. The central questions are: Which personality traits appear most strongly associated with effective bank management? Through what

behavioural mechanisms might these traits influence decisions, staff relations, and customer service? How might organizational setting strengthen or weaken the expression of particular traits? And what practical implications follow for recruitment, training, and leadership development?

The argument advanced here is that conscientiousness and emotional stability form a particularly important foundation for banking leadership because they support reliability and composure, while openness, agreeableness, and extraversion contribute in more situational ways to innovation, interpersonal coordination, and outward-facing leadership. Managerial effectiveness, however, should not be reduced to personality scores. Personality is better understood as a set of behavioural tendencies that interact with training, institutional norms, incentives, professional experience, and the demands of a particular branch or market. This interactional perspective offers a more credible basis for managerial development than the simplistic idea that successful managers belong to one personality type.

2. CONCEPTUAL BACKGROUND: PERSONALITY IN MANAGERIAL WORK

Personality refers to relatively stable patterns in the ways individuals think, feel, and behave across situations. In organizational settings, personality does not predetermine action, but it influences the probabilities of particular responses. A manager who is dispositionally organized and persistent may be more likely to monitor deadlines, follow through on tasks, and maintain systematic records. A manager who remains emotionally balanced under pressure may be less likely to react impulsively to conflict. A manager who is curious and receptive to new ideas may adopt a new digital process more readily than one who prefers established routines. These tendencies can accumulate over time and become visible in team climate, customer experience, and performance outcomes.

The Big Five model offers a parsimonious vocabulary for describing such variation (Goldberg, 1993). Conscientiousness captures dependability, self-discipline, goal orientation, orderliness, and persistence. Emotional stability, often discussed as the inverse of neuroticism, concerns resilience, calmness, and the ability to regulate negative emotional reactions. Openness to experience reflects curiosity, flexibility, imagination, learning orientation, and receptiveness to unfamiliar ideas. Agreeableness concerns cooperativeness, empathy, consideration, and interpersonal trust. Extraversion reflects sociability, assertiveness, positive engagement, and comfort with interpersonal interaction. The value of the model lies not in labeling individuals but in providing dimensions along which behavioural differences can be studied.

Research reviewed in the source material suggests that personality has meaningful relationships with leadership and broader life outcomes (Judge et al., 2002; Roberts et al., 2007). In banking, the likely pathways are especially varied. Managers are evaluated not only by task completion but also by the quality of decisions, the consistency of compliance, the morale of employees, the handling of grievances, responsiveness to business opportunities, and the quality of customer relationships. Each of these domains can be influenced by characteristic behavioural tendencies.

Emotional intelligence adds another useful layer to this framework. Goleman (1995) emphasizes self-awareness, self-regulation, empathy, motivation, and social skill. Although emotional intelligence is conceptually distinct from the Big Five, it intersects with several traits. Emotional stability can support self-regulation; agreeableness may facilitate empathy; extraversion may aid social interaction; and openness may encourage reflective learning. For bank managers, emotional intelligence becomes

especially relevant when technical correctness alone is insufficient. A customer may be distressed, an employee may be demotivated, a target may be missed, or a compliance concern may require firm but sensitive communication. In such situations, effective leadership depends on how technical judgement is communicated and implemented.

A critical implication follows. Personality should not be treated as an immutable destiny. Traits may be relatively stable, but managerial behaviour remains developable. Training can provide routines that compensate for weaknesses, reinforce strengths, and improve situational judgement. A manager lower in natural extraversion can learn structured communication practices. A manager lower in openness can be supported through guided exposure to new technologies. A highly agreeable manager can learn assertive conflict management. A highly conscientious manager can learn to distinguish productive discipline from inflexibility. Accordingly, personality assessment is most useful when it guides development rather than when it becomes a mechanism for exclusion.

3. REVIEW OF RELEVANT LITERATURE

The literature cited in the source study provides the theoretical basis for expecting meaningful relationships between personality and leadership. Goldberg (1993) contributed to the development and consolidation of the Big Five structure, which enabled personality research to move from numerous overlapping trait labels toward a more coherent taxonomy. This framework has subsequently been used across occupational settings because it permits systematic comparison of broad behavioural tendencies.

Judge et al. (2002) examined personality and leadership and demonstrated that personality dimensions are relevant to leadership emergence and effectiveness. The importance of this contribution for banking lies in its rejection of the view that leadership is purely situational or technical. Managers do not simply execute policies; they interpret situations, prioritize tasks, influence others, and communicate expectations. The manner in which these activities are performed is partly shaped by personality.

Roberts et al. (2007) broadened the discussion by comparing the predictive validity of personality traits with other important individual differences and socioeconomic factors. Their work supports the proposition that personality contributes meaningfully to consequential outcomes. In a banking context, this implies that personality can reasonably be considered alongside education, experience, and technical competence when researchers seek to understand performance differences. It does not imply that personality replaces these factors, only that it adds explanatory value.

Goleman's (1995) work on emotional intelligence is relevant because managerial effectiveness frequently depends on emotion-laden social encounters. Banking managers confront customer disappointment, employee anxiety, sales pressure, audit concerns, and sometimes conflict between commercial objectives and risk controls. Emotional intelligence offers a language for understanding how managers recognize emotions, control their own reactions, and respond productively to others.

The source study also cites Basu and Ghosh (2015) in relation to leadership style and employee engagement in Indian banking, Singh and Kumar (2020) concerning organizational behaviour in public and private banks, Kumar and Sharma (2019) on leadership and banking performance, and Srivastava and Gupta (2018) on digital banking and managerial adaptability in Jharkhand. Taken together, these works position managerial behaviour at the intersection of personality, institutional

culture, leadership practice, and changing banking technology.

A notable gap identified by the source study is the limited region-specific literature on Jharkhand. This gap is theoretically important as well as geographically important. If institutional and socioeconomic context influence how personality is expressed, then findings from metropolitan banking environments cannot automatically be generalized to all settings. Jharkhand offers a context in which managers may face uneven digital readiness, differing customer expectations, and diverse market conditions. The study therefore contributes by examining whether established personality concepts remain useful under these localized conditions.

The literature also suggests a need to avoid simplistic trait-performance assumptions. Conscientiousness is often associated with reliability, yet extreme orderliness may reduce flexibility. Openness may encourage innovation, yet experimentation in a highly regulated environment requires disciplined risk assessment. Agreeableness may improve relationships, yet managers must sometimes deliver unwelcome decisions. Extraversion may help leadership visibility, yet listening and reflection are equally important. Emotional stability may support calm judgement, but confidence without sensitivity may be perceived as detachment. The relevant question is thus not whether a trait is universally good, but how it contributes to a balanced managerial repertoire.

4. RESEARCH DESIGN AND EVIDENCE BASE

The source study describes a mixed-method design involving structured questionnaires and interviews with 200 bank managers in Jharkhand. Quantitative analysis was planned or reported through statistical software including R and SPSS, with factor analysis used to identify dominant personality dimensions and regression analysis used to examine relationships between personality traits and managerial effectiveness. Qualitative interviews and case-based observations were intended to provide contextual depth regarding leadership, customer relations, and institutional differences.

For purposes of this paper, the empirical evidence is treated exactly at the level at which it is available in the study material. The source reports that the dominant observed dimensions correspond to the Big Five, that conscientiousness and emotional stability are the strongest predictors of managerial effectiveness, that private-sector managers show greater openness and risk-taking, and that public-sector managers show greater conscientiousness and emotional stability. It also reports demographic associations involving age and experience, gender, and education.

The source material does not provide the wording of questionnaire items, scale reliabilities, sampling frame, branch-wise distribution, factor extraction details, factor loadings, regression coefficients, confidence intervals, significance levels, interview protocols, or coding procedures. Consequently, this paper does not invent those details. It offers an interpretive analysis of the reported findings and explains their theoretical and practical meaning. Any future journal submission based on the underlying dataset should add full methodological documentation and complete statistical tables before presenting causal or inferential claims.

This distinction is important for research integrity. An academically persuasive paper does not require the appearance of numerical precision when such precision is unavailable. It is preferable to state clearly what the evidence demonstrates and what remains undocumented. The present analysis therefore uses terms such as "reported pattern," "appears," and "is consistent with" where appropriate. This approach enables the findings to be interpreted while preserving a transparent boundary between

the available evidence and additional inference.

5. PERSONALITY PROFILE OF BANK MANAGERS

The study identifies all five Big Five dimensions as relevant to managerial behaviour. This is itself a meaningful finding because banking management is a multi-demand role. A narrow occupational profile based on only one or two traits would be inadequate. Effective managers must maintain accuracy, remain composed, communicate, adapt, and cooperate. The relative importance of these behaviours changes from one situation to another.

Conscientiousness emerges as a central trait. Banking operations depend on timely completion, documentation, procedural compliance, monitoring, and follow-through. Managers who organize work systematically are likely to reduce avoidable errors and create clearer expectations for employees. Conscientiousness can also support credibility. Staff members may be more willing to trust a manager whose instructions are consistent and whose own work habits demonstrate discipline. Customers may perceive reliability when commitments are tracked and problems are followed to closure. In this sense, conscientiousness contributes not only to individual productivity but to the predictability of the branch as an organization.

Emotional stability is equally important because bank managers regularly encounter situations that can trigger stress. Targets, audits, customer complaints, technological failure, staffing constraints, and operational risk create a work environment in which emotional reactivity can quickly affect others. A stable manager can separate the urgency of a problem from the emotional tone of the moment. This can improve decision quality because the manager is less likely to respond impulsively or communicate anxiety to the team. Emotional stability also matters for conflict resolution: an employee dispute or dissatisfied customer is more likely to be handled constructively when the manager can remain calm while acknowledging the seriousness of the concern.

Openness to experience appears especially relevant to adaptive banking. Digitalization has changed customer interaction, documentation, service delivery, and internal workflows. Managers who are curious and willing to learn may engage more readily with new platforms and may encourage employees to do the same. Openness also supports problem reframing. Instead of treating an unfamiliar situation as a disruption to established routine, an open manager may search for a new solution. The source study reports greater openness among private-sector managers, which may reflect a stronger organizational emphasis on innovation and competitive responsiveness.

Agreeableness contributes through cooperation and empathy. A branch is an interdependent system in which managers rely on officers, clerical staff, support employees, customers, regional offices, and external stakeholders. A manager who listens respectfully and understands others' perspectives can improve coordination. In customer service, agreeableness may help de-escalate frustration and preserve relationships even when a requested outcome cannot be granted. The source material reports stronger agreeableness and emotional intelligence among female managers. Such a pattern, if verified with full statistical evidence, would be relevant to leadership development but should not be converted into gender stereotypes; individual variation within each group is likely to be substantial.

Extraversion contributes most visibly to outward leadership. Bank managers frequently communicate targets, motivate staff, negotiate with clients, participate in local networks, and represent

the institution. Social confidence can therefore be useful. Yet extraversion should be understood functionally rather than theatrically. Effective managerial communication includes listening, clarity, and appropriate assertiveness, not merely frequent speaking. Introverted managers may perform equally well when they develop structured communication practices and strong one-to-one relationships.

6. CONSCIENTIOUSNESS AS A FOUNDATION OF MANAGERIAL RELIABILITY

Among the reported findings, the importance of conscientiousness deserves detailed consideration. Banking is a trust-based activity, and trust is partly produced through dependable processes. Every managerial decision occurs within a system of records, controls, approvals, deadlines, and accountability. Conscientiousness is therefore aligned with core features of the occupation.

At the individual level, conscientious managers are likely to set priorities, monitor progress, and persist with difficult tasks. At the team level, this creates structure. Employees understand what is expected, incomplete work is followed up, and responsibilities are less likely to disappear into ambiguity. Such organization is particularly valuable in branches facing high workload or limited staffing because the cost of poor coordination rises as operational complexity increases.

Conscientiousness also supports risk control. A large proportion of banking risk is managed through disciplined routines: verifying information, following procedures, reviewing exceptions, documenting decisions, and escalating concerns. A manager who is careless about process can create vulnerabilities even when technically knowledgeable. Conversely, a conscientious manager may detect inconsistencies before they become larger problems.

However, conscientiousness is not identical to rigid rule-following. The strongest managers are likely to combine procedural discipline with contextual judgement. Banking rules often require interpretation, prioritization, or customer explanation. A manager who treats every deviation from routine as unacceptable may discourage problem-solving and frustrate legitimate customers. The developmental objective should therefore be disciplined adaptability: managers need reliable habits while retaining the capacity to recognize when a novel situation requires consultation, escalation, or an alternative service pathway.

The reported higher conscientiousness among public-sector managers can plausibly be interpreted through institutional socialization. Public-sector banking has historically emphasized procedural consistency, public accountability, and adherence to formal systems. Managers who succeed in such environments may learn to value stability and documentation, and people already comfortable with such norms may be more likely to remain and advance. The observed pattern is thus compatible with an interaction between personal disposition and organizational culture.

7. EMOTIONAL STABILITY, STRESS, AND DECISION QUALITY

Emotional stability is the second trait reported as a particularly strong predictor of managerial effectiveness. Its importance can be explained through the relationship between emotion and judgement. Stress narrows attention, increases sensitivity to threat, and can produce hurried or defensive decisions. In a managerial role, these effects are rarely confined to the individual. Employees observe the manager's emotional responses and may interpret them as signals about the severity of a situation. A manager who becomes visibly agitated can amplify collective anxiety; a manager who

remains composed can create cognitive space for problem-solving.

This does not mean that effective managers are emotionally detached. Calmness without empathy can damage trust. The more useful concept is regulated responsiveness: recognizing the emotional content of a situation while maintaining sufficient control to act constructively. This connects the Big Five concept of emotional stability with Goleman's (1995) emphasis on self-regulation and social awareness.

Customer grievances provide a clear example. A dissatisfied customer may arrive with anger produced by delay, misunderstanding, financial stress, or a previous service failure. If the manager reacts defensively, conflict can escalate. A manager with emotional stability can listen, identify the substantive issue, explain constraints, and decide whether remedial action is possible. Even when the final answer is negative, the interaction can preserve dignity and institutional trust.

Employee management involves similar dynamics. Managers must sometimes correct errors, address underperformance, redistribute work, or communicate unwelcome decisions. Emotional instability can turn these necessary conversations into personal conflict. Stable managers are better positioned to focus on behaviour, expectations, and solutions. Over time, this can influence the psychological climate of the branch. Employees may be more willing to report problems early when they expect a proportionate response rather than unpredictable anger.

The source study reports that older and more experienced managers tend to show greater emotional stability and conscientiousness. One plausible interpretation is that repeated exposure to difficult situations builds perspective and self-regulatory routines. Experience can teach managers which problems require immediate action and which only appear urgent. Yet age should not be treated as a proxy for competence. Younger managers may bring energy, technological familiarity, and adaptability. The organizational challenge is to combine experiential calm with contemporary learning.

8. OPENNESS, INNOVATION, AND DIGITAL ADAPTATION

Banking has undergone rapid technological change, making openness to experience increasingly important. Managers must learn new platforms, adapt to revised workflows, encourage customers to use digital channels, and help employees overcome resistance. In this environment, openness is not an abstract preference for novelty; it is a practical capacity for learning.

The source study links higher education with greater openness and adaptability and reports greater openness among private-sector managers. These observations are consistent with a view of openness as both dispositional and developmental. Formal education may expose individuals to a wider range of concepts and problem-solving methods, while competitive organizational environments may reward experimentation and fast learning. Repeated success with new systems can in turn reinforce a manager's confidence in unfamiliar situations.

Openness can improve managerial effectiveness in several ways. First, it supports cognitive flexibility. A manager is less likely to assume that yesterday's method is automatically the best method today. Second, openness promotes learning from employees. Younger or technically specialized staff may possess knowledge that the manager does not have. A manager comfortable with learning from subordinates can accelerate branch adaptation. Third, openness supports customer segmentation.

Different customers require different explanations, channels, and service approaches. Managers who recognize this variation can avoid one-size-fits-all solutions.

Yet openness must be balanced by risk awareness. Banking is not an environment in which novelty is valuable for its own sake. New practices must comply with policy, security, and regulatory requirements. The ideal form of openness in banking is therefore evidence-based adaptability: willingness to consider new methods combined with disciplined evaluation of their consequences.

9. AGREEABLENESS, EXTRAVERSION, AND RELATIONAL LEADERSHIP

Managerial effectiveness has a relational dimension that is sometimes underestimated in highly procedural industries. Banks depend on repeat customer relationships, trust, internal coordination, and communication across hierarchical levels. Agreeableness and extraversion can support these relational demands through different mechanisms.

Agreeableness encourages respectful interaction and a cooperative orientation. Within a branch, this may improve willingness to listen to staff concerns and consider alternative viewpoints. It can also reduce unnecessary interpersonal friction. For customers, an agreeable manager may be perceived as more approachable, especially when explaining complex or disappointing outcomes. Such behaviour can be particularly valuable in communities where trust in formal institutions depends heavily on interpersonal experience.

The potential limitation of agreeableness is excessive accommodation. Managers sometimes need to enforce policy, reject inappropriate requests, or address poor performance. Leadership development should therefore help agreeable managers combine empathy with boundaries. Respectful firmness is often more effective than either hostility or avoidance.

Extraversion contributes to leadership through energy, social initiative, and assertiveness. Managers who are comfortable initiating conversations may be more active in business development and local networking. They may also communicate goals more frequently and create a visible leadership presence. These advantages may be especially relevant in private-sector settings where competitive customer acquisition is prominent.

Nevertheless, extraversion should not be confused with superior leadership in every context. Banking also rewards careful analysis, private reflection, and patient listening. An effective branch can be led by a quieter manager who communicates clearly and builds trust through consistency. Personality-informed management should therefore avoid selecting for superficial charisma. The relevant question is whether a manager can perform required relational behaviours, not whether those behaviours arise effortlessly from temperament.

10. PUBLIC-PRIVATE SECTOR DIFFERENCES AS PERSON-ENVIRONMENT INTERACTION

The source study reports that private-sector managers display higher openness and risk-taking tendencies, while public-sector managers show higher conscientiousness and emotional stability. These differences are analytically useful because they illustrate the interaction between personality and institutional context.

Private banks often compete intensely on service speed, market share, cross-selling, technological

adoption, and differentiated customer experience. Such environments may reward managers who are comfortable with rapid change and calculated experimentation. Openness may therefore become more visible because organizational systems repeatedly call upon it. Managers who dislike ambiguity may find such settings more stressful, while managers who enjoy novelty may experience stronger person-environment fit.

Public-sector banks operate under a different mix of expectations, including broad service obligations, formal procedures, accountability structures, and substantial regulatory visibility. Conscientiousness may be especially useful because managers must maintain process discipline while serving diverse customer populations. Emotional stability may also be reinforced by long exposure to complex administrative and public-facing demands.

These differences should not be exaggerated into a binary opposition. Both sectors require compliance and innovation, stability and adaptability, customer service and risk control. Digital transformation has increased the need for openness in public-sector institutions, while regulatory scrutiny requires private-sector managers to be highly conscientious. The more defensible interpretation is that the relative weighting of trait demands differs across environments.

From a human-resource perspective, this suggests that personality assessment should be contextual. A branch undergoing technological transformation may benefit from managers with strong openness and learning orientation. A branch facing operational instability may require exceptional conscientiousness and emotional composure. A role involving high-net-worth relationship management may place greater demands on social confidence. The goal is not to identify a single best personality profile for all managers but to improve fit between managerial tendencies and role demands.

11. DEMOGRAPHIC FACTORS AND THE DEVELOPMENT OF MANAGERIAL BEHAVIOUR

The source study reports associations between personality-related behaviour and age, experience, gender, and education. Such findings require careful interpretation because demographic variables do not determine personality. They may instead capture differences in socialization, career experience, opportunity, role exposure, or cohort effects.

Older and more experienced managers reportedly exhibit greater emotional stability and conscientiousness. Experience can plausibly contribute to behavioural regulation because managers accumulate scripts for handling recurring problems. They become familiar with audit cycles, customer conflict, staff issues, and performance pressure. Repetition may reduce uncertainty, making calm responses easier. Long service may also strengthen procedural habits. At the same time, excessive reliance on accumulated routines can reduce openness if learning is not actively maintained.

The source reports that female managers score higher on agreeableness and emotional intelligence. These findings should be treated as group-level tendencies within the study, not as universal gender characteristics. Organizational expectations and social experiences may shape communication and relationship-management styles. The practical implication is not to assign leadership roles by gender, but to recognize relational competence as a serious managerial capability and to ensure that promotion systems value it.

Higher educational attainment is associated in the source with openness and adaptability. Education

can encourage analytical thinking, exposure to alternative ideas, and confidence in learning. However, formal qualifications alone do not guarantee adaptive behaviour. Institutions should examine how managers actually respond to new technologies, unfamiliar customer needs, and changing regulations.

Demographic analysis is most useful when it informs development rather than stereotyping. Younger managers may benefit from mentoring in stress management and institutional judgement; experienced managers may benefit from structured digital-learning opportunities. Managers who are technically strong but less confident interpersonally may benefit from communication coaching. The underlying principle is individualized development informed by evidence.

12. MANAGERIAL EFFECTIVENESS: MECHANISMS LINKING TRAITS TO OUTCOMES

The source study reports that conscientiousness and emotional stability are the most significant predictors of managerial effectiveness and that managers with these traits show better decision-making, stronger employee motivation and team cohesion, and improved customer satisfaction. Although numerical effect sizes are not provided, the pattern can be understood through several mechanisms.

The first mechanism is self-management. Conscientious and emotionally stable managers are more likely to regulate their own workload and reactions. Leadership begins with this capacity because disorganized or emotionally volatile managers impose hidden costs on the team. Employees spend time clarifying priorities, anticipating mood, correcting oversights, or managing crises that could have been prevented.

The second mechanism is decision discipline. Conscientiousness encourages information gathering and follow-through, while emotional stability reduces the likelihood that temporary pressure will dominate judgement. Together, these traits can support decisions that are both careful and timely. In banking, where poor decisions may affect credit quality, customer trust, or compliance, this combination is particularly valuable.

The third mechanism is climate formation. Managers influence the norms of a branch through repeated behaviour. A manager who remains calm under pressure teaches employees that problems should be surfaced and solved rather than hidden. A manager who reliably follows up teaches that commitments matter. An open manager signals that questions and new ideas are acceptable. An agreeable manager demonstrates respectful interaction. An extraverted manager may normalize active communication. Over time, personality is translated into organizational climate through these repeated signals.

The fourth mechanism is customer trust. Customers often evaluate a bank through interactions with individual employees, especially when problems occur. Reliability, calmness, empathy, and clear communication shape whether a customer perceives the institution as trustworthy. Personality therefore has reputational consequences beyond the manager's immediate performance metrics.

The fifth mechanism is adaptability. Digital and regulatory change requires learning. Openness promotes curiosity, but conscientiousness converts learning into disciplined implementation. Emotional stability helps managers persist when new systems initially create frustration. The most effective adaptive profile may therefore be a combination rather than a single trait.

13. PRACTICAL IMPLICATIONS FOR BANKING INSTITUTIONS

The study has several implications for human-resource management. First, recruitment and promotion systems may benefit from structured assessment of behavioural competencies related to the Big Five, but such assessment should supplement rather than replace evidence of technical competence, integrity, and performance. Personality measures should be professionally validated, administered ethically, and interpreted as probabilistic indicators rather than labels.

Second, leadership training can be differentiated. Managers with strong conscientiousness but lower openness may benefit from innovation and change-management training. Managers with strong openness but weaker organization may benefit from execution discipline and risk-control routines. Managers who struggle with emotional stability may benefit from stress-management, conflict-handling, and decision-under-pressure training. Managers lower in agreeableness or social sensitivity may benefit from customer empathy and feedback skills. Managers who are less extraverted can learn presentation and stakeholder-engagement techniques without being asked to change their basic temperament.

Third, organizations can improve person-role fit. Not every branch requires the same emphasis. A high-growth urban branch, a rural financial-inclusion branch, a problem branch requiring operational stabilization, and a digitally transitioning branch may require different managerial strengths. Rotation policies could be designed partly around developmental fit, enabling managers to build a broader repertoire over time.

Fourth, mentoring can connect demographic diversity with learning. Experienced managers can transfer tacit knowledge about difficult situations, while younger managers may contribute technological familiarity and new service ideas. Cross-generational mentoring can therefore prevent age differences from becoming organizational divisions.

Fifth, performance appraisal should include relational and adaptive behaviours. If managers are evaluated only on numerical targets, important dimensions such as team climate, complaint handling, learning, and ethical decision processes may be neglected. A balanced appraisal system can reinforce the behaviours that the personality analysis identifies as valuable.

14. LIMITATIONS AND DIRECTIONS FOR FUTURE RESEARCH

The most important limitation of the present paper is the level of detail available from the underlying study. The source describes a sample of 200 bank managers and reports the use of questionnaires, interviews, factor analysis, and regression, but it does not provide the full instrument, sampling procedure, reliability coefficients, factor loadings, regression tables, or inferential statistics. The present paper therefore offers a theoretically grounded interpretation of reported patterns rather than an independent reanalysis.

Future research should document the sampling frame across districts, bank types, branch locations, gender categories, age groups, and experience levels. Validated personality scales should be identified explicitly, and reliability and construct validity should be reported. Managerial effectiveness should also be operationalized carefully. Self-report measures can be supplemented by supervisor ratings, employee feedback, customer-service indicators, branch performance measures, and compliance outcomes.

Longitudinal designs would be particularly valuable. Cross-sectional data can show association but cannot establish whether personality causes performance or whether occupational experience shapes behavioural expression. Tracking managers over time could reveal whether digital transformation, promotion, transfer, or crisis exposure changes the relationship between personality and effectiveness.

Multilevel analysis could also separate individual personality from branch and institutional effects. Managers are nested within banks and branches, and organizational culture may influence both behaviour and outcomes. A manager who appears highly innovative in one institution might behave differently under another incentive system. Understanding these interactions would improve the practical usefulness of personality research.

Finally, qualitative research should be expanded. Interviews can reveal how managers interpret difficult decisions, balance customer needs with rules, learn from failure, and manage emotional pressure. Such evidence would help explain not only whether traits matter but how they matter in everyday banking practice.

15. CONCLUSION

The study of personality among bank managers in Jharkhand provides a useful window into the human foundations of banking performance. The source material indicates that all five Big Five dimensions contribute to managerial behaviour, with conscientiousness and emotional stability emerging as especially important for effectiveness. Openness supports innovation and adaptation, agreeableness supports cooperative and customer-sensitive leadership, and extraversion contributes to communication and networking. Sectoral differences suggest that organizational environments shape the expression and value of these traits, while demographic patterns point to the role of experience, education, and socialization.

The broader conclusion is that effective banking leadership cannot be reduced to technical competence or a single personality type. Managers succeed by combining dependable execution, emotional regulation, adaptive learning, interpersonal judgement, and context-sensitive communication. Personality influences these capabilities, but organizations also shape them through selection, training, incentives, mentoring, and role design.

For banking institutions in Jharkhand, the practical opportunity is therefore not to search for a perfect personality profile. It is to use personality knowledge to improve development and fit. Recruitment can become more behaviourally informed, training can become more individualized, mentoring can connect complementary strengths, and appraisal can recognize the full range of managerial contributions. In an industry where trust, regulation, technology, and customer expectations continually intersect, understanding the person behind the managerial role is not a peripheral concern. It is part of understanding how institutions function.

REFERENCES

Basu, S., & Ghosh, A. (2015). Leadership styles and employee engagement in Indian banking sector. Journal of Business Studies, 32(2), 45-67.

Goldberg, L. R. (1993). The structure of phenotypic personality traits. American Psychologist, 48(1), 26-34.

Goleman, D. (1995). Emotional Intelligence: Why It Can Matter More Than IQ. Bantam Books.

Judge, T. A., Bono, J. E., Ilies, R., & Gerhardt, M. W. (2002). Personality and leadership: A qualitative and quantitative review. Journal of Applied Psychology, 87(4), 765-780.

Kumar, R., & Sharma, P. (2019). The role of leadership in banking performance: A comparative study. Indian Journal of Finance and Banking, 8(1), 56-78.

Roberts, B. W., Kuncel, N. R., Shiner, R., Caspi, A., & Goldberg, L. R. (2007). The power of personality: The comparative validity of personality traits, socioeconomic status, and cognitive ability for predicting important life outcomes. Perspectives on Psychological Science, 2(4), 313-345.

Singh, P., & Kumar, R. (2020). Organizational behavior in public and private banks: A comparative analysis. Indian Journal of Finance and Banking, 7(3), 113-129.

Srivastava, S., & Gupta, R. (2018). Digital banking and managerial adaptability in India: A case study of Jharkhand. Journal of Banking and Financial Services, 12(2), 98-115.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ. रीना मेवाड़ा
मोबाइल नं 7580930898
ईमेल reeamewada06182@gmail.com

सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी एक महान राजनेता, विचारक और दार्शनिक थे। पंडित जी का जन्म 25 सितंबर 1916 को हुआ तथा इस महान राजनेता की जीवन-लीला का अंत 10 फरवरी 1968 की मध्यरात्रि में हत्या जैसे कुकृत्य से हुआ। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युग के अनुरूप प्रस्तुत करते हुए समाज को एकात्म मानववाद नामक विचारधारा दी।

दीनदयाल जी सन् 1940 से ही सार्वजनिक जीवन में आ गए थे। उनके जीवन में कर्तृत्व और विचार, दोनों में समानता थी। वे वैचारिक निष्ठा एवं व्यवहारिक कर्मशीलता के अप्रतिम उदाहरण थे। उन्होंने जितना लिखा, उससे अधिक बोला है। उनके विचार सर्वांगीण थे। राष्ट्रजीवन का इतना केंद्र स्थान कोई व्यक्ति सहज ही प्राप्त नहीं कर सकता। कुछ कवियों के लिए वे सदा के लिए स्फूर्ति का केंद्र बन सकते हैं।

प्रस्तावना

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी केवल एक राजनेता ही नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के शुभचिंतक थे। उनका जीवन और उनके विचार वर्तमान समय में भी भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था के लिए प्रेरणास्रोत हैं। पंडित जी एक भारतीय विचारक, राष्ट्रनेता और भारतीय जनसंघ के प्रमुख नेता थे। उन्होंने एकात्म मानववाद की विचारधारा प्रस्तुत की, जो वर्तमान भारतीय राजनीति और अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण दर्शन बन चुकी है।

एकात्म मानववाद का महत्व

एकात्म मानववाद आधुनिक भारत को दिशा देने वाला एक ऐसा दर्शन है, जिसमें व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को एक जीवंत इकाई के रूप में देखा गया है। वर्तमान अर्थव्यवस्था, राजनीति और सामाजिक व्यवस्था में उनके विचारों की अत्यंत आवश्यकता प्रतीत होती है। यह विचारधारा पूँजीवाद और समाजवाद दोनों से भिन्न थी तथा भारतीय संस्कृति पर विशेष बल देती थी।

पंडित जी का मानना था कि भारत की विकास योजनाएँ केवल पश्चिमी औद्योगिक और भौतिकवादी सोच पर आधारित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उनमें आध्यात्मिक जीवन-मूल्य और समाज की समरसता में निहित भारतीयता होनी चाहिए। उनके अनुसार—

"मानव केवल शरीर नहीं, बल्कि मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है।"

विकास का लक्ष्य केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, अपितु समग्र मानव कल्याण होना चाहिए। यह दर्शन वर्तमान समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जब विकास को केवल धन के बढ़ने से आँका जाने लगा है। तब पंडित जी के विचार समाज में नया परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं।

"एकात्म मानव दर्शन के प्रवर्तक पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के आलेखों, भाषणों, वाद-विवादों एवं संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया— इन सबसे कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ।" (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय, खंड 1, पृष्ठ संख्या 65)

स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता

पंडित जी के विचार में सच्ची स्वतंत्रता तभी संभव है जब व्यक्ति आत्मनिर्भर और स्वावलंबी हो। यह विचारधारा आज के समय में व्यक्ति को एक ऐसे जीवन की दिशा देती है, जिसमें वह अपनी स्वतंत्रता को उच्छृंखलता न बनाते हुए देशप्रेम के साथ अपनी उन्नति करता है और राष्ट्र के विकास में सहायक होता है। व्यक्ति का स्वावलंबन समाज को भी आगे बढ़ाता है।

राष्ट्र की उन्नति के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता का होना अत्यावश्यक है। पंडित जी के विचार आज समाज में ऐसे प्रतिमान स्थापित करने में सहायक हैं, जो हमारे देश को आगे बढ़ाने और विकसित देशों के समान खड़े होने का हौसला प्रदान करते हैं।

"आधुनिक काल में अंग्रेज़ों ने हमारे स्वाभिमान को नष्ट करने का प्रयत्न किया, किंतु आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण आदि के उद्योग से वही राष्ट्रीय भावना का प्राचीन सूत्र पकड़कर हम आगे बढ़े। राजनीति के वस्त्र तो हम कभी भी धारण कर सकते हैं, किंतु यह स्रोत संरक्षण रूप से आवश्यक है।"

(दीनदयाल उपाध्याय वाङ्मय, खंड 1, पृष्ठ संख्या 71)

अंत्योदय सिद्धांत और आधुनिक भारत

पंडित जी का अंत्योदय सिद्धांत समाज के अंतिम व्यक्ति तक विकास पहुँचाने और गरीबों की वंचित जरूरतों को पूरा करने पर बल देता है। आज भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ— जैसे प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना, मुद्रा योजना और आत्मनिर्भर भारत अभियान— उनके अंत्योदय सिद्धांत से ही प्रेरित हैं। ये योजनाएँ समाज के सबसे पिछड़े वर्ग को मुख्यधारा में लाने का प्रयास करती हैं।

दीनदयाल जी ने स्वदेशी और आत्मनिर्भरता को अत्यंत महत्त्व दिया। उनके अनुसार, स्थानीय उद्योगों और उत्पादों के माध्यम से ही व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। आज का आत्मनिर्भर भारत अभियान और मेक इन इंडिया नीति उनके इन्हीं विचारों का परिणाम है।

नैतिक और पारदर्शी राजनीति

"पंडित जी के अनुसार प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसे काम मिले। काम न मिलने से उसकी आजीविका का सहारा छिन जाता है और वह राष्ट्र के अर्जन में सहायता देने से वंचित हो जाता है। 'प्रत्येक को काम' का सिद्धांत यदि स्वीकार कर लिया जाए तो समवितरण की दिशा निश्चित हो जाती है। अधिक केन्द्रीयकरण के स्थान पर हम विकेन्द्रीयकरण की ओर बढ़ते हैं।" (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय, खंड 2, पृष्ठ संख्या 133)

दीनदयाल जी नैतिक और पारदशी राजनीति के समर्थक थे। उनका मानना था कि राजनीति का उद्देश्य सत्ता प्राप्ति नहीं, बल्कि लोकसेवा होना चाहिए। आज के समय में जब भ्रष्टाचार और अपराधीकरण बढ़ रहा है, उनके विचार राजनीति को शुद्ध और सेवा के रूप में देखने की प्रेरणा देते हैं।

शिक्षा और संस्कृति

शिक्षा के विषय में पंडित जी ने नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर विशेष बल दिया। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में भी उनके विचारों की झलक दिखाई देती है। उनका मानना था कि शिक्षा केवल रोजगार के लिए नहीं, बल्कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए होनी चाहिए।

पंडित जी ने कई स्थानों पर लिखा है–

"पढ़े-लिखे लोगों की शिक्षा के लिए औद्योगिक शिक्षा केंद्र खोले जाएँ, जहाँ शिक्षा के साथ-साथ काम भी सीखा जा सके। ये केंद्र सरकार द्वारा बड़े पैमाने पर खोले जाने चाहिए। गाँव की बेरोजगारी दूर करने के लिए सहायता का प्रारंभ किया जाए– सड़कें, इमारतें, कुएँ और तालाब आदि कई योजनाएँ शुरू की जा सकती हैं। पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत भी जनशक्ति का अधिकतम उपयोग होना चाहिए।" (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय, खंड 2, पृष्ठ संख्या 136)

आधुनिक भारत में प्रासंगिकता के उदाहरण

आज जब भारत विकासशील से विकसित देशों की श्रेणी में अग्रसर है, तब पंडित जी के विचार विकास के साथ-साथ सामाजिक समरसता और नैतिकता को बनाए रखने की याद दिलाते हैं। उनके विचार राजनीति ही नहीं, बल्कि समाज के हर वर्ग के लिए प्रेरणास्पद हैं।

उदाहरण :

1. आत्मनिर्भर भारत अभियान और मेक इन इंडिया नीति– दीनदयाल जी के स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के विचारों को आगे बढ़ा रही हैं।
2. अंत्योदय सिद्धांत का प्रत्यक्ष रूप– प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना और मुद्रा योजना।
3. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति– दीनदयाल जी के शिक्षा संबंधी विचारों को मूर्त रूप देती है।

समग्र विकास की भारतीय दृष्टि

दीनदयाल जी के विचार आज भी भारत की नीतियों और जनकल्याण योजनाओं में जीवंत हैं। उन्होंने भारतीय विकास मॉडल में आध्यात्मिकता, मानवता और सामाजिक समरसता को जोड़ा। उनका मानना था कि राष्ट्र की उन्नति केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी होनी चाहिए। उनका दृष्टिकोण हमें "संपूर्ण विकास" की दिशा में ले जाता है– जिसमें व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों का संतुलित उत्थान हो।

युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा

पंडित दीनदयाल जी के विचार आज की युवा पीढ़ी के लिए विशेष रूप से प्रेरणादायी हैं। उन्होंने युवाओं से आह्वान किया था कि वे आत्मविश्वास, श्रम और नैतिकता के बल पर राष्ट्र निर्माण में योगदान दें। आज के प्रतिस्पर्धी युग में जब मूल्य और नैतिकता पीछे छूटती जा रही हैं, तब उपाध्याय जी की शिक्षा–"चरित्र निर्माण ही राष्ट्र निर्माण का आधार है"–पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो उठी है।

सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता

दीनदयाल जी का एकात्म मानववाद व्यक्ति को समाज से और समाज को राष्ट्र से जोड़ता है। उनके अनुसार, जाति, धर्म, भाषा या क्षेत्र के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। उनकी विचारधारा सामाजिक समरसता, समानता और राष्ट्रीय एकता की सशक्त आधारशिला है। आज "सबका साथ, सबका विकास" जैसे नारे उसी एकात्म दृष्टिकोण की झलक हैं।

आर्थिक स्वावलंबन और 'विकास का भारतीय मॉडल'

उन्होंने आर्थिक विकास को केवल पूँजी-संचय तक सीमित न रखकर इसे समाज कल्याण से जोड़ा। उनका विश्वास था कि "विकास व्यक्ति केंद्रित नहीं, बल्कि समाज केंद्रित होना चाहिए।" आज नीति आयोग की "वोकल फॉर लोकल" और "आत्मनिर्भर भारत" जैसी पहलें उन्हीं के आर्थिक दर्शन की आधुनिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

विश्ववैश्यिक संदर्भ में दीनदयाल जी के विचार

आज जब पूरा विश्व पर्यावरणीय संकट, नैतिक पतन और उपभोक्तावाद की दौड़ से जूझ रहा है, तब उपाध्याय जी की मानव-केंद्रित विकास दृष्टि विश्व के लिए भी एक दिशा प्रदान करती है। उनकी सोच भारत तक सीमित नहीं, बल्कि वैश्विक मानवता के कल्याण की भी पक्षधर है।

संस्कृति और मूल्य आधारित जीवन दृष्टि

दीनदयाल जी के अनुसार संस्कृति ही राष्ट्र की आत्मा है। उन्होंने कहा था कि—"संस्कृति के बिना सभ्यता केवल बाहरी चमक है।"

उनकी जीवन दृष्टि व्यक्ति के भीतर के आत्मबल को जगाने पर आधारित थी। यह विचार आज भी भारत को सांस्कृतिक रूप से सशक्त और नैतिक रूप से जागरूक बनाए रखने में सहायक है।

निष्कर्ष

दीनदयाल जी एक समन्वित विचारधारा के समर्थक थे। उनका उद्देश्य सशक्त भारत के निर्माण के साथ-साथ स्वतंत्रता की पुनर्रचना और आर्थिक नीति में भारतीयता का समावेश था। उपाध्याय जी के अनुसार, एकात्म मानववाद गहरे चिंतन और साधना के लिए एक सहज और सरल मार्ग प्रस्तुत करता है। इसकी विशेषता इस बात में है कि जितनी बार इसे पढ़ा जाए, यह हर बार नया अंतर्बोध कराता है।

संदर्भ सूची

1. (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय, खंड 1, पृष्ठ संख्या 65)
2. (दीनदयाल उपाध्याय वाङ्मय, खंड 1, पृष्ठ संख्या 71)
3. (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय, खंड 2, पृष्ठ संख्या 136)
4. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय, खंड 1-2, प्रकाशक - प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
5. पंडित दीनदयाल उपाध्याय : दर्शन और विचार, लेखक - डॉ. राधेश्याम मिश्रा, प्रभात प्रकाशन, 2019।
6. एकात्म मानववाद और भारतीय राजनीति, संपादक - डॉ. सुनील चतुर्वेदी, भारतीय अध्ययन संस्थान, 2018।
7. आत्मनिर्भर भारत अभियान रिपोर्ट, नीति आयोग, भारत सरकार, 2020।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

अमरकांत के कथा साहित्य की प्रासंगिकता

निरुपमा हाँसदा
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
सिदो कान्हू मुर्मू वि. वि. दुमका (झारखण्ड)

अमरकांत हिन्दी कथा जगत के ऐसे कथाकार है जिन्होंने अपनी कथा, शैली से समाज की पीड़ा को जिवंत रूप में प्रस्तुत करने में अप्रतिम सफलता प्राप्त की है।

अमरकांत निम्नमध्यवर्गीय समाज के मनोविज्ञान को अच्छी तरह समझते हैं। इसीलिए वे इस समाज के लोगो का यथार्थ अंकन कर सके है। फर्क, लाखों, नौकर बहादुर, निर्वासित, जाँच और बच्चे, मूस, हत्यारे, 'दोपहर का भोजन' इत्यादि कहानियों में निम्नमध्यवर्गीय समाज के लोगों के प्रति अमरकांत की संवदेना, सहानुभूति व उनका वैचारिक दृष्टिकोण प्रकट हुआ है।

जिन्दगी और जोंक अमरकांत की एक प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी का प्रमुख पात्र रजुआ जितना निरीह व दयनीय है उतना ही काइयां भी तथा निम्नमध्यवर्गीय गुणों से युक्त है। वह अंधविश्वासी है तथा भूत प्रेत कों मानता है। दाढ़ी बढ़ाकर शनीचरी देवी को जल चढ़ाता है। पगली को फुसलाकर अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है। इसी तरह मूस कहानी का मूस भी एक निरीह व शोषित पात्र है। वह परबतिया के इशारे पर नाचता रहता है। वह इतना दबा-दबा रहता कि परबतिया उससे दो शब्द मीठा बोलना भी जरूरी नहीं समझती। वह सदा रूखाई से पेश आती। परवतिया उसको अक्सर दो वित्ते का मर्द कहकर अपनी उच्चता और प्रभुत्व की पुष्टि करती रहती है।

मध्यवर्गीय व्यक्ति भाग्यवादी होता है। उसे अपने कर्म व परिश्रम से ज्यादा ईष्वर पर विष्वास होता है। तभी तो डिप्टी कलक्टरी के शकलदीप बाबू को भाग्य व भगवान पर ज्यादा भरोसा है। वे अपनी पत्नी को पूजा पाठ करने को कहते है। स्वयं भी मन्दिर जाने लगते है। नारायण की अम्माँ आजकल तुम्हारा पूजा पाठ नहीं होता क्या? ..... सुनते हैं सच्चे मन से राधास्वामी की पूजा करने से सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते है। इस तर्कहीन व्यवस्था में व्यक्ति को जब मेहनत व ईमानदारी के बावजूद भी फल नहीं मिलता तो उसका भाग्यवादी हो जाना स्वाभाविक भी है। व्यक्ति को जब अपने परिश्रम का फल नहीं मिलता तो उसके लिए कर्मठता निरर्थक हो जाती हैं। श्रम के प्रति उसका उत्साह व विष्वास समाप्त हो जाता है। गगन बिहारी का सुन्दरलाल इसी तरह का पात्र है। जो बड़ी-बड़ी योजनाएं तो बनाता है लेकिन उसे क्रियान्वित नहीं कर पाता क्योंकि वह अपने कार्य के प्रति निष्क्रिय है। इसके पीछे हमारे समाज की तर्कहीन व्यवस्था जिम्मेदार है। जहां व्यावसायिक सफलता परिश्रम व मेहनत से नहीं बल्कि चमत्कार से प्राप्त होता है। उसने निश्चय कर लिया कि होमियोपैथी डाक्टरी करके ही अब वह जीवन में आगे बढ़ेगा। यह कार्य कठिन नहीं। होमियापैथी में पता नहीं कितनी प्रतिक्षा करनी पड़े, लेकिन इसमें तो चट बोइए और पट काटिए। खेती में उसकी प्रतिभा निश्चित रूप से चमक सकती है। अन्त में वह व्यापार करने की सोचता है लेकिन उसे भी क्रियान्चित नहीं कर पाता है।

महादेवी वर्मा के शब्दों में संघर्ष की कला लेकर तो मनुष्य उत्पन्न ही हुआ है, उसे सीखने कहीं जाना नहीं पड़ता। यदि वास्तव में मनुष्य ने इतने युगों में कुछ सीखा है तो वह जीने की कला कही जा सकती है और यह कला रजुआ को बाखूबी आती है।

रजुआ अमरकांत का देखा हुआ पात्र है। मोहल्ले में जिस दिन उसका आगमन हुआ लेखक ने उसे उसी दिन देखा था। रजुआ पर साड़ी चोरी करने का आरोप लगता है। उसकी पिटाई होती है। इस घटना के बाद वह इसी मुहल्ले में रहने लगता है। लोग उससे अपना छोटा-छोटा काम करवाने लगते हैं, और कुछ खाने पीने को दे देते है। अमरकांत ने लिखा है कि उसकी सेवाओं की उपयोग सम्बन्धी खीचतानी से उसका सामाजीकरण हो गया। मोहल्ले का कोई भी व्यक्ति उसे दो चार रूपये देकर स्थायी रूप से नौकर रखने को तैयार न हुआ, क्यों कि वह इतना शक्तिशाली कतई न था कि चौबीस घंटे नौकर की महान जिम्मेदारियां संभाल सके। अब न वह शिवनाथ बाबू के यहां टिकता और न जमुनालाल के यहाँ क्यों कि उसको कोई टिकने ही न देता। इसको रजुआ ने भी समझ लिया और मोहल्ले के लोगों ने भी, वह अब किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, बल्कि सारे मोहल्ले का नौकर हो गया।

रजुआ का जीवन यथार्थ हमारे समाज की उस सच्चाई को प्रकट कर देती है जिसमें व्यक्ति के शोषण का भी सामाजीकरण हो जाता है और वह कुछ कर नहीं सकता क्यों कि जीना है तो किसी भी हद तक जाना होगा। रजुआ हर परिस्थिति को स्वीकार करता है। और बदले में जो कुछ मिल जाता है उसी में प्रसन्न हो जाता है। मैंने घूमकर एक निगाह उस पर डाली। उसके हाथ में एक रोटी और थोड़ा-सा अचार था और वह सुअर की भांति चापुड़-चापुड़ खा रहा था। बीच-बीच में वह मुस्करा पड़ता जैसे कोई बड़ी मंजिल सर करके बैठा हो।

इसी कहानी के पात्र शिवनाथ बाबू जैसे व्यक्ति के माध्यम से अमरकांत ने समाज के शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों की कलई खोली है। शिवनाथ बाबू जैसे लोग गरीबों की मजबूरी का फायदा उठाकर उनका अमानवीयता की हद तक शोषण करते है और स्वयं को बड़ा सहृदय, परमार्थी व दयाशील प्रकट करते हैं। शिवनाथ बाबू ने ही रजुआ को साड़ी चोरी के इलजाम में पीटा था लेकिन बाद में जब उन्हे लगा कि वह उनके काम का है तो उसे बुलाकर अपने यहां रहने-खाने को कहते है। रजुआ उनके यहां रहने लगता है और काम के बदले में उसे मिलता है सिर्फ दो जून का भोजन लेकिन एक दिन उन्होंने किसी शुभमुहुर्त में उसे सड़क से गुजरते समय संकेत से बुलाया और तिरछी नजर से देखते हुए, मुस्करा कर बोले, देख बे, तूने चाहे जो भी किया, हमसे तो यह सब नही देखा जाता दर-दर भटकता रहता है। कुत्ते-सुअर का जीवन जीता है। आज से इधर-उधर भटकना छोड़, आराम से यहीं रह और दोनों जून भरपेट खा।

दोपहर का भोजन नामक कहानी आर्थिक अभावों से जूझते निम्नमध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिकता, उसके द्वन्द्व तथा यथार्थ से आंखे मिलाने की जटिलता तथा संघर्ष को यह कहानी सशक्त रूप से अभिव्यक्त करती है। मध्यवर्ग के लोगों का निम्नमध्यवर्ग के प्रति जो मानसिकता है उसे नौकर व बहादुर जैसी कहानियों में अभिव्यक्त किया गया है। मध्यवर्गीय व्यक्ति निम्नमध्यवर्ग के व्यक्ति को सदा शक की निगाह से देखता है। उसके साथ गाली-गलौज, मारपीट करना, हीन व तुच्छ समझना इस वर्ग की सामान्य प्रवृत्ति है।

अमरकांत स्त्री के जीवन में आ रहे परिवर्तनों का चित्रण भी अपनी रचनाओं में किया है। आज की स्त्री यह समझ चुकी है कि उसकी जीवन स्थिति तभी बदलेगी जब वह शिक्षित होगी, निडर होगी तथा अपने अधिकारों की मांग करेगी। अमरकांत की रचनाओं में ऐसे स्त्री पात्र आते हैं जो अपने शिक्षा के अधिकार की मांग करते है। अमरकांत स्वयं भी स्त्री शिक्षा पर बहुत बल देते हैं। बीबी के खत नामक कहानी की नायिका अपने पति से स्पष्ट रूप से कहती है कि देखिए जी, मैं सोचती हूँ, पढ़ें। आजकल तो पति पत्नी दोनों के कमाने की फैशन है। हमारे घर के बगल में एक नये किरायेदार आये हैं। उनकी पत्नी स्कूल में मास्टरनी हैं। बड़ी मिलनसार है। हर किस्म की मदद करने को तैयार रहती है। बी0ए0. एल0टी0 हैं। यह सब पढ़ाई उन्होने ससुराल में आकर की है। उनके पति मामूली नौकरी पर हैं, पर दोनों मियां बीबी कमाकर बड़े अच्छे ढंग से रहते हैं। मैं कहे देती हूँ, आपको मुझे पढ़ाना पड़ेगा।

इस तरह अमरकांत ने स्त्री के संघर्ष, उसकी जागरूकता तथा स्त्री के जीवन मे आ रहे परिवर्तनों को यथार्थ परक ढंग से अभिव्यक्त किया है।

निष्कर्ष :

निसन्देह अमरकान्त जीवन के घरातल से जुड़े हुए साहित्यकार हैं। उन्होंने निम्न मध्यवर्गीय समाज की जीवन्त समस्याओं को देखा, परखा व स्वंय भोगा है। इसीलिए उनकी कहानियों में हमें आत्मीयता झलकती है। उनकी कहानियों में हमें एक ऐसे समाज की यथार्थ झांकी मिलती है जिन्हें प्रायः अन्य साहित्यकारों ने अनदेखा कर दिया है। अमरकान्त की समस्त कहानियां सामाजिक सरोकार की कहानियां हैं, सामाजिक समस्याओं की कहानियां हैं, सामाजिक चेतना की कहानियां है जो तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। अंत में हम कह सकते है कि अमरकांत ने मध्यवर्गीय व्यक्ति, परिवार व समाज के अन्तर्सम्बन्धों को, उनके यथार्थ को प्रमाणित ढ़ग से चित्रित किया है। अमरकांत ने यह स्पष्ट किया है व्यक्ति पर परिवार व समाज का गहरा असर होता है तथा व्यक्ति भी समाज को गहरे रूप से प्रभावित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अमरकांत, सुन्नर पांडे की पतोह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2015
2. अमरकांत, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियों (दूसरा खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2013
3. अमरकांत, इन्ही हथियारों से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2014
4. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवीं आवृत्ति-2006
5. नामवर सिंह, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण-2012

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

परंपरा और आधुनिकता के बीच लैंगिक समानता की बदलती भूमिका

डॉ. पूनम भूषण
असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र,
शहीद दुर्गा मल्ल राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय डोईवाला देहरादून

सारांश

समानता एक सुन्दर सुरक्षित समाज की वह नींव है जिस पर विकास रूपी इमारत बनायी जा सकती है। लैंगिक समानता का अर्थ यह नहीं कि समाज का हर व्यक्ति एक लिंग का हो अपितु लैंगिक समानता का सीधा सा अर्थ समाज में महिला तथा पुरुष के समान अधिकार, दायित्व तथा रोजगार के अवसरों के परिप्रेक्ष्य में है। प्राचीन काल से ही समाज में महिलाओं की भूमिका मुख्यतः परिवार और घरेलू कार्यो तक सीमित मानी गयी है। जबकि पुरुषों को आर्थिक एवं सामाजिक निर्णयों में प्रमुख स्थान दिया जाता है। परंपरागत व्यवस्था में परिवार को सामाजिक जीवन की प्रमुख इकाई माना गया है। परंपरागत समाजों में महिलाओं की स्थिति सदैव एक जैसी नही रही है। वैदिक काल में समानता प्राप्त थी उत्तरवैदिक काल में पितृसत्ता का प्रभाव बढ़ने लगा और महिलाओं की स्थिति निम्न होती गयी। लैंगिक समानता केवल महिलाओं को अवसर देने तक सीमित नही है, बल्कि परिवार और समाज में निर्णय लेने की प्रक्रिया में समान भागीदारी सुनिश्चित करना भी इसका महत्वपूर्ण पक्ष है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, संपत्ति और राजनैतिक भागीदारी में समान अवसर सामाजिक न्याय के लिये आवश्यक है। महिलाओं के लिये आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ -साथ शैक्षिक, सामाजिक, और निर्णयात्मक आत्मनिर्भरता भी महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध पत्र परंपरागत समाजों में लैंगिक समानता और आत्मनिर्भता नामक विशय पर आधारित है।

मुख्य शब्द- परम्परा, सशक्तिकरण, आत्मनिर्भरता, पितृसत्ता, लैंगिक, परिवर्तन।

नारी को हम पुरुष जन्य प्रकृति के रूप में देख सकते हैं। एक ओर गंगा तो दूसरी ओर गीता भी अर्थात् मानवता और नैतिकता का प्रतीक। प्रकृति के रूप में उसकी व्युत्पत्ति सोद्देश्य सार्थक और महत्वपूर्ण है उसका अभाव अपूर्ण और गतिहीन है क्योंकि वहीं पुरुष की प्रकृति है, नारी तो समाज है। परंपरागत समाज में अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि, वनोपज, घरेलू कार्य, पशुपालन और स्थानीय हस्तशिल्प पर आधारित थी। महिलाएं परिवार की आर्थिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देती है। लेकिन महिलाओं के श्रम के श्रम का कोई औपचारिक आर्थिक मूल्य या स्वतंत्र आय के रूप में मान्यता नही मिलती थी। कृषि मे महिलाओं की भागीदारी पुरुषों से कभी अधिक थी तो कभी कम रही है। महिलाओं को समाज में शिक्षा, संपत्ति, निर्णय लेने तथा सार्वजनिक जीवन में पुरुषों के समान अवसर नही मिलते थे। सामाजिक रूढ़ियां और पितृसत्तात्मक व्यवस्था उनकी स्वतंत्रता को सीमित करती है। समाज की सांस्कृतिक परंपराओं को आगे बढ़ाने में महिलाओं की मुख्य भूमिका रही है। इस शोध के निम्नलिखित उद्देश्य है।

शोध के उद्देश्य

- परंपरागत समाज में महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता के स्वरूप को समझना।
- समाजिक स्तर पर लैंगिक भूमिकाओं का विश्लेषण करना।
- आधुनिकता के आगमन से परंपरागत आत्मनिर्भरता के ढांचे मे आये बदलाव को पहचानना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिये द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। शोध में महिलाओं की परंपरागत स्थिति तथा आधुनिक समाज में आये बदलावों का अध्ययन किया गया है।

परंपरागत समाज में महिलाओं की स्थिति

प्राचीन समाज में देखे तो वैदिक काल में मातृ पद सबसे उच्च माना गया है। तैतिरीय उपनिषद में शिक्षा समाप्ति के पश्चात् गुरु द्वारा शिश्यों को दिये जाने वाले उपदेश में ''मातृ देवो भवः पितृ देवो भवः'' कहा गया है।

जैन धर्म ने नारी के मातृरूप को अत्यन्त ही आदर प्रदान किया है। जैन धर्म के 24 तीर्थकारो में से 19 वी मल्लीनाथ स्वयं स्त्री थी। इतना सब होने पर भी जैन धर्म नारी को पुरुष के लिए मोक्ष प्राप्ति में बाधा मृत्युप्राण तथा काम का साधन बताकर उसे त्याज्य भी बताता रहा।आचार्य अमितगति ने भी स्त्री को माया अपकारी तथा कुल के लिए कलंक लगाने वाली कहा है। बौद्ध धर्म का जन्म ही वैदिक धर्म के कर्मकाण्डो ब्राहमाडम्बरो व संकीर्णता की प्रतिक्रिया स्वरूप ही हुआ था। पुत्री का जन्म अमंगलकारी समझा जाना बन्द हो गया। बुद्ध के द्वारा धर्म के द्वारा विधवा पतिता, वैश्या आदि सभी के लिए खोल दिए जाने से विधवाएं प्रायः बौद्ध संघ में दीक्षित हो जाया करती थी, बुद्ध ने अनेक उत्पीड़ित नारियों को संघ में शिक्षा दी थी। बौद्ध धर्म में भिक्षुणियां बनकर और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर भ्रमण करती थी।

मध्यकाल में देश की राजनीतिक स्थिति डंवाडोल थी, पूर्व मध्ययुग में अरबों तथा अन्य मुसलमानों के जो आक्रमण प्रारम्भ हुए थे वे इस युग में तीव्रतर हो गए। भारत में मुसलमानों के आगमन के बाद उनकी आबादी धीरे-धीरे बढ़ने लगी। हिन्दू समाज का निम्नवर्ग ब्राहमणों के उत्पीड़न से बचने के लिए इस्लाम धर्म में शामिल होने लगा।

यह युग अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण आदि से परिपूर्ण था। भारतीय समाज में बाल-विवाह इस्लाम के प्रभाव की देन है। स्वतन्त्रता के पश्चात् महिलाओं को राजनीति में 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान कर दिया जिससे महिलाएं राजनीति के प्रति जागरूक हुई। महिलाओं में शिक्षा के प्रसार के कारण सामाजिक तथा आर्थिक जागरूकता आयी है। है। महिलाओं ने आर्थिक क्षेत्र में भी सरकारी तथा गैरसरकारी क्षेत्र में कार्य कर अपने को मजबूत कर पहचान बनायी है।

लैंगिक समानता

समानता एक सुन्दर सुरक्षित समाज की वह नींव है जिस पर विकास रूपी इमारत बनायी जा सकती है। लैंगिक समानता का अर्थ यह नही कि समाज का हर व्यक्ति एक लिंग का हो अपितु लैंगिक समानता का सीधा सा अर्थ समाज में महिला तथा पुरुष के समान अधिकार, दायित्व तथा रोजगार के अवसरों के परिप्रेक्ष्य में है। लैंगिक समानता केवल महिलाओं को अवसर देने तक सीमित नहीं है, बल्कि परिवार और समाज में निर्णय लेने की प्रक्रिया में समान भागीदारी सुनिश्चित करना भी इसका महत्वपूर्ण पक्ष है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, संपत्ति और राजनैतिक भागीदारी में समान अवसर सामाजिक न्याय के लिये आवश्यक है। महिलाओं के लिये आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ-साथ शैक्षिक, सामाजिक, और निर्णयात्मक आत्मनिर्भरता भी महत्वपूर्ण है। इसी के मध्येनजर सितम्बर 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की उच्च स्तरीय बैठक में में एजेंडा 2030 के अन्तर्गत 17 सतत विकास लक्ष्य 5 के अन्तर्गत लैंगिक समानता के विशय को भी शामिल किया गया है

आधुनिकता और लैंगिक समानता में परिवर्तन

पारिवारिक भूमिका मे परिवर्तन

आधुनिक परिवारों में पति-पत्नी के बीच घरेलू एवं आर्थिक जिम्मेदारियों के बंटवारे के नये रूप दिखायी देते है। आज परंपरागत परिवार की जिम्मेदारियां समाप्त हो गयी है। पारंपरिक सोच में बदलाव आया है।

सामाजिक क्षेत्र मे परिवर्तन

लैंगिक असमानता का प्रभाव हर क्षेत्र में दिखायी देता है। समाज में स्त्रियों की स्थिति का सही आंकलन करने में स्त्रियों के प्रति समानता का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है। समाज के हर क्षेत्र में जहां महिलाओ को स्वतंत्रता नहीं थी आज हर सामाजिक कार्य में प्रतिभाग कर रही है। उच्च पदों पर आसीन होकर समाज तथा देश के विकास में अपना योगदान दे रही है। समाज सेवा में अपना योगदान दे रही है।

आर्थिक क्षेत्र मे परिवर्तन

समय-समय पर भारत सरकार द्वारा वित्त व्यवस्था प्राप्त होने पर सिलाई, कढ़ाई, इलेक्ट्रानिक्स, स्टेनोग्राफी तथा व्यूटिशियन के कोर्स के प्रशिक्षण महिलाओ को दिये जाते हैं। जिनको सीखकर महिलाएं स्वावलम्बी बन रही है। महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों के अन्तर्गत भारत सरकार के महिला व बाल विकास विभाग तथा राष्ट्रीय महिला कोश द्वारा प्रदेश की विभिन्न दुग्ध सहकारी समितियों की महिला सदस्यों को स्वावलम्बी बनाने हेतु अच्छी नस्ल के दुधारू पशु खरीदने के लिए मुद्रण व अनुदान उपलब्ध कराये जाते है। महिलायें कल कारखानों में कार्य कर रही है। उद्योगपति बनकर कई लोगो को रोजगार प्रदान कर रही है।

राजनीतिक क्षेत्र मे परिवर्तन

भारत के राजनीतिक इतिहास में यह पहला समय था जब स्थानीय स्वशासित संस्थाओ में एक-तिहाई स्थान महिलाओ के लिए आरक्षित किए गए। इन संविधान संशोधनों से पंचायत की सत्ता संरचना में और निर्णय प्रक्रिया में महिलाओ की भागीदारी हुई। इससे महिलाओ के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई तथा जागरूकता आयी। आज महिलायें राजनीति के क्षेत्र में परचम लहरा रही है।

शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा के अनेक कार्यक्रम चलाये गये जैसे कि राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, महिला सामाख्या योजना, जीवन हेतु महिलाओं का एकीकृत अध्ययन, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, अनौपचारिकता शिक्षा योजना, नवोदय तथा केन्द्रीय विद्यालयो में लड़कियों के इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएं चलायी गयी है। आज महिलायें हर क्षेत्र में शिक्षा ग्रहण कर रही है। डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, सैनिक, पुलिस, राजनेता जैसी सेवाओं में अपना योगदान दे रही है।

खेल के क्षेत्र में परिवर्तन - पहले जहां महिलाओं को घर से बाहर निकलने की आजादी नही थी महिलायें खेल के क्षेत्र में प्रत्येक खमन में प्रतिभाग कर रही है। जो खेल केवल पुरुष के लिये थे उनमें भी भाग ले रही है। घर से बाहर, विदेशों भी परचम लहरा रही है। आज धर से बाहर जाने के प्रतिबन्धी सोच में बदलाव आया है।

लैंगिक समानता में प्रमुख चुनौतयां

- रूढ़िगत लैंगिक भूमिकाएं

- महिलाओं के श्रम का कम मूल्यांकन
- आर्थिक संसाधनों तक सीमित पहुंच
- निर्णय लेने में कम भागीदारी
- घरेलू कार्यों का असमान वितरण
- समाजिक और सांस्कृतिक रूढ़ियां
- महिलाओं की आर्थिक निर्भरता

महिलाओं को सशक्त करने में आने वाली सबसे बड़ी बाधा लैगिक असमानता को दूर करना आवश्यक है। क्योंकि यह सोच कही न कही विकास में रूकावट उत्पन्न करती है। जो कि समाज के विकास को पीछे ले जाती है। नारीवादी दृष्टिकोण महिलाओं और पुरुषों के बीच शक्ति, संसााधन और अवसरों के वितरण का अध्ययन करने में सहायता करता है।

निष्कर्ष

परंपरागत समाजों में लैंगिक समाजों में लैगिक सम्बन्धों का स्वरूप जटिल रहा है। एक ओर स्त्री और पुरुष के बीच कार्य-विभजन और पारस्परिक निर्भरता ने सामाजिक जीवन को व्यवस्थित किया, वही दूसरी ओर परंपरावादी व्यवस्था ने महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित किया लैगिक समन्वय का उद्देश्य परंपरा को पूरी तरह अस्वीकार करना नहीं है। बल्कि ऐसी परंपराओं और सामाजिक मूल्यों को प्रोत्साहित करना है। जो समानता, सहयोग, मानवीय गरिमा कों मजबूत करें महिला आत्मनिर्भरता इसके लियें महत्वपूर्ण आधार है। लैंगिक समानता महिलाओं को शिक्षा, आर्थिक रूप से स्वतंत्रता, निर्णय की स्वतंत्रता, प्रदान किये बिना सम्भव नही है।

सुझाव

- ऽ महिलाओं को शिक्षा के अधिकार व्यापक किये जायें।
- ऽ कौशल विकास एवं रोजगार के अवसर बढा दिये जायें।
- ऽ राजनैतिक एवं सामाजिक भागीदारी को बढ़ाया जाय।
- ऽ लैगिक समानता सम्बन्धी जागरूकता शिक्षा तथा सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से चलाया जाय।
- ऽ संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाय तथा सही प्रयोग की जानकारी दी जानी चाहिये।

संदर्भ सूची

- पुरूवा साहनी प्रतिभा, महिला सशक्तिकरण और स्वयं सहायता समूह, अंकुर बुक डिस्टीब्यूटर्स दिल्ली, पृ. सं. 33, 92
- शर्मा, प्रज्ञा महिला सशक्तिकरण और विकास अविष्कार पब्लिशर्स, डिस्टीब्यूटर्स, जयपुर
- शर्मा प्रेमनारायण एवं विनायक वाणी, 2011, गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तिकरण, भारत बुक सेन्टर, पृ. सं. 147
- शर्मा सवालिया बिहारी एवं अन्य महिला जागृति और सशक्तिकरण, अविश्कार डिस्टीब्यूटर्स, जयपुर
- https://www.reserachgate.net लैगिक असमानता और भारतीय समाज
- https://kzournal.ijarms.org लैगिक समानता एवं सशक्तिकरण : एक विश्लेषण।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारतीय राजनीति में अपराधीकरण : प्रवृत्तियाँ, निर्धारक एवं लोकतांत्रिक शासन पर प्रभाव का विश्लेषण

डॉ. देशराज यादव
सह आचार्य,
ला. ब. शा. राजकीय महाविद्यालय कोटपूतली

सारांश

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। भारत की राजनीतिक व्यवस्था संविधान, विधि के शासन, स्वतंत्र निर्वाचन तथा जनप्रतिनिधित्व के सिद्धांतों पर आधारित है। इसके बावजूद राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की बढ़ती उपस्थिति लोकतांत्रिक शासन के लिए गंभीर चुनौती बनकर उभरी है। राजनीति का अपराधीकरण केवल अपराधियों के राजनीति में प्रवेश तक सीमित नहीं है अपितु इसमें चुनावी प्रक्रिया में धनबल एवं बाहुबल का प्रयोग, राजनीतिक संरक्षण, प्रशासनिक संस्थाओं पर अनुचित प्रभाव तथा आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को राजनीतिक दलों द्वारा चुनावी अवसर प्रदान करना भी सम्मिलित है। प्रस्तुत शोध-लेख का उद्देश्य भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्तियों, उसके प्रमुख निर्धारकों तथा लोकतांत्रिक शासन पर उसके प्रभाव का विश्लेषण करना है।

प्रमुख शब्द : राजनीति का अपराधीकरण, चुनाव सुधार, धनबल, बाहुबल, राजनीतिक दल, लोकतंत्र, विधि का शासन।

प्रस्तावना

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता का निर्माण जनता की इच्छा से होता है। भारतीय संविधान ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, प्रतिनिधि संस्थाओं, मौलिक अधिकारों तथा विधि के शासन के माध्यम से लोकतांत्रिक शासन की आधारभूत संरचना स्थापित की है। भारत में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन के लिए चुनाव आयोग की स्थापना की गई है।

लोकतंत्र की सफलता केवल नियमित चुनाव कराने पर निर्भर नहीं करती अपितु इस बात पर भी निर्भर करती है कि चुनाव कितने स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं पारदर्शी हैं। निर्वाचित प्रतिनिधियों की राजनीतिक और नैतिक गुणवत्ता कैसी है। इसी संदर्भ में भारतीय राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों की बढ़ती उपस्थिति चिंता का विषय है।

एडीआर के अनुसार 2009 के लोकसभा चुनाव में 162 (30%) विजेता उम्मीदवारों ने अपने विरुद्ध आपराधिक मामले घोषित किए थे। यह संख्या 2014 में 185 (34%), 2019 में 233 (43%) तथा 2024 में 251 (46%) हो गई। 2024 में 170 (31%) विजेता उम्मीदवारों ने गंभीर आपराधिक मामले घोषित किए।[1] ये आंकड़े राजनीति और अपराध के बीच बढ़ते संबंध की ओर संकेत करते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि किसी उम्मीदवार द्वारा शपथपत्र में आपराधिक मामला घोषित करना उसकी दोषसिद्धि का प्रमाण नहीं है। लंबित आपराधिक मामला और न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि दो अलग-अलग विधिक अवस्थाएँ

हैं। अतः राजनीति के अपराधीकरण का अध्ययन करते समय दोनों के बीच अंतर बनाए रखना आवश्यक है।

राजनीति के अपराधीकरण की अवधारणा

राजनीति के अपराधीकरण से आशय राजनीति में अपराधी तत्वों के बढ़ते प्रभाव से है। पूर्व में आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त व्यक्ति जब राजनीति में प्रवेश कर राजनेता बन जाते हैं, तो उनके आपराधिक संपर्क और नेटवर्क भी राजनीति को प्रभावित करने लगते हैं। इससे धनबल, बाहुबल, भ्रष्टाचार और राजनीतिक संरक्षण की प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं तथा लोकतांत्रिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है। नानी ए. पालकीवाला ने भारत के नैतिक पतन के प्रमुख प्रतिबिम्बों के रूप में अपराध, घोर अव्यवस्था और भ्रष्टाचार को रेखांकित किया है।[2]

इस प्रकार राजनीति के अपराधीकरण में राजनीतिक प्रक्रिया, चुनावी प्रतिस्पर्धा अथवा सत्ता-संचालन में आपराधिक गतिविधियों, आपराधिक प्रभाव तथा आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

इसे दो स्तरों पर समझा जा सकता है। पहला, अपराधी पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों का प्रत्यक्ष रूप से चुनाव लड़कर राजनीतिक सत्ता में भागीदार बनना। दूसरा राजनीतिक दलों और सत्ता संरचनाओं द्वारा ऐसे व्यक्तियों के प्रभाव एवं संसाधनों का राजनीतिक लाभ के लिए उपयोग करना। इस प्रकार अपराधीकरण केवल व्यक्ति की समस्या नहीं है बल्कि राजनीतिक व्यवस्था और संस्थागत संरचना से जुड़ी हुई समस्या है।

शोध समस्या एवं अध्ययन के उद्देश्य

भारतीय राजनीति में आपराधिक मामलों वाले उम्मीदवारों की बढ़ती संख्या कई प्रश्न उत्पन्न करती है। क्या राजनीतिक दल चुनावी जीत की संभावना को उम्मीदवार की नैतिक एवं राजनीतिक योग्यता से अधिक महत्व देते हैं? क्या धनबल और बाहुबल चुनावी सफलता को प्रभावित करते हैं? क्या न्यायिक प्रक्रिया में विलंब अपराधीकरण को बढ़ावा देता है? क्या मतदाता आपराधिक पृष्ठभूमि की जानकारी के बावजूद ऐसे उम्मीदवारों को समर्थन देते हैं?

इन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं–

1. भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना।
2. इसके प्रमुख सामाजिक, राजनीतिक एवं संस्थागत निर्धारकों की पहचान करना।
3. लोकतांत्रिक शासन और राजनीतिक संस्थाओं पर इसके प्रभावों का अध्ययन करना।
4. राजनीति के अपराधीकरण को नियंत्रित करने हेतु सुधारात्मक उपाय सुझाना।

शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। इसमें मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। भारत निर्वाचन आयोग, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय तथा एडीआर द्वारा निर्वाचन शपथपत्रों के विश्लेषण को प्रमुख स्रोत बनाया गया है।

भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्ति

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मोटे तौर पर राजनीति के अपराधीकरण के प्रमुख स्वरूपों में चुनावों के दौरान राजनीतिज्ञों द्वारा धनबल एवं बाहुबल का प्रयोग, सत्ता में रहते हुए अपराधियों को संरक्षण एवं सहायता प्रदान करना तथा अपराध को बढ़ावा देना शामिल है। इसके साथ ही प्रशासन विशेषकर पुलिस व्यवस्था का राजनीतिकरण, हत्या, लूट, अपहरण जैसे गंभीर अपराधों में संलिप्त व्यक्तियों का विधायिकाओं तक पहुँचना तथा अपराधी पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों को सत्ता में प्रतिष्ठित पद और सम्मान प्राप्त होना राजनीति के अपराधीकरण को स्पष्ट करता है।[3]

लोकसभा चुनावों के उपलब्ध आंकड़े राजनीति में अपराधीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हैं।

तालिका

लोकसभा चुनाव	आपराधिक मामले घोषित करने वाले विजेता	गंभीर आपराधिक मामले घोषित करने वाले विजेता
2009	162 (30%)	76 (14%)
2014	185 (34%)	112 (21%)
2019	233 (43%)	159 (29%)
2024	251 (46%)	170 (31%)

स्रोत : एडीआर द्वारा निर्वाचन शपथपत्रों का विश्लेषण।

आंकड़ों से स्पष्ट है कि 2009 से 2024 के बीच आपराधिक मामले घोषित करने वाले विजेताओं का अनुपात 30% से बढ़कर 46% हो गया। गंभीर आपराधिक मामलों वाले विजेताओं का अनुपात भी 14% से बढ़कर 31% हुआ। इस वृद्धि को लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता के संदर्भ में गंभीरता से समझने की आवश्यकता है। 2024 में 543 निर्वाचित सांसदों में 251 ने आपराधिक मामले घोषित किए।[4]

राजनीति के अपराधीकरण के प्रमुख निर्धारक

1. चुनावी प्रतिस्पर्धा और जीतने की क्षमता

राजनीति के अपराधीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण चुनावी सफलता की संभावना भी है। राजनीतिक दलों के लिए चुनाव जीतना प्रमुख उद्देश्य होता है। इसी कारण वे ऐसे उम्मीदवारों को प्राथमिकता देते हैं जिनकी चुनाव जीतने की संभावना अधिक हो। 2024 के लोकसभा चुनावों के संदर्भ में एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) के विश्लेषण के अनुसार आपराधिक मामलों की घोषणा करने वाले उम्मीदवारों के चुनाव जीतने की संभावना लगभग 15.3 प्रतिशत थी जबकि बिना आपराधिक मामलों वाले उम्मीदवारों के लिए यह संभावना केवल 4.4 प्रतिशत थी।[5] यह स्थिति राजनीतिक दलों को आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को चुनावी दृष्टि से विजयी मानकर उन्हें टिकट देने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। परिणामस्वरूप राजनीति में अपराध और चुनावी सफलता के बीच एक ऐसा संबंध विकसित होता है, जो अपराधीकरण की प्रवृत्ति को और अधिक मजबूत करता है।

2. चुनाव में धनबल का बढ़ता प्रभाव

आधुनिक चुनावों में प्रचार, जनसंपर्क, संगठन और संसाधनों पर पर्याप्त धन खर्च होता है। चुनावी खर्च में निरंतर वृद्धि और निर्धारित व्यय-सीमा के प्रभावी पालन के अभाव ने राजनीतिज्ञों को अवैध कारोबारियों तस्करों और बड़े आर्थिक समूहों से धन लेने के लिए प्रेरित किया। इसके बदले चुनाव जीतने के बाद ऐसे हित समूहों को राजनीतिक संरक्षण मिलने की संभावना बढ़ी है जिससे धन, अपराध और राजनीति का गठजोड़ लोकतंत्र में अपराधीकरण का महत्वपूर्ण कारण बन सकता है।

3. समाज व राजनीति में बाहुबल का बढ़ता प्रभाव

लोकतंत्र में उम्मीदवार के समाजसेवा, जनविश्वास और राजनीतिक सिद्धांतों के आधार पर चुनाव जीतने की अपेक्षा की

जाती है परंतु व्यवहार में स्वार्थी, अवसरवादी एवं सिद्धांतविहीन व्यक्तियों के बढ़ते प्रभाव ने चुनाव जीतने के लिए अपराधी तत्वों का सहारा लिया जाने लगा। मतदाताओं को डराना-धमकाना, मतदान से रोकना, फर्जी मतदान कराना तथा हिंसा और भय का वातावरण बनाना चुनाव जीतने के साधन बनने लगे है। जिसके कारण अपराधी तत्व स्वयं राजनीति में प्रवेश कर जनप्रतिनिधि बनने लगे। इस प्रकार कुछ क्षेत्रों में भय, हिंसा अथवा दबाव के माध्यम से राजनीतिक प्रभाव स्थापित करने की प्रवृत्ति लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा को प्रभावित कर सकती है।

4. अपराधियों को राजनीतिक संरक्षण

जब राजनीतिक प्रभाव का उपयोग आपराधिक गतिविधियों को संरक्षण देने या कानून-प्रवर्तन संस्थाओं पर अनुचित प्रभाव डालने के लिए किया जाता है तब अपराध और राजनीति का संबंध अधिक गंभीर रूप ग्रहण कर लेता है।

राजनेताओं द्वारा अपने स्वार्थ के लिए अपराधी तत्वों को संरक्षण देना भी राजनीति के अपराधीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण है। राजनीतिक संरक्षण मिलने पर अपराधियों का सामाजिक प्रभाव बढ़ता है और वे अवैध वसूली, व्यापार तथा अन्य आपराधिक गतिविधियों में सक्रिय हो जाते हैं। कई बार पुलिस और प्रशासन पर राजनीतिक दबाव के कारण अपराधियों के विरुद्ध प्रभावी कार्रवाई नहीं हो पाती। इससे आम नागरिकों में कानून और प्रशासन के प्रति विश्वास कमजोर होता है तथा भय के कारण वे अपराधियों से टकराव से बचने लगते हैं। परिणामस्वरूप अपराधियों का प्रभाव सामाजिक और राजनीतिक दोनों स्तरों पर बढ़ता जाता है।

5. न्यायिक प्रक्रिया जटिल एवं विलंबकारी

आपराधिक मामलों के लंबे समय तक लंबित रहने से आरोपित व्यक्ति दोषसिद्धि होने तक राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रह सकता है। इसलिए शीघ्र एवं निष्पक्ष न्याय राजनीति के अपराधीकरण को नियंत्रित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

6. मूल्य संकट एवं भौतिकवाद

राजनीति के अपराधीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों में आया परिवर्तन भी है। बढ़ती भौतिकवादी प्रवृत्ति और विलासितापूर्ण जीवन की चाह ने अनेक क्षेत्रों में नैतिकता, ईमानदारी और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे मूल्यों को कमजोर किया है। राजनीति भी समाज का ही हिस्सा है इसलिए राजनीतिज्ञों और अपराधी तत्वों के व्यवहार में इन सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव दिखाई देता है। जब राजनीतिक सफलता और व्यक्तिगत लाभ को नैतिक सिद्धांतों से अधिक महत्व दिया जाता है तब धन, शक्ति और प्रभाव प्राप्त करने के लिए अनुचित साधनों का प्रयोग बढ़ सकता है। इस प्रकार मूल्य-संकट राजनीति में अपराधी प्रवृत्तियों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करता है।

7. सामाजिक एवं राजनीतिक समीकरण

जाति, समुदाय, स्थानीय पहचान और सामाजिक नेटवर्क भारतीय चुनावों को प्रभावित करते हैं। किसी उम्मीदवार का मजबूत सामाजिक आधार कई बार उसकी आपराधिक पृष्ठभूमि के प्रभाव को कम कर सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि अपराधीकरण केवल कानून का प्रश्न नहीं बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं से भी जुड़ा हुआ है।

8. राजनेता, नौकरशाह एवं अपराधियों का गठन जोड़

भारतीय राजव्यवस्था में राजनेता नौकरशाह एवं अपराधियों के गठबंधन को अक्टूबर, 1993 में बोहरा सीमित की रिपोर्ट में रेखांकित किया गया जिसका सारांश निम्नानुसार है[6]- अपराधी गिरोह राजनीतिक संरक्षण में फल-फूल रहे हैं। राजनीतिज्ञों

और अपराधियों का गठबंधन एक समानान्तर सरकार चला रहा है जिसने राज्य को अप्रासंगिक कर दिया है। रिपोर्ट के अनुसार, देश के प्रत्येक क्षेत्र, शहरों या गांवों तक में सभी जगह माफिया तत्वों ने अपने जाल को फैला रखा है।

लोकतांत्रिक शासन पर प्रभाव

राजनीति का अपराधीकरण लोकतंत्र के विभिन्न आयामों को प्रभावित करता है।

1. विधि के शासन पर प्रभाव : यदि राजनीतिक प्रभाव के कारण कानून का समान रूप से अनुपालन प्रभावित होता है तो नागरिकों का कानून की निष्पक्षता पर विश्वास कमजोर हो सकता है।

2. राजनीतिक संस्थाओं की विश्वसनीयता पर संकट : संसद और विधानसभाएँ कानून निर्माण एवं नीति निर्धारण की महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं। इनमें गंभीर आपराधिक मामलों वाले प्रतिनिधियों की बढ़ती उपस्थिति सार्वजनिक विश्वास को प्रभावित कर सकती है।

3. भ्रष्टाचार की संभावना : अपराधीकरण के कारण भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिला है। 2-जी स्पेक्ट्रम, कोयला ब्लॉक आवंटन, हवाला कांड, पशु चारा घोटाला, बोफोर्स दलाली कांड, एवं पेट्रोल पंप आवंटन आदि में खुले रूप में भ्रष्टाचार के आरोप लगाते है।[7] अपराध, धन और राजनीतिक संरक्षण का गठजोड़ भ्रष्टाचार तथा सार्वजनिक संसाधनों के दुरुपयोग के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर सकता है।

4. प्रशासनिक निष्पक्षता पर प्रभाव : यदि राजनीतिक शक्ति का उपयोग पुलिस और प्रशासन पर अनुचित दबाव के लिए किया जाता है तो शासन की निष्पक्षता और जवाबदेही कमजोर हो सकती है।

5. चुनावी समानता का ह्रास : धनबल और बाहुबल का प्रभाव सीमित संसाधनों वाले तथा स्वच्छ छवि के उम्मीदवारों के लिए चुनावी प्रतिस्पर्धा को कठिन बना सकता है। जाति बाहुबल धनबल के आधार पर जनप्रतिनिधि को खड़ा करना, चुनाव में पैसा, शराब, हथियार आतंक का उपयोग कर मतों को प्राप्त करना, किसी को मत ना डालने देना, मत पेटियों को छीनना, फर्जी मतदान करना लोकतंत्र की जड़ों में मठ्ठा डालना है।[8]

न्यायपालिका एवं निर्वाचन संस्थाओं की भूमिका

राजनीति के अपराधीकरण को नियंत्रित करने में न्यायपालिका और निर्वाचन आयोग दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मामलों में राजनीतिक दलों द्वारा उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि सार्वजनिक करने तथा चयन के कारणों को स्पष्ट करने पर बल दिया है।[9]

निर्वाचन आयोग द्वारा उम्मीदवारों की जानकारी सार्वजनिक करना मतदाताओं के अधिकार को मजबूत करता है। हालांकि केवल सूचना उपलब्ध करा देना पर्याप्त नहीं है। इस सूचना को सरल भाषा में मतदाताओं तक पहुँचाना और राजनीतिक दलों को अधिक जवाबदेह बनाना भी आवश्यक है।

साथ ही यह सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है कि किसी व्यक्ति को केवल आरोप के आधार पर दोषी नहीं माना जा सकता। अतः सुधारों का उद्देश्य गंभीर अपराधों में दोषसिद्ध व्यक्तियों को राजनीतिक व्यवस्था से दूर रखना तथा साथ ही निर्दोष व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करना होना चाहिए।

सुधारात्मक उपाय

भारत में चुनाव लड़ने की योग्यता एवं अयोग्यता के संबंध में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 महत्वपूर्ण कानून है। इसकी धारा 8 विभिन्न अपराधों में दोषसिद्धि के आधार पर अयोग्यता का प्रावधान करती है। अतः केवल आरोप लगना और न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध होना विधिक रूप से समान नहीं हैं।[10] निर्वाचन प्रक्रिया में उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि के प्रकटीकरण की व्यवस्था भी महत्वपूर्ण है। निर्वाचन आयोग के 'नो योर कैंडिडेट' (KYC) माध्यम से मतदाता उम्मीदवारों की

आपराधिक एवं अन्य घोषित पृष्ठभूमि से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।[11]

सर्वोच्च न्यायालय ने भी राजनीतिक दलों को आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों से संबंधित जानकारी सार्वजनिक करने तथा ऐसे उम्मीदवार को चयनित करने के कारणों को बताने पर बल दिया है। इससे मतदाताओं को सूचित निर्णय लेने में सहायता मिलती है। राजनीति के अपराधीकरण को नियंत्रित करने के लिए बहुआयामी सुधार आवश्यक हैं—

- गंभीर आपराधिक मामलों की समयबद्ध न्यायिक सुनवाई सुनिश्चित की जाए।
- राजनीतिक दलों में उम्मीदवार चयन की प्रक्रिया अधिक पारदर्शी बनाई जाए।
- आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों के चयन के कारण सार्वजनिक किए जाएँ।
- चुनावी वित्त व्यवस्था में पारदर्शिता बढ़ाई जाए।
- निर्वाचन व्यय संबंधी नियमों का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाए।
- मतदाताओं को उम्मीदवारों की पृष्ठभूमि की विश्वसनीय एवं सरल जानकारी उपलब्ध कराई जाए।
- पुलिस और प्रशासन को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त रखते हुए संस्थागत जवाबदेही सुनिश्चित की जाए।
- नागरिक समाज, विश्वविद्यालयों और मीडिया के माध्यम से मतदाता जागरूकता बढ़ाई जाए।

उपसंहार

भारतीय राजनीति का अपराधीकरण लोकतंत्र के सामने उपस्थित एक जटिल और बहुआयामी चुनौती है। यह केवल आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के राजनीति में प्रवेश का प्रश्न नहीं है, बल्कि चुनावी प्रतिस्पर्धा, धनबल, बाहुबल, राजनीतिक दलों की उम्मीदवार चयन प्रक्रिया, सामाजिक समीकरण, न्यायिक विलंब और प्रशासनिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली से जुड़ा हुआ है। 2009 से 2024 तक के लोकसभा चुनावों के आंकड़े इस प्रवृत्ति की गंभीरता को स्पष्ट करते हैं। आपराधिक मामले घोषित करने वाले विजेता उम्मीदवारों का अनुपात 30% से बढ़कर 46% हो गया, जबकि गंभीर आपराधिक मामलों वाले विजेताओं का अनुपात 14% से बढ़कर 31% हो गया।

हालाँकि इन आंकड़ों को दोषसिद्ध जनप्रतिनिधियों की संख्या के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा, क्योंकि आपराधिक मामला लंबित होना दोषसिद्धि के समान नहीं है। फिर भी निर्वाचित प्रतिनिधियों में आपराधिक मामलों की इतनी बड़ी उपस्थिति राजनीतिक दलों की उम्मीदवार चयन प्रक्रिया, लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता और राजनीतिक नैतिकता पर गंभीर प्रश्न अवश्य खड़े करती है।

अतः राजनीति के अपराधीकरण का समाधान केवल कठोर कानून बनाने से ही नहीं हो सकता है। इसके लिए राजनीतिक दलों की जवाबदेही, शीघ्र न्याय, चुनावी वित्त में पारदर्शिता, निष्पक्ष प्रशासन, प्रभावी निर्वाचन व्यवस्था और जागरूक मतदाता के समन्वित प्रयास से किया जा सकता है। भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक मजबूती तभी संभव है जब राजनीतिक सफलता का आधार धनबल और बाहुबल के स्थान पर नैतिकता, जनसेवा, संवैधानिक मूल्यों और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व बने।

संदर्भ सूची

1. एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR). लोकसभा चुनाव 2024 के नवनिर्वाचित सांसदों के आपराधिक एवं वित्तीय विवरण का विश्लेषण।
2. गोयल, नरेश, भारतीय लोकतंत्र : राजनीति का अपराधीकरण व भ्रष्टाचार, आविष्कार पब्लिशर्स जयपुर, 2013 पृ. 82-89
3. आढा, आर.एस., भारत में निर्वाचन व्यवस्था चुनौतियां एवं संभावनायें, एबीडी पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ. 193

4. https://adrindia.org/content/lok-sabha-elections-2024-46-ofnewlyelectedmpsfacecriminalcase-report
5. https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news-analysis/criminalisation-of-politics-in-india
6. कोठारी, रजनी, पॉलिटिक्स इन इंडिया, लिटिल ब्राउन एण्ड कम्पनी, बॉस्टन, 1970, पृ. 57-80
7. जौहरी, जे.सी., इंडियन पॉलिटी, लॉटस प्रेस, नई दिल्ली, 2004, पृ. 195-209
8. सिंह, निर्मल कुमार, अपराध और भ्रष्टाचार की राजनीति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 29-35, 96-111
9. भल्ला आर.पी., एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010, पृ. 88-101
10. भारत सरकार. जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 8. इंडिया कोड।
11. भारत निर्वाचन आयोग. नो योर कैंडिडेट (KYC)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

'बसंत' काव्य संग्रह में मुकेश कुमार 'ऋषिवर्मा' का भाषा-सौष्ठव

डॉ. राजपाल
हिंदी विभाग, गुरु गोरखनाथ जी
राजकीय महाविद्यालय हिसार, हरियाणा

सारांश

प्रस्तुत शोध पेपर 'बसंत' काव्य संग्रह की भाषा-शैली के सौंदर्य और शिल्प का विश्लेषण करता है। कवि मुकेश कुमार 'ऋषिवर्मा' ने सरल, सहज और जनमानस से जुड़ी भाषा का प्रयोग करते हुए भी काव्य के प्रमुख तत्वों—छंद, अलंकार, रस और शब्द-वैविध्य (तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी)—का कुशल संयोजन किया है। यह शोध पत्र कवि की भाषा में व्यंग्य, करुणा और आध्यात्मिक गूढ़ता के संतुलन को स्थापित करता है।

बीज शब्द : भाषा-सौष्ठव, छंद, अलंकार, रस, शब्दावली, शैली, भाषाविज्ञान

1. प्रस्तावना

भाषा-सौष्ठव काव्य का वह तत्व है जो कवि के भावों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है। मुकेश कुमार 'ऋषिवर्मा' की कविताएँ इस दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं, जिनमें ग्रामीण जीवन की मिट्टी की सोंधी महक और आधुनिक साहित्यिक तकनीक का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। इस शोध पत्र में भाषा विज्ञान के मानक सिद्धांतों के आधार पर कवि की भाषा-शैली का विश्लेषण किया गया है।

2. भाषा

भाषाविज्ञान के अनुसार, भाषा ध्वनियों, पदों और वाक्यों का समूह मात्र नहीं, बल्कि एक सजीव संप्रेषण माध्यम है। 'ऋषिवर्मा' की भाषा सरल, सहज और स्वाभाविक है। उन्होंने कहीं अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ (तत्सम) शब्दों का प्रयोग किया है, तो कहीं लोकभाषा (तद्भव-देशज) को अपनाया है। उनकी भाषा में 'खड़ी बोली' की प्रधानता है, लेकिन बृज और अवधी के प्रभाव के कारण मिठास भी घुली हुई है।

उदाहरण (कविता : "होली आई") :

"मधुमय, मधुऋतु आई
फाग की रंगीली बहार आई
हर चेहरे पर नव मुस्कान छाई
सुखदायी ऋतु आई रे। आई होली आई"

संदर्भ : यहाँ 'मधुमय', 'मधुऋतु', 'फाग', 'बहार' जैसे शब्द भाषा को सहज और सरस बनाते हैं। प्रश्नवाचक शैली (जैसे "हे प्रभु!") भाषा को गहन विचारोत्तेजक बना देती है।

3. शब्दावली : तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी :

भाषाविज्ञान में "शब्दावली" का अर्थ है—किसी विषय या क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का संग्रह या समूह। कवि की शब्दावली में विविधता है; उन्होंने गंभीर भावों के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग किया, ग्राम्य जीवन के चित्रण के लिए तद्भव, और आधुनिकता का बोध कराने के लिए विदेशी शब्दों का सहारा लिया।

तत्सम शब्द : "पतितपावनी मां यमुना को निर्मल पुनः बनाएं।" (कविता : "मां यमुना") – 'पतितपावनी', 'निर्मल' तत्सम हैं।

तद्भव शब्द : "मुझको अच्छा लगता है / सुबह-सुबह चिड़ियों का चहकना।" (कविता : "मुझको अच्छा लगता है") – 'चिड़िया', 'चहकना' तद्भव हैं।

देशज शब्द : "बहिना का मन हर्षाती राखी।" (कविता : "राखी") – 'बहिना' देशज शब्द है, जो लोक जीवन की मिठास को दर्शाता है।

विदेशी शब्द : "चिल्लरों में खरीद लो मुझे / मैं गरीवी में पला-बढ़ा साहित्यकार बना।" (कविता : "बिकाऊ साहित्यकार") – 'चिल्लर' (अरबी) विदेशी शब्द है, जो भौतिक समाज की सच्चाई को उजागर करता है।

संदर्भ : कवि की शब्द-चयन की कला उनकी भाषा-सौष्ठव को सर्वोच्च स्तर पर स्थापित करती है

4. छंद :

छंदशास्त्र काव्य में वर्णों या मात्राओं के नियमबद्ध प्रयोग का सिद्धांत है। कवि ने मुक्त छंद का अधिक प्रयोग किया है, जो भावनाओं के स्वतंत्र प्रवाह को सही रूप देता है। लेकिन सम-मात्रिक छंदों का भी सफल प्रयोग हुआ है।

मुक्त छंद का उदाहरण (कविता : "गिद्ध") :

"गिद्ध मस्त है,
गिद्ध व्यस्त है
नोच खा रहा है
और अपनी बिरादरी को भी
भरपेट खिला रहा है..
बाकी बचा खुचा
स्विस बैंक में जमा करा रहा है।

लयबद्ध छंद का उदाहरण (कविता : "सच्ची होली") :

"तन रेंगा बहुतों ने
मन जो रंगे
तब हो सच्ची होली।"

संदर्भ : लघु पंक्तियों और समान लय के कारण कविता गेय बन गई है, जबकि मुक्त छंद में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कवि के व्यंग्य को तीव्र करती है।

5. अलंकार :

अलंकार काव्य को चमत्कारिक बनाने वाला सौंदर्य तत्व है। कवि ने अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक और व्यंग्य जैसे

अलंकारों का सजीव प्रयोग किया है।

अनुप्रास (Alliteration) : "फर-फर फड़फड़ाकर उड़ना" (कविता : "मुझको अच्छा लगता है") – 'फ' वर्ण की पुनरावृत्ति से पक्षियों की उड़ान का चित्रण हुआ है।

उपमा (Simile) : "झर-झर झरती बूंदें मोती जैसी" (कविता : "सावन को बरसते देखा है") – बूंदों की तुलना मोतियों से की गई है।

रूपक (Metaphor) : "तम से घिरी हृदय कुटिया" (कविता : "हे दयावान!") – हृदय को 'कुटिया' रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मानवीकरण (Personification) : "प्रकृति दुल्हन बन आई" (कविता : "बसंत") – प्रकृति को दुल्हन के रूप में चित्रित किया गया है।

व्यंग्य (Satire) : "दुश्मन को बाप बना लेते हैं और दोस्त को धूल चटा देते हैं" (कविता : "दिमाग") – समाज के चालाक लोगों पर तीखा कटाक्ष है।

संदर्भ : अलंकारों का यह कुशल प्रयोग पाठक को भावनात्मक और बौद्धिक दोनों स्तरों पर प्रभावित करता है।

6. रस :

रस काव्य की आत्मा है। कवि ने शृंगार (प्रेम), करुणा (दुख), वीर (साहस) और हास्य/व्यंग्य (असुर) का सहज प्रवाह अपनी रचनाओं में दिया है।

शृंगार रस

"गोरी की आंखों में मदिरा का नशा
मृदुल-मनोरम अमृत छलकाती बातें"

(कविता : "सावन को बरसते देखा है") – सावन में नायिका के सौंदर्य का शृंगारिक वर्णन है।

करुणा रस

"दो जून की रोटी
यों ही नहीं मिलती
कोई कड़ी धूप में चलाए फावड़ा"

(कविता : "दो जून की रोटी") – मजदूर की दुर्दशा पर हृदय पिघल जाता है।

वीर रस

"राम उठो कृष्ण उठो
धनुष-चक्र चलाने का समय है
मानवता बचानी है
तो मर्यादा तोड़नी होगी"

(कविता : "राम उठो- कृष्ण उठो") – अधर्म के विरुद्ध विद्रोह का वीर भाव उभरता है।

संदर्भ : रसों का यह बहुरंगी प्रयोग कवि की सशक्त सर्जनात्मक क्षमता को प्रमाणित करता है।

7. शैली :

शैली कवि की विचार-अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग है, जो उसके व्यक्तित्व और दृष्टिकोण का द्योतक होती है। कवि की शैली मुख्यतः वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, आत्मपरक और दार्शनिक है।

वर्णनात्मक शैली :

"पूरब में लाल-सुनहरे सूरज का निकलना
नन्हें-नन्हें पौधों से ओस का झरना"

(कविता : "मुझको अच्छा लगता है") – प्रकृति का सजीव चित्रण है।

आत्मपरक/वेदना शैली :

"मैं जिसे हृदय में धड़काता हूं
वो कविता तुम्हें सुनाता हूं"

(कविता : "जो कभी न डूबे") – कवि अपने हृदय की वेदना को साझा कर रहा है।

दार्शनिक शैली :

"समय बड़ा बलवान
और धोखेबाज भी
यह किसी के लिए नहीं रुकता"

(कविता : "समय") – जीवन की सच्चाई को दार्शनिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

संवाद शैली :

"हे प्रभु! दया करो
मन मेरा भटका
इसको सुधारो"

(कविता : "हे प्रभु! दया करो") – कवि सीधे ईश्वर से संवाद कर रहा है।

संदर्भ : कवि की इस बहुआयामी शैली ने उन्हें आम पाठक और आलोचकों दोनों का प्रिय बनाया है

8. चित्रात्मकता और बिंब-विधान

'बसंत' की भाषा में चित्रात्मकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवि शब्दों के माध्यम से ऐसे दृश्य उपस्थित करता है जिन्हें पाठक मानसिक रूप से देख और अनुभव कर सकता है।

'मुझको अच्छा लगता है' में पक्षियों का चहकना, पत्तियों का हिलना, सूर्योदय और ओस की बूँदें प्रकृति का सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। 'सावन को बरसते देखा है' तथा 'सावन में' में वर्षा ऋतु के दृश्यात्मक बिंब मिलते हैं।

'भोर सुनहरी' में भोर केवल दिन के आरंभ का संकेत नहीं रहती, बल्कि आशा, नवीनता और संभावनाओं का बिंब बन जाती है। इस प्रकार दृश्यात्मकता भाषा को मूर्त और प्रभावशाली बनाती है।

9. प्रतीकात्मकता

'बसंत' के भाषा-सौंदर्य में प्रतीकात्मकता का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'बसंत' स्वयं नवजीवन, आशा, परिवर्तन और नई चेतना का प्रतीक बन जाता है। 'दीप' अंधकार के विरुद्ध प्रकाश, ज्ञान और आशा का प्रतीक है। 'सूरज' नई चेतना और भविष्य की संभावना का संकेत देता है।

'गिद्ध' शोषक और अवसरवादी मानसिकता का प्रतीकात्मक रूप ग्रहण करता है, जबकि 'नफरती नाग' घृणा फैलाने वाली प्रवृत्तियों को संकेतित करता है। इस प्रकार सामान्य शब्द व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ ग्रहण कर लेते हैं।

10. मुहावरे और लोकोक्तिपरक प्रयोग

'बसंत' की भाषा में मुहावरेदार और लोकोक्तिपरक अभिव्यक्तियाँ कविता को लोकजीवन के निकट ले जाती हैं। 'दो जून की रोटी', 'आस्तीन के सांप', 'अपने तो अपने होते हैं' आदि प्रयोग सामान्य जन के अनुभव-संसार से जुड़े हैं।

मुहावरे कम शब्दों में व्यापक अर्थ व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। इनके प्रयोग से भाषा में संक्षिप्तता, व्यंजना और प्रभावशीलता आती है

11.लोक और आधुनिकता का समन्वय

'बसंत' की भाषा में परंपरा और आधुनिकता का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। 'चिट्ठियों वाले दिन' में पत्रों से जुड़ी पुरानी आत्मीयता और आधुनिक डिजिटल संचार के बीच का अंतर अनुभव किया जा सकता है।

एक ओर कवि राम, कृष्ण, वेद, यमुना और दयानंद जैसे सांस्कृतिक संदर्भों को ग्रहण करता है, दूसरी ओर पर्यावरण, सामाजिक विषमता, आर्थिक व्यवस्था और आधुनिक जीवन की समस्याओं को भी अपनी कविता का विषय बनाता है।

इस प्रकार उसकी भाषा परंपरा से जुड़ते हुए आधुनिक संवेदना को अभिव्यक्त करती है।

12. जनपक्षधरता

कवि की भाषा का एक महत्त्वपूर्ण गुण उसकी जनपक्षधरता है। किसान, श्रमिक, गरीब, स्त्री, शोषित और सामान्य व्यक्ति उसके काव्य-संसार में उपस्थित हैं।

'कृषक दुर्दशा' किसान की पीड़ा को, 'दो जून की रोटी' श्रमिक जीवन के संघर्ष को तथा 'दहेज प्रथा' स्त्री की सामाजिक स्थिति को अभिव्यक्ति देती है। इन कविताओं में भाषा सामान्य जन के अनुभवों से जुड़ती है।

कठिन सामाजिक प्रश्नों को सहज भाषा में प्रस्तुत करना कवि की संप्रेषणीयता को प्रभावी बनाता है।

निष्कर्ष

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि डॉ. मुकेश कुमार 'ऋषिवर्मा' के काव्य-संग्रह 'बसंत' का भाषा-सौष्ठव उसकी सहजता, संप्रेषणीयता, भावानुकूलता, शब्द-वैविध्य और विषय-विस्तार में निहित है। कवि ने तत्सम, तद्भव, देशज, लोकप्रचलित तथा विदेशी शब्दावली का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है। उसकी भाषा में खड़ी बोली की प्रधानता के साथ लोकजीवन की सहजता और सांस्कृतिक चेतना का समावेश दिखाई देता है।

प्रकृति-काव्य में चित्रात्मकता, बिंब-विधान और मानवीकरण; सामाजिक कविताओं में व्यंग्य, मुहावरेदार अभिव्यक्ति और प्रहारात्मकता; आध्यात्मिक कविताओं में संबोधन, विनय और प्रार्थना; तथा दार्शनिक कविताओं में प्रश्नात्मकता, विरोधाभास और चिंतनपरकता भाषा को बहुआयामी बनाती है।

मुक्त छंद की स्वतंत्रता तथा लयबद्ध अभिव्यक्ति की गेयता दोनों का प्रयोग कवि ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप किया है। अनुप्रास, उपमा, रूपक और मानवीकरण जैसे अलंकार तथा श्रृंगार, करुण और वीर आदि रस कविता की अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाते हैं।

'बसंत' की भाषा में लोक और आधुनिकता, परंपरा और परिवर्तन, संवेदना और सामाजिक चेतना का समन्वय है। 'बसंत' स्वयं नवजीवन और नई चेतना का प्रतीक बन जाता है, जबकि 'दीप', 'सूरज', 'गिद्ध', 'नाग', 'तिरंगा' और 'यमुना' जैसे शब्द अपने सामान्य अर्थ से आगे बढ़कर व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ ग्रहण करते हैं।

निष्कर्षतः 'बसंत' की भाषा को सहज, संवेदनशील, संप्रेषणीय, विचारोत्तेजक, लोकनिकट और काव्यात्मक भाषा कहा जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि जटिल सामाजिक और मानवीय प्रश्नों को भी अपेक्षाकृत सरल भाषा में पाठक तक पहुँचाता है। यही भाषिक सहजता उसकी काव्यात्मक प्रभावशीलता का आधार बनती है और 'बसंत' को समकालीन हिंदी काव्य में अध्ययन योग्य कृति के रूप में प्रस्तुत करती है।

संदर्भ सूची

प्राथमिक स्रोत :

1. मुकेश कुमार 'ऋषिवर्मा', बसंत (काव्य संग्रह), काम्बोज बुक पब्लिशर, नई दिल्ली-110030।

उद्धृत कविताएँ एवं पृष्ठ-संदर्भ

1. 'मुझको अच्छा लगता है' – पृष्ठ 9
2. 'सावन को बरसते देखा है' – पृष्ठ 14
3. 'नफरती नाग' – पृष्ठ 15
4. 'गिद्ध' – पृष्ठ 19
5. 'दहेज प्रथा' – पृष्ठ 20
6. 'दीप जलाएं' – पृष्ठ 22
7. 'जल' – पृष्ठ 24
8. 'कृषक दुर्दशा' – पृष्ठ 28
9. 'होली आई' – पृष्ठ 30
10. 'सावन में' – पृष्ठ 33
11. 'मनुष्य और प्रकृति' – पृष्ठ 43
12. 'चिट्ठियों वाले दिन' – पृष्ठ 48
13. 'सच्ची होली' – पृष्ठ 50
14. 'शिक्षा' – पृष्ठ 53
15. 'दो जून की रोटी' – पृष्ठ 54
16. 'बाबाओं की फौज' – पृष्ठ 55
17. 'राखी' – पृष्ठ 57
18. 'हे प्रभु! दया करो' – पृष्ठ 61
19. 'हे दयावान!' – पृष्ठ 62
20. 'भोर सुनहरी' – पृष्ठ 65
21. 'राम उठो- कृष्ण उठो' – पृष्ठ 79
22. 'समय बड़ा बलवान' / 'समय' – पृष्ठ 78 80
23. 'ये सच है' – पृष्ठ 87
24. 'कैसा ये जीवन' – पृष्ठ 88
25. 'नई सदी का सूरज' – पृष्ठ 90
26. 'चौर्यकला' – पृष्ठ 91
27. 'माँ यमुना' – पृष्ठ 92
28. 'युद्ध' – पृष्ठ 94
29. 'साथ' – पृष्ठ 96
30. 'बिकाऊ साहित्यकार' – पृष्ठ 97
31. 'तिरंगा' – पृष्ठ 99
32. 'दिमाग' – पृष्ठ 100
33. 'सद्भाव' – पृष्ठ 104

34. 'बसंत' – पृष्ठ 105
35. 'दुःख' – पृष्ठ 106
36. 'करुणा का रस' – पृष्ठ 108
37. 'युद्ध की आग' – पृष्ठ 109
38. 'दयानंद मतवाला' – पृष्ठ 111

भाषा विज्ञान एवं साहित्यशास्त्र के ग्रंथ :

2. द्विवेदी, डॉ. कपिलदेव, भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 20वां संस्करण, 2025, पृष्ठ 512, ISBN: 978-93-5146-042-8
3. चौधरी, डॉ. तेजपाल, समाज भाषा विज्ञान की भूमिका, पंचशील प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2006, ISBN: 81-7056-112-4
4. सिंह, सुधा, भाषा विज्ञान के सिद्धांत, शिवांक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2024, पृष्ठ 147, ISBN: 978-93-87774-06-3
5. तिवारी, भोलानाथ, हिंदी व्याकरण रचना एवं छंदशास्त्र, दिल्ली सस्ता साहित्य निकेतन, 1 संस्करण, 2014, पृष्ठ 336, ISBN: 81-90224-55-7

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत में ग्रामीण विकास (2005-2026) : मनरेगा से वीबीजी रैम जी अधिनियम तक नीतिगत संक्रमण, उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ

सिंपल शर्मा
शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान संकाय
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
ईमेल : simpalsharma38444@gmail.com

सारांश

भारत की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, अतः राष्ट्रीय विकास की कोई भी परिकल्पना ग्रामीण भारत के रूपांतरण के बिना अधूरी है। प्रस्तुत शोध पत्र स्वतंत्रता के पश्चात अपनाई गई ग्रामीण विकास रणनीतियों का क्रमिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) से लेकर हाल ही में लागू हुए विकसित भारत – गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण) अधिनियम, 2025 तक की यात्रा सम्मिलित है। अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर रोजगार गारंटी, ग्रामीण आवास, सड़क संपर्क, आजीविका संवर्धन तथा पंचायती राज संस्थाओं के सशक्तीकरण—इन पाँच स्तंभों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करता है।

मुख्य शब्द : ग्रामीण विकास, वीबी—जी रैम जी अधिनियम, मनरेगा, पंचायती राज, आजीविका, बहुआयामी गरीबी, विकसित भारत /2047

1. प्रस्तावना

महात्मा गांधी का यह कथन कि भारत की आत्मा उसके गाँवों में बसती है, केवल भावनात्मक नहीं बल्कि सांख्यिकीय दृष्टि से भी सत्य है। जनगणना 2011 के अनुसार देश की लगभग 68.8 प्रतिशत जनसंख्या 6.4 लाख से अधिक गाँवों में रहती थी और यह अनुपात आज भी लगभग 65 प्रतिशत के आसपास है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था न केवल खाद्य सुरक्षा का आधार है, बल्कि श्रम आपूर्ति, घरेलू माँग तथा सामाजिक स्थिरता का भी प्रमुख स्रोत है।

ग्रामीण विकास का आशय केवल कृषि उत्पादन बढ़ाना नहीं है। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें आय-वृद्धि, रोजगार सृजन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य तक पहुँच, आवास, स्वच्छ जल, विद्युत, सड़क संपर्क, डिजिटल समावेशन, लैंगिक समानता तथा स्थानीय स्वशासन का सुदृढ़ीकरण सम्मिलित है। अमर्त्य सेन की "विकास स्वतंत्रता के रूप में" अवधारणा के अनुसार विकास का वास्तविक अर्थ उन अभावों को दूर करना है जो व्यक्ति की क्षमताओं को सीमित करते हैं; रॉबर्ट चेम्बर्स ने भी इसी दृष्टिकोण से कहा कि विकास में "अंतिम व्यक्ति को प्रथम" रखा जाना चाहिए।

वर्ष 2026 भारत के ग्रामीण विकास इतिहास में निर्णायक मोड़ है। दो दशकों तक ग्रामीण रोजगार गारंटी का पर्याय रहे मनरेगा का स्थान 1 जुलाई 2026 से एक नए विधिक ढाँचे ने ले लिया है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी संदर्भ में ग्रामीण विकास की समग्र समीक्षा प्रस्तुत करता है।

2. शोध के उद्देश्य

1. स्वतंत्रता के पश्चात ग्रामीण विकास की नीतिगत यात्रा का क्रमिक अध्ययन करना।
2. प्रमुख कार्यक्रमों की उपलब्धियों का उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर मूल्यांकन करना।
3. मनरेगा से वीबी–जी रैम जी अधिनियम, 2025 की ओर हुए संक्रमण का विश्लेषण करना।
4. विद्यमान संरचनात्मक एवं संस्थागत चुनौतियों की पहचान कर विकसित भारत /2047 की दृष्टि से व्यावहारिक नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

3. शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है तथा पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है–ग्रामीण विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट एवं आधिकारिक डैशबोर्ड, नीति आयोग के प्रकाशन, आर्थिक समीक्षा, एनएसएसओ के उपभोग व्यय सर्वेक्षण, पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च के विधेयक विश्लेषण तथा शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेख। आँकड़ों की व्याख्या तुलनात्मक एवं प्रवृत्ति-विश्लेषण पद्धति से की गई है। सीमाएँ : अध्ययन क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित नहीं है, अतः लाभार्थियों की गुणात्मक अनुभूति का प्रत्यक्ष आकलन सम्मिलित नहीं है; साथ ही योजनाओं के आँकड़े निरंतर अद्यतन होते रहते हैं, अतः यहाँ प्रस्तुत संख्याएँ सांकेतिक हैं।

4. साहित्य समीक्षा

ग्रामीण विकास पर उपलब्ध साहित्य को तीन धाराओं में बाँटा जा सकता है। प्रथम धारा गांधीवादी ग्राम स्वराज से जुड़ी है, जिसमें आत्मनिर्भर ग्राम गणराज्य, विकेंद्रित उत्पादन तथा कुटीर उद्योगों पर बल है। द्वितीय धारा संरचनात्मक अर्थशास्त्र की है, जिसमें आर्थर लुईस के द्वि-क्षेत्रीय मॉडल के अनुरूप कृषि से गैर-कृषि क्षेत्र की ओर श्रम-स्थानांतरण को विकास का केंद्रीय तत्व माना गया। तृतीय धारा क्षमता-आधारित दृष्टिकोण की है, जिसका प्रतिनिधित्व अमर्त्य सेन तथा महबूब उल हक करते हैं और जिसने मानव विकास सूचकांक तथा बहुआयामी गरीबी सूचकांक जैसे मापकों को जन्म दिया।

भारतीय अनुभवजन्य अध्ययनों ने मनरेगा के दो प्रमुख प्रभाव रेखांकित किए हैं–ग्रामीण मजदूरी दरों में वृद्धि तथा श्रमिकों की सौदेबाजी शक्ति का सुदृढ़ीकरण, और संकटकालीन प्रवास में कमी के साथ महिलाओं की श्रम-शक्ति भागीदारी में वृद्धि। दूसरी ओर आलोचनात्मक साहित्य ने मजदूरी भुगतान में विलंब, सृजित परिसंपत्तियों की निम्न गुणवत्ता तथा सामाजिक अंकेक्षण की शिथिलता को प्रमुख कमजोरियों के रूप में चिह्नित किया है।

5. ग्रामीण विकास की अवधारणा एवं आयाम

विश्व बैंक की परिभाषा के अनुसार ग्रामीण विकास एक ऐसी रणनीति है जो ग्रामीण निर्धन वर्ग–लघु एवं सीमांत कृषक, भूमिहीन श्रमिक तथा ग्रामीण दस्तकार–के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु बनाई जाती है। इसके प्रमुख आयाम हैं : आर्थिक (कृषि उत्पादकता, गैर-कृषि उद्यम, ऋण उपलब्धता, बाजार संपर्क, आय विविधीकरण), सामाजिक (शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता, लैंगिक समानता), अवसंरचनात्मक (सड़क, विद्युत, पेयजल, आवास, सिंचाई, डिजिटल संपर्क), संस्थागत (पंचायती राज संस्थाएँ, स्वयं सहायता समूह, किसान उत्पादक संगठन) तथा पर्यावरणीय (जल संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य, वनाच्छादन, जलवायु अनुकूलन)।

6. नीतिगत यात्रा : 1952 से 2026 तक

तालिका 1. भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का क्रमिक विकास

कालखंड	प्रमुख पहल	केंद्रीय दृष्टिकोण
1952–1960	सामुदायिक विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय प्रसार सेवा	सामुदायिक सहभागिता
1960–1970	हरित क्रांति, गहन कृषि जिला कार्यक्रम	कृषि उत्पादकता एवं खाद्य आत्मनिर्भरता
1970–1990	लघु कृषक विकास एजेंसी, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम	लक्षित समूह, स्वरोजगार
1992–2000	73वाँ संविधान संशोधन, स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना	लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण
2005–2015	मनरेगा, पीएमजीएसवाई, एनआरएलएम	अधिकार-आधारित ढाँचा
2015–2024	पीएमएवाई–जी, स्वच्छ भारत, जल जीवन मिशन	संतृप्ति उपागम
2025–2026	वीबी–जी रैम जी अधिनियम, 2025	रोजगार गारंटी के साथ टिकाऊ परिसंपत्ति

6.1 अधिकार-आधारित चरण

वर्ष 2005 में मनरेगा के पारित होने के साथ ग्रामीण विकास का स्वरूप मौलिक रूप से बदल गया। पहली बार रोजगार को विधिक अधिकार की मान्यता मिली, जिसके अंतर्गत प्रत्येक ग्रामीण परिवार के वयस्क सदस्य 100 दिनों के अकुशल श्रम कार्य के हकदार बने। इसकी विशेषताएँ थीं–माँग-आधारित रोजगार, कार्य न मिलने पर बेरोजगारी भत्ता, कम से कम एक-तिहाई भागीदारी महिलाओं के लिए, तथा ग्राम सभा द्वारा सामाजिक अंकेक्षण।

6.2 संतृप्ति चरण

2015 के पश्चात नीतिगत जोर "लक्षित लाभार्थी" से हटकर "शत-प्रतिशत संतृप्ति" की ओर मुड़ा। पीएमएवाई–ग्रामीण, स्वच्छ भारत मिशन, उज्ज्वला, सौभाग्य तथा जल जीवन मिशन ने पक्का मकान, शौचालय, रसोई गैस, विद्युत कनेक्शन एवं नल से जल को सार्वभौमिक अधिकार के रूप में प्रस्तुत किया। 6.3 संक्रमण चरणरू वीबी–जी रैम जी अधिनियम, 2025

16 दिसंबर 2025 को लोकसभा में प्रस्तुत तथा 18 दिसंबर 2025 को पारित यह अधिनियम 1 जुलाई 2026 से प्रभावी हुआ, जिसके साथ मनरेगा, 2005 निरसित हो गया। इसके प्रमुख प्रावधान हैं :

गारंटी अवधि : प्रति परिवार प्रति वित्त वर्ष 100 के स्थान पर 125 दिनों का रोजगार।

चार विषयगत क्षेत्र : जल सुरक्षा, आधारभूत ग्रामीण अवसंरचना, आजीविका संबंधी अवसंरचना तथा चरम मौसमी घटनाओं के शमन हेतु कार्य।

नियोजन ढाँचा : ग्राम पंचायतों द्वारा "विकसित ग्राम पंचायत योजना", जिसे पीएम गति शक्ति मास्टर प्लान से जोड़ा जाएगा।

प्रौद्योगिकी आधारित शासन : चेहरा प्रमाणीकरण, ई-केवाईसी एवं एआई-आधारित निगरानी; साप्ताहिक मजदूरी भुगतान तथा विलंब पर दंड।

मजदूरी : 30 जून 2026 की अधिसूचना के अनुसार राष्ट्रीय औसत दैनिक मजदूरी रु. 298.8 से बढ़ाकर रु. 327.4 तथा रु. 300 प्रतिदिन का अंतरिम न्यूनतम आधार।

आलोचकों ने चार प्रमुख आपत्तियाँ उठाई हैं : संसदीय समिति द्वारा विस्तृत जाँच का अभाव, माँग-आधारित अधिकार के स्थान पर आवंटन-आधारित ढाँचे की ओर झुकाव, केंद्र-राज्य वित्तीय अनुपात में परिवर्तन से संघवाद पर प्रभाव, तथा डिजिटल प्रणालियों पर अत्यधिक निर्भरता से वंचित श्रमिकों के बहिष्कार की आशंका।

7. उपलब्धियों का मूल्यांकन

तालिका 2. प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सांकेतिक प्रगति

कार्यक्रम	उद्देश्य	प्रगति (सांकेतिक)
पीएमएवाई–ग्रामीण	कच्चे मकानों वाले परिवारों को पक्का आवास	चरण I+II में लगभग 2.6 करोड़ आवास पूर्ण; कुल लक्ष्य लगभग 4.95 करोड़
वीबी–जी रैम जी / मनरेगा	मजदूरी रोजगार की विधिक गारंटी	125 दिन की नई गारंटी; औसत दैनिक मजदूरी रु. 327.4
डीएवाई–एन आरएलएम	स्वयं सहायता समूहों से आजीविका संवर्धन	रु. 11 लाख करोड़ से अधिक ऋण; 98% से अधिक पुनर्भुगतान
पीएमजीएसवाई	बसावटों को बारहमासी सड़क संपर्क	लाखों किलोमीटर सड़कें; चतुर्थ चरण जारी
लखपति दीदी	समूह की महिलाओं की वार्षिक आय रु. 1 लाख से अधिक	करोड़ों महिलाओं को कौशल एवं वित्त से जोड़ने का अभियान

बजटीय प्रतिबद्धता के स्तर पर भी ग्रामीण विकास को उच्च प्राथमिकता प्राप्त है। केंद्रीय बजट 2025–26 में ग्रामीण विकास मंत्रालय को लगभग रु. 1,90,406 करोड़ आवंटित हुए, जिसमें अकेले रोजगार गारंटी कार्यक्रम का हिस्सा लगभग 46 प्रतिशत तथा ग्रामीण आवास का लगभग 29 प्रतिशत रहा–अर्थात् दो योजनाओं ने विभागीय आवंटन का लगभग तीन-चौथाई भाग ग्रहण किया। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है : क्या मजदूरी रोजगार एवं आवास पर केंद्रित यह व्यय संरचना कौशल विकास, ग्रामीण उद्यमिता तथा गैर-कृषि रोजगार जैसे उत्पादकता-वर्धक क्षेत्रों को पर्याप्त संसाधन दे पाती है?

गरीबी के मोर्चे पर प्रगति उल्लेखनीय रही है। बहुआयामी गरीबी सूचकांक के अनुमानों के अनुसार विगत एक दशक में लगभग 25 करोड़ व्यक्ति बहुआयामी गरीबी से बाहर निकले, और इस गिरावट में ग्रामीण क्षेत्रों का योगदान सर्वाधिक रहा। उपभोग व्यय सर्वेक्षणों से यह भी संकेत मिलता है कि ग्रामीण एवं शहरी उपभोग का अंतर धीरे-धीरे कम हो रहा है।

कृषि पर असंगत निर्भरता : ग्रामीण कार्यबल का बड़ा भाग आज भी कृषि पर निर्भर है, जबकि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान उसकी तुलना में बहुत कम है। जोत का औसत आकार निरंतर घट रहा है, जिससे कृषि आर्थिक रूप से अव्यवहार्य होती जा रही है और ग्रामीण प्रति व्यक्ति आय संरचनात्मक रूप से सीमित रहती है।

गैर-कृषि रोजगार का अभाव : ग्रामीण क्षेत्रों में विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्र के उद्यम अपर्याप्त हैं; परिणामस्वरूप युवाओं के पास या तो निम्न-उत्पादकता वाली कृषि मजदूरी है या शहरों की ओर संकटकालीन प्रवास।

मानव पूँजी की कमजोरी : विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है, किंतु अधिगम परिणाम चिंताजनक हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में विशेषज्ञ चिकित्सकों की कमी, उपकेंद्रों की अपर्याप्तता तथा उच्च आउट-ऑफ-पॉकेट व्यय ग्रामीण परिवारों को ऋणग्रस्तता की ओर धकेलते हैं।

विकेंद्रीकरण की अपूर्णता : 73वें संविधान संशोधन के तीन दशक बाद भी अधिकांश राज्यों में पंचायतों को ग्यारहवीं अनुसूची के सभी 29 विषय हस्तांतरित नहीं हुए। "तीन एफ"–कार्य, वित्त एवं कार्मिक–का हस्तांतरण अधूरा है और पंचायतों की अपनी राजस्व क्षमता अत्यंत सीमित है।

जलवायु जोखिम एवं क्रियान्वयन : अनियमित मानसून, सूखा, बाढ़ तथा भू-जल स्तर में गिरावट ग्रामीण आजीविका को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं; नए अधिनियम में जलवायु शमन कार्यों का समावेश स्वागतयोग्य कदम है।

9. निष्कर्ष एवं सुझाव

अध्ययन से स्पष्ट है कि विगत दो दशकों में ग्रामीण विकास की दिशा में अभूतपूर्व प्रगति हुई है—विशेषतः आवास, सड़क, स्वच्छता, विद्युतीकरण, पेयजल तथा महिला स्वयं सहायता समूहों के क्षेत्र में। तथापि यह प्रगति मुख्यतः अवसंरचनात्मक एवं उपभोग-आधारित रही है; उत्पादकता एवं आय-आधारित रूपांतरण अभी अधूरा है। वीबी—जी रैम जी अधिनियम, 2025 इस दिशा में महत्वाकांक्षी प्रयास है।

नीतिगत सुझाव

1. माँग-आधारित अधिकार की रक्षा : नियमों में सुनिश्चित हो कि बजटीय आवंटन की सीमा रोजगार की माँग को अस्वीकार करने का आधार न बने।

2. गैर-कृषि अर्थव्यवस्था का विस्तार : कृषि-प्रसंस्करण इकाइयों, किसान उत्पादक संगठनों तथा ग्रामीण एमएसएमई को प्रोत्साहन देकर स्थानीय स्तर पर मूल्य-संवर्धन किया जाए।

3. कौशल—बाजार संबद्धता : जिला स्तर पर कौशल माँग का मानचित्रण कर प्रशिक्षण कार्यक्रमों को वास्तविक रोजगार अवसरों से जोड़ा जाए।

4. वास्तविक वित्तीय विकेंद्रीकरण : पंचायतों को अनाबद्ध अनुदान बढ़ाए जाएँ तथा "तीन एफ" का हस्तांतरण पूर्ण किया जाए।

5. डिजिटल समावेशन की सुरक्षा : चेहरा प्रमाणीकरण अथवा ई-केवाईसी में विफलता किसी श्रमिक के बहिष्कार का कारण न बने; वैकल्पिक सत्यापन व्यवस्था रखी जाए।

6. परिसंपत्ति गुणवत्ता एवं जलवायु अनुकूल नियोजन : सृजित परिसंपत्तियों की विकसित भारत /2047 का स्वप्न तभी साकार होगा जब विकास की धारा गाँव की अंतिम पंक्ति तक पहुँचे।

संदर्भ सूची

गांधी, एम. के. (1962). ग्राम स्वराज. नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

ग्रामीण विकास मंत्रालय. (2026). मजदूरी दर संबंधी अधिसूचना, 30 जून 2026. भारत सरकार.

ग्रामीण विकास मंत्रालय. (वर्ष अनुपलब्ध). वार्षिक रिपोर्ट. भारत सरकार.

चैंबर्स, आर. (1983). रूरल डेवलपमेंट : पुटिंग द लास्ट फर्स्ट. लॉन्गमैन.

दीनदयाल अंत्योदय योजना – राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन. (वर्ष अनुपलब्ध). प्रगति रिपोर्ट. ग्रामीण विकास मंत्रालय.

नीति आयोग. (वर्ष अनुपलब्ध). राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक : एक प्रगति समीक्षा. भारत सरकार.

पंचायती राज मंत्रालय. (वर्ष अनुपलब्ध). पंचायत उन्नति सूचकांक रिपोर्ट. भारत सरकार.

पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च. (2025). अनुदानों की माँग 2025—26 का विश्लेषण : ग्रामीण विकास मंत्रालय.

पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च. (2025). विकसित भारत – गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण) विधेयक, 2025 का विश्लेषण.

भारत की जनगणना. (2011). ग्रामीण—नगरीय जनसंख्या वितरण. महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय.

भारत सरकार. (2025). विकसित भारत – गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण) अधिनियम, 2025.

वित्त मंत्रालय. (वर्ष अनुपलब्ध). आर्थिक समीक्षा. भारत सरकार.

विश्व बैंक. (1975). रूरल डेवलपमेंट : सेक्टर पॉलिसी पेपर. विश्व बैंक.

सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय. (वर्ष अनुपलब्ध). घरेलू उपभोग व्यय सर्वेक्षण. भारत सरकार.

सेन, ए. (1999). डेवलपमेंट ऐज़ फ्रीडम. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बिलासपुर जिले के नवतेज प्रकाश पुंज और उनका अप्रतिम योगदान (द्वारिका प्रसाद तिवारी एवं लोचन प्रसाद पांडे के संदर्भ में)

डॉ. अतुल कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग
गुरूघासीदास वि.वि.बिलासपुर (छ.ग.)
email : atulkumarmishra79@gmail.com

सारांश

छत्तीसगढ़ में अनेक साहित्यकारों ने राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य अपने लेखों, कविताओं और रचनाओं द्वारा जनमानस पर, राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति समर्पण, स्वराज प्राप्ति और ब्रिटिश दासता से मुक्त होने का भाव पैदा किया। बिलासपुर अंचल ने भी राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई परन्तु जानकारी के अभाव के कारण, इस अंचल के लोग अपनी प्राचीन व गर्व से हृदय को उत्साह से भर देने वाली ऐतिहासिक विरासत से अनभिज्ञ ही रहे। इनमें मुख्य रूप से माधवराव सप्रे, पं. राम दयाल तिवारी, यदुनंदन श्रीवास्तव, सुंदरलाल त्रिपाठी, पं. लोचन प्रसाद पांडे, कुंज बिहारी चौबे, बैरिस्टर छेदीलाल आदि हैं। उक्त लेखकों ने विषम परिस्थितियों में भी अपने पत्रों के लेखन व संपादन का कार्य बंद नही किया। बिलासपुर से पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी ने गाँधी गीत, सुराज गीत, कांग्रेस विजय, आदि पत्रों में अपने विचार रखे, वहीं पं. लोचन प्रसाद पांडे ने छत्तीसगढ़ गौरव प्रचारक मंडली नामक संस्था की स्थापना कर, राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया। कुछ ऐसी रचनाऐं भी रहीं हैं जो, स्वतंत्रता पूर्व प्रकाशित नहीं हो सकी, किन्तु स्वतंत्रता पश्चात् उनके संपादन से स्पष्ट होता है कि उन रचनाकारों में देश प्रेम की भावना भरी हुई थी।

बीज शब्द : द्वारिका प्रसाद तिवारी, लोचन प्रसाद पांडे, माधवराव सप्रे, बिलासपुर अंचल आदि।

1. शोध का महत्त्व

द्वारिका प्रसाद तिवारी एवं लोचन प्रसाद पांडे, हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के महत्वपूर्ण व्यक्तित्व थे। उनके जीवन एवं कृतित्व का अध्ययन हिंदी नवजागरण, राष्ट्रीय चेतना तथा छत्तीसगढ़ में साहित्य एवं हिंदी पत्रकारिता के विकास को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह शोध उनके बहुआयामी योगदान को स्पष्ट करने का प्रयास है।

2. शोध का उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य द्वारिका प्रसाद तिवारी एवं लोचन प्रसाद पांडे के जीवन, व्यक्तित्व, साहित्यिक योगदान एवं पत्रकारिता का समग्र अध्ययन करना तथा हिंदी साहित्य और छत्तीसगढ़ के सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण में उनके योगदान को रेखांकित करना है।

3. शोध-प्रविधि

इस शोध में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, शोध-ग्रंथों एवं उपलब्ध साहित्य के आधार पर तथ्यों का अध्ययन किया जाएगा।

4. शोध-परिकल्पना

द्वारिका प्रसाद तिवारी एवं लोचन प्रसाद पांडे का साहित्यिक एवं पत्रकारिता संबंधी योगदान हिंदी भाषा के विकास, सामाजिक जागरण और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण रहा। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था और हिंदी साहित्य एवं पत्रकारिता के इतिहास में उनका विशिष्ट स्थान है।

द्वारिका प्रसाद तिवारी 'विप्र'

इनका जन्म 6 जुलाई वर्ष 1908 को बिलासपुर में हुआ था। वर्तमान छत्तीसगढ़ के विकास में इनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्होंने वर्ष 1922 से छत्तीसगढ़ी और हिन्दी में लेखन कार्य प्रारंभ किया तथा इस क्षेत्र में अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। वे एक श्रेष्ठ कवि, निबंधकार तथा एकाँकी कार थे।

"छत्तीसगढ़ी काव्य गगन में शुक्र-नक्षत्र की भांति पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी विप्र का आविर्भाव बिलासपुर में 6 जुलाई, 1908 में हुआ था। ताम्रवर्णी देह, लम्बा कद, उन्नत ललाट, हर क्षण किसी गहन अनुभूति में डूबी-डूबी पारदर्शी सामान्य आंखे, स्वस्थ शरीर, साधारण वेश-भूषा, भव्य सुलोभन और आकर्षित करने में सक्षम था, विप्र जी का रूप। उनके व्यक्तिगत में विशेष आकर्षण था। वाणी में कबीर की तरह अक्खड़ता थी। जिसके फलस्वरूप अनजाने में ही श्रद्धा उमड़ पड़ती थी। विप्र जी के पिता श्री देवी के उपासक और भागवती पंडित थे। पंडिताई ही उनके जीवकोपार्जन का साधन था। विप्र जी अपने अग्रज पं. गंगा प्रसाद तिवारी से प्रेरणा पाकर काव्यसाधना की ओर उन्मुख हुये। उनकी पहली लंबी रचना शिव स्तुति थी -

नमो सृष्टि कर्ता-नमो दुःख हर्त्ता, त्रिलोकी पुरारी भयँ ताप हारी।
त्रिनेत्रा विशाला-गले मुंड माला, जटाजूट धारी बिनै है हमारी।
अनंता विशाला-सुकैलाश वासी, महारूद्र शंभू महादेव स्वामी।
विधि है न पूजा, न है विप्र ज्ञानी, नमामि नमामि नमामि नमामि।"[01]

बाल्यकाल से ही विप्र जी का छत्तीसगढ़ और छत्तीसगढ़ी से विशेष लगाव था तथा अपनी मातृभूमि की सेवा के प्रति अत्यंत ही समर्पित थे। उनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम तथा छत्तीसगढ़ के प्रति अपार श्रद्धा की झलक दिखती है।" इन्होंने सोलह वर्ष की उम्र से छत्तीसगढ़ी में काव्य रचना आरंभ कर दी थी।"[02]

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार - "छत्तीसगढ़ी पद्य रचना के तो वे प्रवर्तकों में से हैं। क्योंकि उनके पहले जो रचनाएं होती रहीं, वे प्रायः शौकिया होती रहीं न, कि तरुणों को सुसंगठित रूप से इस दिषा में रचना करने हेतु प्रेरित करने के लिए।"[03]

वर्ष 1934 में इनकी पहली पुस्तक 'कुछु काही' प्रकाशित हुई थी। 'सुराज गीत' शीर्षक से प्रकाशित इनका काव्य संग्रह वर्ष 1958 में प्रकाशित हुआ था जिससे इन्हें विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इनके अन्य काव्य संग्रह में गांधी जीत, योजना गीत, फागुन गीत, डबकत गीत और धमनी हाट आदि प्रमुख हैं।

"उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता, देशप्रेम और गांधीवाद के प्रति सघन रुचि और रुझान दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति चित्रण के साथ श्रृंगार और प्रेम भी उनकी कविताओं में हमें मिलता है। आंचलिकता का अर्थ पुरातन होना नहीं है, यह उन्होंने साबित किया था। उनकी कविताओं और साहित्य में हमें आधुनिकता तथा व्यंग्य के भी दर्शन होते हैं। राजनीति, समाज, जन-जीवन, अध्यात्म और दर्शन पर भी उन्होंने अनेक रचनाएं छत्तीसगढ़ी साहित्य को दीं। छत्तीसगढ़ से उनका लगाव बहुत ही सघन था और अपनी अनेक रचनाओं में छत्तीसगढ़ के जन-जीवन का व्यापक वर्णन उन्होंने किया है।"[04]

छत्तीसगढ़ प्रांत एक कृषि प्रधान प्रांत है। यहाँ के समाज का मुख्य अंग है यहाँ का किसान। विप्रजी किसानों को सावधान

करते हुए कहते हैं कि -

"ऐ कृषक जाग गफलत में क्यों सोता है। सोते-सोते तन मन धन सब खोता है।।
तुम महाजनों के चकर में मत आवो। करजे में खेती बाड़ी मत बिकवावो।।
वे सब कुछ तेरा छल करके लूटेंगे। फलतः संबंध सभी उनके टूटेंगे।।
अब भी विराट भारत में क्या होता है।। इन महाजनों ने तुम सबको लूटा है।
अपने हाथों लिखते परचा झूठा है।। बस सूद सूद में सभी वसूली काटें।
आखिर नीलाम करें घर खेत कपाटें।। फिर हो हताश आंसू से मुंह धोता है।।"[05]

पृथक राज्य के रूप में छत्तीसगढ़ की स्थापना में द्वारिका प्रसाद जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्होंने अपनी साहित्यिक रचनाओं तथा जन आंदोलन के माध्यम से नये राज्य की संकल्पना को साकार करने में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। विप्र जी छत्तीसगढ़ी साहित्य के विकास तथा जन-जन तक इसके पहुंच को सुनिश्चित जी का करने हेतु सदैव ही प्रयत्नशील रहे थे। द्वारिका प्रसाद जी का सम्पूर्ण जीवन रचनात्मक आंदोलनों तथा छत्तीसगढ़ की सेवा के प्रति ही समर्पित रहा। छत्तीसगढ़ी भाषा और साहित्य के विकास में उनके किये गये कार्यों से पूरे देश में छत्तीसगढ़ी का सम्मान बढ़ा है। द्वारिका प्रसाद तिवारी जी का देहावसान 2 जनवरी वर्ष 1982 को हुआ था।

ब्रजेष श्रीवास्तव ने कहा है कि "विप्र जी ने राष्ट्रीय भाव से भरे हुए कई सुन्दर गीत लिखे हैं, जिनमें करमा, गम्मत, होली आदि त्यौहारों का सहारा लिया गया है। विप्र जी ने राष्ट्रीय भाव के अतिरिक्त श्रृंगार एवं जीवन-दर्षन से जुड़ी हुई विविध-भाव भूमि पर अनेक कविताएं लिखीं।"[06]

"उनकी कविताओं में सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र का समावेश है। उन्होंने जन-जीवन की हर भावना और उनके जीवन के प्रयोजनों-उद्देश्यों को समझा था तथा उन्हें अभिव्यक्त करने में उन्हें व्यापक सफलता मिली थी। विप्र का जीवन स्वतंत्रता संग्राम के उतार-चढ़ावों के दौर से गुजरा था। जहां उन्होंने गुलामी के शोषण और संघर्ष को देखा था, वहीं स्वतंत्रता के बाद आयी निराशा, मूल्यों में गिरावट और लोगों की बदहाली को भी अपनी कलम के माध्यम से वाणी दी थी।"[07]

पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय

पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय का जन्म सन् 1886 में बालपुर ग्राम, जिला बिलासपुर में हुआ था। बाल्यकाल से ही आपने संस्कृत सहित अनेक अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इंटरमीडिएट तक शिक्षा प्राप्त करते करते ही आपकी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ सजग रहीं।

"उनके पिताजी का नाम पं. चिंतामणि तथा माताजी का नाम देवहुति देवी था। वे पद्मश्री पं. मुकुटधर पाण्डेय के अग्रज तथा पुरुषोत्तम पाण्डेय के अनुज थे। लोचन प्रसाद की प्रारंभिक शिक्षा गृहग्राम बालपुर में ही संपन्न हुई। उन्होंने सन् 1898 ई. में प्रायमरी और सन् 1902 ई. में सम्बलपुर हाईस्कूल से मिडिल स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी से पास की थी। सन् 1905 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रवेषिका पास कर वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने सेंट्रल हिन्दू कॉलेज, काशी में भर्ती हुए। यहीं उनका परिचय एनीबीसेंट तथा अयोध्या सिंह उपाध्याय से हुआ। वे अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाए क्योंकि उनकी दादी उनको अकेले नहीं छोड़ना चाहती थीं। वे घर लौट आए और घर में ही ऐसी शिक्षा प्राप्त की कि वह शायद ही किसी विद्यालय से प्राप्त कर पाते। उन्होंने न केवल हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उड़िया, उर्दू, बांग्ला और छत्तीसगढ़ी भाषा सीख ली बल्कि इन सभी भाषाओं पर अधिकारपूर्वक लिखने भी लगे।"[08]

द्विवेदी युग का हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक विषिश्ट स्थान है। इस युग में भाषा और साहित्य दोनों ही माध्यमों का प्रयोग कर जनमानस के अंर्तमन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में लोचन प्रसाद पांडेय का योगदान उल्लेखनीय है।

पांडेय जी पर मां सरस्वती की अपार कृपा थी। आपको लेखन में गद्य और पद्य दोनों पर ही समान अधिकार प्राप्त था। विद्याध्ययन के दौरान ही आपके लेख साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित होने लगे थे। "उनका पहला काव्यसंग्रह कविता कुसुममाला

सन् 1909 में प्रकाशित हुआ था। सन् 1920 तक उनकी दस काव्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं जिनमें माधव मंजरी, मेवाड़ गाथा नीति कविता उल्लेखनीय है। उन्होंने गद्य के क्षेत्र में भी अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया था। पांडेय जी ने 100 से अधिक निबंध लिखे थे और उन्हें उच्च कोटि का निबंधकार माना जाता था। उन्होंने ओड़िया भाषा और अंग्रेजी में भी ग्रंथों की रचना की थी। उन्होंने गीता भर्तृहरि नीति शतक और रघुवंश जैसे श्रेष्ठ संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया था।"[09]

आपके द्वारा लिखा गया वंदना गीत छत्तीसगढ़ के प्रति आपके मनोभावों को अभिव्यक्त करता है–

"जयति जय-जय छत्तीसगढ़ देस, जन्म भूमि सुंदर सुख खान
जहाँ के तिल, सन हर्रा लाख, गेहूं अऊ नाना विधि के धान।
बनिया बैपारी के आधार, बढ़ाथै देस राज के मान
जहाँ के हम सब जन संतान, सत्तधारी अन सरल किसान
हम्मनला पा के होइस धन, हमारा प्यारा हिन्दूस्तान।"[10]

"पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय न केवल एक अच्छे साहित्यकार थे वरन् उच्च कोटि के पुरातत्ववेत्ता भी थे। छत्तीसगढ़ की प्राचीन कला, साहित्य और संस्कृति के उत्थान के लिए उन्होंने सन् 1940 ई. में महाकौशल हिस्टोरिकल सोसायटी की स्थापना की थी। वे इसके चालीस वर्षों तक मंत्री रह कर इतिहास तथा पुरातत्व की सेवा करते रहे। पुराणकालीन अपीलक का सिक्का, महाभारत में उल्लेखित ऋषभ तीर्थ की खोज, सिंघनपुर, विक्रमखोल, कबरा पहाड़ के चार हजार वर्ष पुराने आदिमानव द्वारा निर्मित शैलचित्रों को अंधकार के समुद्र तल से निकाल कर इतिहास की खुली हथेलियों पर रख दिया। उन्होंने अनेक प्राचीन मंदिरों तथा स्मारकों का पता लगाया तथा प्राचीन स्थापत्य कला, मूर्तिकला तथा संस्कृति से परिचित कराया।"[11]

लोचन प्रसाद पाण्डेजी राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। उन्होने राष्ट्रीय आंदोलनों को गति प्रदान करने वाली ओजपूर्ण रचनाऐं लिखी और भारतीयों को जगाने का अद्‌भुत प्रयास किया। वे भारतीय संस्कृति एवं महान् परंपरा के साथ ही भारतीय भाषाओं के भी अमर गायक थे। उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ साक्ष्य देती हैं–

"भगवान दीन के बंधु,
हम तोर सुजस ला गाबो
तोर चरन मां सरन परे हेन, तोरे भत कहावो ॥
तै असर परभू हमारे सरबस तोला सदा धियाबो।
हमर दास के छमा करैया, उकर कहाँ हम पाबो
तैजी हमर हाथ ला धरबे - हम निश्चै तर जाबो।
मुकुत पदस्थ मिलि है हमला - आवागमन नसाबो
निचट सनेहा कहनी कथनी मारूढोला करमा।
नौकायन के गीत चदैनी होत हथै घर - घर मा
आज मरम गीत के सुन लो छत्तीसगढ़िया भाई। गीता मुकत पदारथ दे थै,
भाखै कृष्ण कन्हाई।"[12]

"पांडेय जी ने छत्तीसगढ़ी लोक कथाओं को संकलित करने में भी अग्रगामी कार्य किया था। लोचन प्रसाद जी ने छत्तीसगढ़ में पुरातात्विक अनुसंधान और प्राचीन सिक्कों की खोज और उनके अध्ययन के क्षेत्र में सर्वथा अग्रगामी कार्य किया है। लगभग 40 वर्ष तक उन्होंने पुरातत्व संबंधी अनुसंधान कर छत्तीसगढ़ के इतिहास के खोए हुए पन्नों को उजागर किया। उन्होंने दर्जनों दुर्लभ ग्रंथ, सोने चांदी और तांबे के सैकड़ों अद्वितीय सिक्के, दस्तावेज और शिलालेखों की खोज कर उनका अध्ययन विश्लेषण किया था। वे महाकोशल इतिहास परिषद के भी संस्थापक थे और उसका उन्होंने 40 वर्ष तक नेतृत्व किया था। इस परिषद के रिसर्च जर्नल का भी पांडेय जी द्वारा प्रकाशन और संपादन किया गया था। उनका 18 नवम्बर 1959 को देहावसान हुआ था।"[13]

"पं. लोचनप्रसाद पाण्डेय महान समाज सुधारक भी थे। किसानों और गरीबों की दुर्दशा से वे अत्यंत व्यथित थे। उन्हीं की प्रेरणा से उनके अनुज मुरलीधर पाण्डेय ने ग्राम सहाय समिति गठित की। गाँव के प्रत्येक किसान को एक पात्र में प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज डालने को कहा गया। इसे जरुरतमंदों में बाँट दिया जाता। स्वतंत्रता के उपरांत सन् 1956 ई. में राज्य पुनर्गठन के समय भी लोचन प्रसाद पाण्डेय ने अंचल के हितों के लिए उग्र संघर्ष किया। उन्हीं की बदौलत चन्द्रपुर क्षेत्र आज संबलपुर जिले में न होकर जांजगीर-चांपा छत्तीसगढ़ में है। चांपा में कुष्ठ आश्रम को उनके प्रयासों के चलते ही शासकीय आर्थिक सहयोग मिला।"[14] वर्ष 1959 को लोचन प्रसाद पाण्डेय का देहांत हो गया।

परिकल्पना का परीक्षण : परिकल्पना सत्य प्रतीत होती है।

इस प्रकार द्वारिका प्रसाद तिवारी एवं लोचन प्रसाद पांडे ने अपनी लेखनी के माध्यम से न केवल समाज में प्रचलित बुराईयों पर कड़ा प्रहार किया वरन् राजनीतिक रुप से जनमानस को जागृत व आंदोलित करने का भी कार्य किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

01. तिवारी नंदकिशोर सं., धमनी हाट, लोकाक्षर प्रकाशन, बिलासपुर, 2002, पृष्ठ - 5.
02. झा विभाष कुमार, नैयर डॉ. सौम्या, छत्तीसगढ़ समग्र, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, 2013, पृष्ठ - 502.
03. श्रीवास्तव, ब्रजेष, छत्तीसगढ़ी कविता की नईधारा को डॉ. विनयकुमार पाठक का प्रदेय, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृष्ठ - 38.
04. सिन्हा श्रीमती भूमिका रानी, द्वारिका प्रसाद तिवारी विप्र का रचना संसारः एक अनुशीलन, शोध प्रबंध, पं.रविषंकर विश्वविद्यालय, रायपुर, 2016, पृष्ठ - 250.
05. तिवारी नन्दकिशोर सं., छत्तीसगढ़ी लोकाक्षर, जनवरी-मार्च, 2008, पृष्ठ - 202.
06. श्रीवास्तव, ब्रजेष, छत्तीसगढ़ी कविता की नईधारा को डॉ. विनयकुमार पाठक का प्रदेय, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृष्ठ - 38.
07. सिन्हा श्रीमती भूमिका रानी, द्वारिका प्रसाद तिवारी विप्र का रचना संसारः एक अनुशीलन, शोध प्रबंध, पं.रविषंकर विश्वविद्यालय, रायपुर, 2016, पृष्ठ - 250.
08. शर्मा डॉ. प्रदीप कुमार, छत्तीसगढ़ रत्न, उन्वान प्रकाशन, गाजियाबाद, 2007, पृष्ठ - 16.
09. त्रिवेदी डॉ. सुशील, छत्तीसगढ़ में साहित्य(अध्याय), छत्तीसगढ़ समग्र, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, 1998, पृष्ठ - 671.
10. तिवारी नन्दकिशोर, छत्तीसगढ़ साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन, महानदी प्रकाशन, रायपुर, 1969, पृष्ठ - 9,10.
11. शर्मा डॉ. प्रदीप कुमार, छत्तीसगढ़ रत्न, उन्वान प्रकाशन, गाजियाबाद, 2007, पृष्ठ - 17.
12. पाठक दीपक कुमार, राष्ट्रीय जागरण में छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का योगदान (1885 से 1947 तक), पी एच.डी. थिसिस, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छ.ग., 2003, पृष्ठ - 302.
13. त्रिवेदी डॉ. सुशील, 1998, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 671.
14. शर्मा डॉ. प्रदीप कुमार, छत्तीसगढ़ रत्न, उन्वान प्रकाशन, गाजियाबाद, 2007, पृष्ठ - 17.

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr Ambika Pareek
P hd Education MA Psychology, English
Assistant professor SDDM College Sinthel

for the paper titled

A Study on the Impact of Jain Literature and Jain Cultural Values on Students

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Anjali Rajput
M.A. (History),
University of Delhi

for the paper titled

Food, Feast and Female: Gastro-Politics in Mughal India 1500-1700 C.E

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सीमा कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी-विभाग

गोपेश्वर महाविद्यालय हथुआ, गोपालगंज

for the paper titled

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह के काव्य-संग्रह 'बबुरीवन' में मार्क्सवादी चेतना का वैचारिक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

गीतु. एम

शोधार्थी

श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी

for the paper titled

21वीं सदी के हिंदी कहानियों में वृद्ध विमर्श

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Sharmila K Thankappan
Associate Professor, Department of Sanskrit
Government Sanskrit College, Thiruvananthapuram, Kerala,
Email: vasusharmila@gmail.com

for the paper titled

ANĀTMA VĀDA IN AŚVAGHOṢA'S BUDDHACARITA

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. निरूपमा जैन

शोध निर्देशिका, राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर

विजय सिंह

शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

for the paper titled

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में नैतिक शिक्षा और मानव निर्माण: स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन एवं शिक्षक भूमिका का प्रासंगिक विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रजिला ओ. पी

एसोसिएट प्रोफेसर

सरकारी आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, कोंडोट्टी, केरल

for the paper titled

'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' और 'किन्नर कथा' में किन्नरों का जीवन संघर्ष

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रभा शर्मा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ए. के. पी. (पी. जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलन्दशहर उ. प्र.

डॉ. अनामिका द्विवेदी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ए. के. पी. (पी. जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलन्दशहर उ. प्र.

for the paper titled

शरद सिंह की दृष्टि में आदिवासी सभ्यता और संस्कृति की एक झलक

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

मुकेश कुमार

शोधार्थी

डॉ. बबिता शर्मा

सहायक आचार्य भूगोल विभाग, श्री खुशालदास विश्वविद्यालय हनुमानगढ़

for the paper titled

हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण का श्रमिक परिवारों की रोजगार एवं आर्थिक स्थिति पर प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सिद्धोर हाँसदा

(शोधार्थी) स्नातकोत्तर संताली विभाग

सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखण्ड)

for the paper titled

आदिवासी साहित्य की अवधारणा

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Ramesh K. Shende
Matoshri Anjanabai Mundafale College of Social Work,
Narkhed Dist. Nagpur

for the paper titled

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा और प्रौद्योगिकी की भूमिका

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. ललिता गोयल

सहायक प्राध्यापक

शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला भवन, इंदौर

for the paper titled

प्राचीन रसशास्त्र और आधुनिक औषधि विज्ञान : परंपरा से प्रगति तक

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. शालिनी शुक्ला

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

खुनखुन जी महिला महाविद्यालय चौक, लखनऊ

for the paper titled

लोकगीतों में स्त्री-वेदना का स्वर

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Neelu Malviya
Asst. Professor
Govt. MLB Girls PG College, Fort,
Indore

for the paper titled

Medicinal Values of Common Weeds Found in Home Gardens: A Review

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Anamika Shukla
Christ Church College, Kanpur

Dr. Deepanjali Das
Christ Church College, Kanpur

for the paper titled

Unveiling Fintech Trends: A Comprehensive Bibliometric Analysis of Global Research

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

नन्हीं कुमारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय,

लालूनगर, मधेपुरा, बिहार

for the paper titled

शरद जोशी के व्यंग्य साहित्य में आम आदमी की सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

स्वधा त्रिपाठी

शोधार्थी

डॉ. पिंकी पारीक

शोध-निर्देशक, विश्वविद्यालय : बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

for the paper titled

भारतीय आदिवासी कहानियों में महिलाओं की स्थिति : एक विमर्श (हंसा दीप की कहानियों के विशेष संदर्भ में)

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रणसिंह यादव

सहायक आचार्य, इतिहास

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

for the paper titled

प्राचीन भारत और वस्तु विनिमय के साधन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. अंजना यादव

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

for the paper titled

सामाजिक समानता, महिला कल्याण एवं संवैधानिक अधिकार

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रीता सिंह

(शोधार्थी), स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय,
दुमका (झारखण्ड)

for the paper titled

नागार्जुन के उपन्यासों का शिल्प-विधान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

दीपशिखा कुमारी

शोधार्थी

पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया

for the paper titled

किन्नर कथा में किन्नरों की समस्याएँ : एक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. श्रवण कुमार गुप्त

सी.एस.एन.पी.जी. कॉलेज

हरदोई

for the paper titled

स्वातंत्र्योत्तर प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य: अस्मिता, विस्थापन और सांस्कृतिक द्वंद्व

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. निरुपमा जैन

शोध मार्गदर्शिका, सहायक आचार्य- राजस्थान, महिला टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, उदयपुर

गायत्री हाडा

पीएच.डी. शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

for the paper titled

राजकीय एवं निजी विद्यालय के सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों के स्व-सामर्थ्य की तुलना करना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

कंचन शर्मा

शोधकर्त्री

ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय,

जयपुर, राजस्थान

for the paper titled

बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बाल साहित्य : 'बाल वाटिका' का संवेदनात्मक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

विमला देवी यादव

शोधार्थी : हिन्दी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय सीकर राजस्थान

डॉ. अनुपमा सक्सेना

शोध निर्देशक : प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय खंडेला सीकर राजस्थान

for the paper titled

21वीं सदी की हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना और सामाजिक सरोकार

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. संजय कुमार यादव

हिन्दी विभागाध्यक्ष, राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय

बेतिया, प. चम्पारण

for the paper titled

रीतिकालीन कविता और काव्य-शिल्प

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Anil Kaushik
(TGT Mathematics)
Mathematics, GMSSSS SANGHI ROHTAK

for the paper titled

HARBANS PUZZLE IN MATHEMATICS

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Giriraj Bhojak
Assistant Professor,
Department of Education,
Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

for the paper titled

Mental Health and School Education

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. आरती दुबे

प्रवक्ता-हिन्दी, लक्ष्मी यदुनन्दन महाविद्यालय

कायमगंज (फर्रुखाबाद)

for the paper titled

साहित्य में नारी की भूमिका

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

कल्पना

Research Scholar, Department of Yogic Science, Centre for Academic Research, Manipur International University, Imphal, Manipur

डॉ. सत्येंद्र कुमार

Assistant Professor & Research Supervisor, Value Education Wing, Prajapita Brahma Kumaris Ishwariya Vishwavidyalaya,

for the paper titled

माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के तनाव, अवसाद एवं आत्मसम्मान पर राजयोग का प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. संजीव कुमार. के

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, एम.इ.एस कल्लडी. कॉलेज (ओटोणमस)

मन्नाटकाड, पालकाड, केरल

for the paper titled

कुरुम्बा (कुरुम्बर) जनजाति के लोकजीवन और संस्कृति

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

किम्मी. एन. एस

शोधार्थी, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,
कालडी

for the paper titled

दलित माँ की पीड़ा और मुक्ति कामना 'हाथ तो उग ही आते हैं' कहानी के संदर्भ में

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. लता डी

शोध निर्देशिका

Vinaika Vijayan

Research scholar,

Govt college for women, Thiruvananthapuram

for the paper titled

किसान जीवन की मार्मिक पहलू: अकाल में उत्सव' उपन्यास में

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. अंजु पांचाल

अकादमिक परामर्शदाता

(IGNOU)

for the paper titled

राजभाषा हिन्दी का कम्प्यूटरीकरण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Kishore Kumar Baraik
(Research Scholar)
Dr. Manoj Kumar
(Research Guide)
Department of Geography
Shri Jagdish Prasad Jhabarmal Tibrewala University Jhunjhunu, Rajasthan

for the paper titled

Exploring the Geography and Socioeconomic Profile of Foothill Residents in Saddle Peak National Park, Andaman and Nicobar Islands

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सूचित कुमार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. विजय कुमार

शोध निर्देशक

for the paper titled

हिंदी के साहित्यिक विरासत के संरक्षण में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना की भूमिका

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

अजित कुमार नायक

विद्यावारिधिः, शोधार्थी,

स्नातकोत्तरसाहित्यविभागः

श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः श्रीविहारः, पुरी, ओडिशा

for the paper titled

भारतीकेशरिप्रबोधकुमारमिश्रविरचिते स्वप्नदूते गुणरीतितत्त्वसमीक्षा

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

निकिता आनंद

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

for the paper titled

हिंदी कहानी आलोचना में प्रतिमान और उसकी समस्याएँ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. निरूपमा जैन

शोध निदेशक, सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, आर. एम. टी. टी. कॉलेज, उदयपुर

महेश गंड़ेर

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

for the paper titled

बी.पी.एल. परिवारों में अभिभावक सहभागिता का विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षाओं पर प्रभाव : एक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

किशन लाल जाट

शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर-राजस्थान

डॉ. के.आर.काक

(सहायक आचार्य) विद्या भवन जी.एस. टीचर्स कॉलेज, उदयपुर-राजस्थान

for the paper titled

राजस्थान के जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के प्रति अभिधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Rajendra Jakhar
Asstt. Professor in Education
J.K.Memorial College of Education
Birhi Kalan, Ch. Dadri (Haryana)

for the paper titled

Understanding Stress and Coping Patterns in Gifted Adolescents'

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Mr. Hari Shanker Singh
Ph.D. Scholar,
Department of Political Science,
University of Delhi

for the paper titled

The Moral Geography of Justice: Mapping the Systematic Prioritization of Humans Over Animals in Ethical Consciousness

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. अजीत कुमार

सहायक प्राध्यापक,

जेडीएमसी, दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का सामाजिक आधार : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Nayantara Singh
Ph.D. Research Scholar, AIBAS, Amity University Haryana
Dr. Shailesh Kumar
Assistant Professor, AIBAS, Amity University Haryana

for the paper titled

Microfinance, Financial Inclusion and Women's Self-Employment: A Sociological Study of the PM SVANidhi Scheme in India

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सुनील कुमार

शोधार्थी (हिंदी विभाग)

जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय,

चित्रकूट उत्तर प्रदेश

for the paper titled

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में प्रतिबिंबित समाज

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Kanika Thakur
(Research Scholar)
Department Of Political Science
University Of Delhi

for the paper titled

STATE AND KUMBHA: PRE TO POSTINDEPENDENCE INDIA (EARLY 19TH TO 21ST CENTURY)

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. पायल पोद्दार

सहायक प्राध्यापक, मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

अंजली त्रिपाठी

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, भारत

for the paper titled

जलवायु परिवर्तन का जनजातीय महिलाओं पर प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Asha Yadav
PhD Scholar, Dept. of History,
University of Delhi, New Delhi, 110007

for the paper titled

Assessing Orientalism: Formation, Criticism and Significance

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

संतोष कुमार सिंह

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय

सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0

डॉ. योगेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, शोध निर्देशक, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महावि., सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0

for the paper titled

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों के प्रमुख उद्देश्य, विश्लेषण एवं संगठन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. वर्षा रानी

असि. प्रो. संस्कृत - विभाग,

डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा

राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0

for the paper titled

उपनिषदों में वर्णित वैश्विक शांति : एक दार्शनिक एवं समकालीन अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. संदीप कुमार

सहायक आचार्य

पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,

डॉ भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा

for the paper titled

वर्तमान परिदृश्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर प्रभाव : एक आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. P. Ganesan
Associate Professor
Sri Krishna College of Arts and Science College
Kuniyamuthur, Coimbatur-8

for the paper titled

तिरुवकुरल एक परिचय

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

जोस्ना जोस

शोधार्थी, हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय

कार्यवट्टम कैंपस

for the paper titled

बाज़ारवादी व्यवस्था और आधुनिक भारतीय समाज की विडंबना: एक डूबते जहाज़ की अन्तर्कथा के विशेष संदर्भ में

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

ममता

शोधार्थी, टाटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

डॉ. शिल्पा रानी

शोध पर्यवेक्षक, टाटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

for the paper titled

पंचायत समिति में महिलाओं की सहभागिता: चुनौतियाँ, उपलब्धियाँ एवं सशक्तिकरण का अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

कमल

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

for the paper titled

जातिवाद और वर्गीय भेदभाव के कारण पंजाब में ईसाई धर्म का प्रसार : एक आलोचनात्मक विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रम्या. जी. एस. नायर

सहायक प्राध्यापिका

के.पी.आर.आर्ट्स साइन्स आंड रिसर्च कॉलेज

कोयंबत्तूर, तमिलनाड

for the paper titled

तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ; एक झांकी

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

अंजुलि शुक्ला

शोधार्थी, शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

डॉ. एस.पी. शुक्ला

गोध निर्देशक, प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

for the paper titled

'महिलाओं में मतदान व्यवहार की प्रक्रिया'

(रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. मुक्कप्प राठोड

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

बेंगलुरू विश्वविद्यालय, बेंगलुरू

for the paper titled

भारतीय संस्कृति के तले तड़पता समाज

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**